



अनुसधान का  
व्यावहारिक स्वरूप

लेखिका की अन्य रचनाएँ

- आधुनिक हिंदी कविता में मनोविज्ञान
- स्वामी रामतीर्थ और उनकी कविता
- नैतिक शिक्षा
- सती शिवा सुन्दरी

# अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप

[ Practical aspect of Research ]

लिखिका

डॉ० जवशी जे० सूरती

रीडर एव अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग,

एस० एन० डी० टी० महिला विद्यालय,

बम्बई २०

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लिमिटेड,

होगात्राग, बम्बई ४

प्रकाशक \*

यशोधर मोदी,  
मनेजिंग डायरेक्टर,  
हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लि०,  
हीराबाग, पो० बाँ० ३६२२,  
बम्बई ४

शाखा

ब्रज भवन, दयानंद रोड  
२१-दरियागंज, दिल्ली ६



प्रथम संस्करण

१९७३



मूल्य

सत्रह रुपये



मुद्रक

सतीश क० एजेंसी द्वारा  
कुमार कदम प्रिंटिंग प्रेस,  
नवीन शाहदरा दिल्ली ३२

अनुसधित्सुओ की ।



## प्रकाशकीय

हिन्दी में अनुसंधान के सद्धातिक स्वरूप का विवेचन करनेवाली दा एक पुस्तकें अवश्य हैं, पर अनुसंधान क व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण एव विशद विवेचन करनेवाली पुस्तका का नितान् अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप (लेखिका डॉ० उवशी जे० सूरती) इस अभाव को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अनुसंधान के व्यावहारिक पक्ष से जुड़े अनक प्रश्नों और पहलुका का इस पुस्तक में पहली बार उठाया गया है। शोध के व्यावहारिक प्रतिमाना की खाज क मिलसिले में इस ग्रन्थ का महत्व असदिग्ध है। शोध छात्रों के लिए तो यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है ही।







## अनुक्रम

प्रकरण	पष्ठ सम्प्रा
प्राक्कथन	११-१२
तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान	१३ १८
<p style="margin-left: 40px;">तथ्यानुसंधान का स्वरूप—तथ्य के प्रकार— तथ्य साधन है या साध्य—सत्योपलब्धि की दो विधियाँ—अनुसंधान और आलोचना— तथ्याख्यान का स्वरूप ।</p>	
विहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या	१६ ५४
<p style="margin-left: 40px;">लेखक का जीवन-वृत्त—लेखक की प्रामाणिकता— रचना की प्रामाणिकता—रचनाकाल का नियम ।</p>	
निहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या	५५-१०३
<p style="margin-left: 40px;">रचनागत (विषयगत) तथ्य में निहित का साक्षात्कार—वृत्तित्व के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व (विषयीगत मत्त) की व्याख्या— वाच्यशास्त्रीय सिद्धांतों का साक्षात्कार और मौलिक उदभावना ।</p>	
साहित्य में स्रोत का अध्ययन	१०४ १६३
<p style="margin-left: 40px;">स्रोत का स्वरूप—हिन्दी साहित्य का इतिहास— व्यक्ति—प्रभाव—स्रोत के प्रकार ।</p>	
मौलिकता	१६४-१८३
<p style="margin-left: 40px;">मौलिकता का स्वरूप—मौलिकता अर्थात् प्रतिभा—मौलिकता का रहस्य—अनुवाद में मौलिकता—प्रेरणा की मौलिकता—परम्परा</p>	

और आधुनिकता के समन्वित प्रभाव में  
 मौलिकता—प्रतिक्रियात्मक प्रभाव और  
 मौलिकता—मूल्या का नवनिर्माण और  
 मौलिकता—नवीनता और मौलिकता—युगबोध  
 और मौलिकता—चरित्रगत मौलिकता—  
 कथानक में मौलिकता—विषयगत—चिन्तन—  
 मौलिकता के अध्ययन द्वारा लेखक के व्यक्तित्व  
 के सामाजिक—नृननात्मक अध्ययन—शली—  
 उपसंहार ।

उपसंहार

## प्राक्कथन

सन् १९५५ की बात है जब मैं सवप्रथम, 'बी० एड०' करने के बाद, 'एम० ए०' के अध्ययन हेतु अनुसंधान के क्षेत्र में कदम ही रखा था। अपनी रुचि एवं ज्ञान की पीठिका का ध्यान रखकर मैं शिक्षा के क्षेत्र में 'पाठशाळा के विद्यार्थियों के जीवन में नतिक शिक्षा' विषय का चुना।

या तो स्नातकोत्तर उपाधि के हेतु अध्ययन करने में अनक पी एच० डी० के शोध प्रबंधों को पटना पड़ता है। पर उस समय शाघ प्रबंधों की गवेषणा शली पर ध्यान उलभ कर रह जाता है। मौलिक विचारों तथा उपलब्ध सामग्री के सम्मिश्रण से शोध के नए मान ञ्छा की स्थापना की दुह प्रक्रिया का अनुभव मुझे तभी हुआ। अनुसंधान की वनानिक प्रक्रिया भी उमी के लौगन समझ में आई। सन् १९५७ में डा० मधुरीवन शाह (म्युनिसिपल कमिश्नर इन एजुकेशन) के माग-दर्शन में एम० एड० का अनुसंधान विषयक मेरा प्रथम प्रयोग यशस्वी हुआ।

अनुभव हुआ कि अनुसंधान पद्धति पर कोई अच्छी पुस्तक नहीं है। अभाव खटकता रहा और मेरे ही जस अनक अनुसंधारमुखा की समस्याएँ मर सामने समय समय पर उपस्थित होनी रहीं। सन १९६२ में पी एच० डी० की उपाधि मुझे मिली और सन १९६६ में अपने विश्वविद्यालय में शाघ छात्रों की में मागदर्शिका नियुक्त हुई। तब भी अनुसंधान पद्धति' पर कोई उपयागी पुस्तक नहीं दीखी।

अपने अनेक विद्यार्थियों को मैंने हिंदी की इस विषय से सम्बन्धित दो पुस्तकें 'अनुसंधान का स्वरूप' तथा 'अनुसंधान पद्धति और अंग्रेजी की 'सैंडस की साहित्य के इतिहास में अनुसंधान पद्धति' पढ़ने का दी हैं, पर इनमें नितान्त सद्धान्तर दृष्टि से विषय का प्रतिपादन हुआ है। अतः शाघ छात्रों के लिए, जिन्हें शोध के व्यावहारिक' पक्ष में उतभना होता है उनकी उपयागिता बहुत सीमित है।

अतः सन् १९६६ में अपने विश्वविद्यालय का प्रेरित करके अनुसंधान-पद्धति

व्याख्यान माला का आयोजन करवाया। शिक्षाविदो एव विशेषज्ञो को इस काय के लिए आमंत्रित किया गया। हिन्दी में अनुसंधान प्रक्रिया पर मैंने जो व्याख्यान दिये उनका सशोधित सम्बन्धित स्वरूप प्रस्तुत है। हिन्दी में इस विषय की कुल पाँच पुस्तकें मिलती हैं पर मेरा दृष्टिकोण इन सब से अलग है।

अनुसंधान काय के व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण प्रत्येक सिद्धांत को लेकर विस्तार से हा सकता है। इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है, इस दिशा में बढ़ाया मेरा यह प्रथम चरण आशा है शोधका का ध्यान आकृष्ट करगा।

मकर संक्राति, १९७३

—उवशी जे० सूरती

## तथ्यानुसधान और तथ्याख्यान

१

### तथ्यानुसधान का स्वरूप

तथ्यानुसधान का विषय अत्यन्त विज्ञान और गहन है। इसका परम प्रयोजन सत्योपलब्धि होने के कारण अनक और विविध तथ्या का सञ्चयन उसका परीक्षण और उसके मत्यासत्य का निणय एक लम्बी प्रक्रिया का निर्माण कर देता है। दखने में आता है कि एक ही व्यक्ति या विषय पर तथ्यानुसधान करने वाले विभिन्न अनुसधाता कभी समान तो कभी विभिन्न तथ्या को नय-नय सदर्थों तथा रूपों में प्रस्तुत करते हैं और उनकी व्याख्या भी वसी ही अलग अलग होती है। एक ही तथ्य की व्याख्या दो भिन्न अनुसधाता कभी-कभी परस्पर विरोधी अर्थों में करते हैं और उनके समर्थन में प्रयुक्त तत्वशली हम दाता की प्रामाणिकता को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। इनके मूल में एकता का सामान्य मूल निहित होता है, परन्तु तात्त्विक दृष्टि के अभाव में अपूर्ण खोज के कारण बाह्य विरोधाभास का हम भ्रम होता है। प्रमाण के अभाव में या मात्र अपनी रचि, इच्छा, सस्कार और प्रयोजन से या राग द्वेष से प्रेरित होकर जो तथ्यानुसधान और तथ्याख्यान करता है, उस वसी स्वीकृति नहीं मिल सकती। बाद के अनुसधाता उन उपनयन तथ्यों की निराधारता मिट्ट करके अमानिक अनुसधान प्रणाली के आधार पर उन तथ्या पर नवीन प्रकाश डालने हैं और वस्तु का मूल्य के निकट न जान में प्रयत्नशील रहते हैं।

इस प्रकार नय तथ्या की खोज और उपलब्ध तथ्यों का पुनराख्यान अनुसधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण काम है जो विवेक और तटस्थता के प्रकाश में ही सम्पन्न हो सकता है। स्वतन्त्र रूप में दिया जाय तो तथ्य जड़ है परन्तु मानव-जीवन के स्पर्श में उसमें अन्वय का ऐसा आविर्भाव होता है कि एक ही तथ्य नित्य-नूतन अर्थ देने में समर्थ हो जाता है। ऐसा मापक तथ्य अनुसधान के माग का प्रगल्भ करता है।

अनुसंधाता यदि तथ्य के संपूर्ण संपन्न म लगा रह और अन्य स्रोतों में न उलभ जाय तो उसे तथ्य में ही एक उचित मागदर्शन मिल जाता है। यह तथ्य पर निर्भर रह तथ्य उमकी इच्छा पर निर्भर न रहे यह आवश्यक है।

### तथ्य के प्रकार

मुख्यतः तथ्य के दो प्रकार हैं - विहित और निहित। इनका स्थूल और सूक्ष्म बहिरंग और अंतरंग या प्रकट और गुप्त भी कहा जाता है। मान प्राचीन समय के लोग और उाकी रचनाओं का ही तथ्यानुसंधान सम्भव है यह धारणा अनुचित है। प्राचीन लेखकों तथ्य या तथ्यानुसंधान में आज काय का उत्तरोत्तर विकास होता है और माथ माथ उन पर जसा जसा प्रकाश पड़ना है और स्था परतु लुप्त तथ्य उपलब्ध हात है यह अनुभव में गिद्ध हा चुका है और ऐसा आज काय आवश्यक भी है। परतु लखक के जीवन के घटनागत तथ्या का अनुसंधान ही पर्याप्त नहीं है। उगव जीवन की बाह्य रूपरत्ता तो रोज का आधार माथ है। इसी प्रकार अमुक लखक न कय और कितनी रचनाएँ लिखी हय तथ्य की खाज लेखक के व्यक्तित्व दर्शन की आधार भूमि प्रस्तुत करती है। य सार तथ्य बहिरंग हात है।

बहिरंग तथ्य से अधिक महत्वपूर्ण अंतरंग तथ्य हाते है जा तात्त्विक हान के कारण सत्य प्रकाशन में प्रत्यक्ष रूप से महायक हात है। इसी को अनुसंधाना की वास्तविक उपलब्धि कहत है और यही उमके काय का मुख्य उद्देश्य है।

### तथ्य साधन है या साध्य ?

तथ्य साधन है और नानोपार्जित साध्य। तथ्य अनुसंधाता का वही सकेत या सूचना देना है तो वही निर्णय और मागदर्शन। प्रारम्भिक स्थूल बहिरंग तथ्य साधन बन कर अंतरंग सूक्ष्म तथ्या की साध्य रूप में अनुसंधाता को उपलब्ध करा दत है। अनुसंधाना का बहिरंग तथ्यानुसंधान का काय पूरा होने पर साध्य रूप में उपलब्ध अंतरंग तथ्य लखक या रचना के सम तक पहुँचने के सोपान बनत है। उत्तरोत्तर सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्या की पूरा उपलब्धि होने तक साधन साध्य का यह क्रम के परिवर्तन गतिमान रहता है।

यदि अनुसंधाना के लिए लखक का व्यक्तित्व दर्शन अतिम प्रयाजन है तो तथ्यानुसंधान के क्रम में वह साथ में गिद्ध हागा। परतु यदि कोई अनुसंधाता कितना एक विशिष्ट लेखक के व्यक्तित्व दर्शन तक न स्वकर लखक मामा में की मजक प्रतिभा के सदस्यों का उत्पादन करना चाहता है तो भिन्न भिन्न लखक का व्यक्तित्व दर्शन अंतरंग हाते हुए भी साधन होगा और उमका साध्य त्रिगुण तात्त्विक और अत रगतम होगा जो उसे अतिमानक के धरातल पर पहुँचाने में और अज्ञान से सहोदर काव्याद को अनुभूति का विषय बनाने में समथ होगा। सम्भव है, इस कक्षा पर

पहुँचने वाला इस साध्य का भी साधन बनाकर परम कृपा की खोज अर्थात् आत्मा परमात्मा की एकता के अनुभव को माध्यम रूप में प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त हो। यदि लेखक का 'यत्कित्तव' दर्शन अर्थात् अनुसंधान और लक्ष्य की आत्मकयता साध्य है तो परमात्मकयत बोध उसका परम साध्य। परंतु कभी कभी तत्त्व का महत्त्व देने से तथ्य कमजोर पड़ जाता है। यथा "आचार्य रामचंद्र जी दुबल का आलोचना-पद्धति में तत्त्वदर्शन के प्रति इतना प्रबल आग्रह था कि वे तथ्या की अधिक चिन्ता नहीं करते थे। उनके 'इतिहास' तथा भूमिकाएँ एक सद्भाषितक निबन्धा में तथ्याधार स्पष्टतः दुबल हैं। आत्मा का अनुसंधान ही उनका ध्येय रहा है। तथ्या के सकलन और सारित्यकी पद्धति के अवलम्बन के प्रति उनकी रक्ति नहीं थी।"

### सत्योपलब्धि की दो विधियाँ

तथ्यानुसंधान की क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से सत्योपलब्धि की दो विधियाँ हैं—दर्शन और विज्ञान।

**दर्शन**—स्वरूप से दर्शन अंतरंग और आध्यात्मिक प्रकृति का हान के कारण उसकी गति में ऋजुता सरलता और त्वरा रहती है। वह मध्य पर सीधी पहुँचने वाली होने के कारण शीघ्र परिणाम देती है परंतु उसमें तथ्यात्मक प्रमाण का अभाव रहने के कारण भ्रांति का खटक रहता है। अनुसंधान में विवेक और तटस्थता का अभाव हो तो मान हूँ सत्य का दर्शन भी बहुधा विकृत रूप में होता है।

**विज्ञान**—इसकी प्रकृति बहिरंग और तथ्यात्मक होने के कारण उसकी गति विलम्ब शिथिल और विलम्बित होती है। इसमें भ्रांति की संभावना कम रहती है और ठोस आधार तथा पुष्ट प्रमाण के बन पर अनुसंधान का काय आग बढ़ता है, परंतु अनुसंधाना तथ्य मकलन में इस हद तक उलभ जाता है कि तात्त्विक दृष्टि का लोप हो जाय तो आश्चर्य न होगा।

निष्कप रूप में यही स्थापित होता है कि अनुसंधान की दृष्टि दर्शन और विज्ञान में समबयात्मक रहे, जिससे अन्तर्दृष्टि की गति अवरुद्ध न हो, शरीर की जाँच में कहीं हृदय खो न जाय तथा हृदय की जाँच में कहीं शरीर से अस्वका विच्छेद न हों जाय। एकांगी होने पर दोनों में असंगति का भय है।

### अनुसंधान और आलोचना

अनुसंधान अर्थात् ज्ञानवर्द्धि के लिए अनुपलब्धि की खोज और उपलब्धि का परीक्षण, अर्थात् लक्ष्य बाँधना निश्चाना लगाना। आलोचना याने ज्ञान की जानकारी





## तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान

सत्य के निकट पहुँचने के लिए एकाग्रता से मनन करें। विचार की यह आंतरिक प्रक्रिया उसे मानसी प्रत्यक्षीकरण की स्थिति में पहुँचाने वाली होनी चाहिए, जहाँ लेखक और विचारक के व्यक्तित्व की युति होती है।

## तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान

तथ्य के दो प्रकार बताये गये—प्रकट और गुप्त, बहिरंग और अन्तरंग, विहित और निहित। इसी कारण तथ्याख्यान भी दो प्रकार का हो जायगा—बहिरंग तथ्यो की 'याख्या और अन्तरंग तथ्यो की 'याख्या। प्रारम्भ में बहिरंग तथ्यो का सकलन और उनकी व्याख्या के बाद अन्तरंग तथ्यो का सकलन और उनकी व्याख्या में प्रवृत्त होना अभीष्ट है। बहिरंग तथ्यो के सकलन और याख्या में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा—

- (क) लेखक का जीवन-वृत्त
- (ख) लेखक की प्रामाणिकता
- (ग) रचना की प्रामाणिकता
- (घ) रचना काल का निरूपण

सकलन की 'याख्या की इस विधि को सम्पन्न करने के लिए अन्त साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य, जनश्रुति और अन्य सहायक प्रमाणों का आधार लिया जाता है।

अन्त साक्ष्य—बहिरचित्त प्रथा के अतगत उल्लिखित अपने पूज, अपने जीवन तथा जीवन काल में घटित घटनाओं की सहायता से मुख्यतः उसका वश-परिचय उसकी विद्वत्ता एवं अध्ययन, आश्रयदाता, रचना-काल तथा देशकाल का निरूपण हो जाता है। प्राचीन काल में हमारे लेखक की प्रवृत्ति आत्मचरित्र लिखने की दिशा में बिल्कुल न रहने के कारण प्रसंगगत उल्लिखित सदस्यों में व्यक्तिगत परिचय पूर्णतः प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में बाह्यसाक्ष्य का आधार लेना पड़ता है।

बाह्यसाक्ष्य—लिखितस्वरूप में उपलब्ध होत हुए भी इसमें असदिग्ध प्रामाणिकता का अज्ञान और अनुमान अधिक रहता है। समकालीन तथा परवर्ती लेखकों के ग्रंथों में से कवि के जीवन विषयक अनेक प्रकार के विवरण प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध तथ्यो का सग्रह करके अनुसंधाता तटस्थ चित्त से उसका अध्ययन कर, सगति लगा कर, जीवन में स्थान देने को प्रवृत्त होता है। उसे इस कार्य में पूर्ण सावधान रहना चाहिए, क्योंकि अन्य व्यक्ति लेखक के प्रति श्रद्धा से प्रेरित हो कर प्रसिद्धि से अभिभूत होकर या भावुकतावश अतिरजित चित्र अंकित करें यह पूर्ण सम्भव है। व्यक्तिगत सपक प्रत्येक व्यक्ति को प्रायः नहीं मिलता और लेखक के जनहितकारी जीवन से प्रभावित होकर प्रायः लोग बहिर्साक्ष्य के अन्त पर ही जीवन लिख देते हैं। जहाँ तक हो सके, बहिर्साक्ष्य में भी मूल स्रोत से

पहुँचने का घोर उसने आवार पर निरुण्य नेन का प्रयत्न किया जाना चाहिए ।

जाधृति—इसका स्वरूप मौगिव होता है । बहिर्गाथ्य स भी जब लेखक के जीवन का पूरा परिचय प्राप्त नहीं होता, तब जनश्रुति का भाष्य लेना पड़ता है । समय के प्रभाव स अनेक परिवर्तन हाते हैं और तथ्य घनक वार वास्तविकता स इतना दूर हो जाता है कि अनिरजता की स्वस भषिक सभावना रहती है । इस लिए जन श्रुतियो का सग्रह करके प्रामाणिकता की जांच के लिए अतःतरतम सत्य की उपलब्धि ही अनुसंधान का एरमात्र उद्देश्य होता है । जनश्रुति के मुख्य दो क्षेत्र होते हैं—

(१) जिम प्रदेश मे लेखक का ज म हुआ हो ।

(२) जिम प्रदेश मे लेखक न घपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया हो ।

अथ सहायक प्रमाण—म्युनिसिपल रिजाइस स्कूल कालज साहित्य के प्रतिरिक्त अथ क्षेत्रों मे प्रसिद्ध ग्रथो मे प्राप्त उल्लेख एतिहासिक घटनाओ से सम्बन्धित तथ्य सांस्कृतिक या धार्मिक क्षेत्रा म प्राप्त तथ्य और उपयुक्त दो क्षेत्रो से सर्वा घत न होते हुए भी कुछ समय के लिए जिनके यत्तिगत सपक मे घाने से विशेष अनुभव प्राप्त हुए हो ऐसे व्यक्ति ।

इन प्रमाणा की सहायता स तथ्याख्यान का काय सम्प न होता है ।

तथ्याख्यान का स्वरूप —

शरीर और शरीरी की भाति तथ्य और सत्य परस्पर सम्बन्धित है । प्रातरिक सत्य की उपलब्धि बाह्य तथ्य की याख्या से सभव है । अक्लिष्ट तथ्य की एक सामान्य व्याख्या तुगत अथ दे देती है फिर उसमे आगे अनुसंधान की अपेक्षा नहीं रहनी । परंतु साहित्य म निहित तथ्यो की याख्या मे एक पूरा क्रम रहता है । जमे शरीर और शरीरी का विवेक करके पचकोश को पार करन पर आत्मोपलब्धि होती है वसे ही क्रमिक अर्थों को पार करने पर अत मे सत्योपलब्धि होती है ।

परम अथ और सत्य अतिम स्थिति म एक है परंतु जब तक याख्या का व्यवहार है, अथ सत्य तक पहुँचने का साधन है । जहाँ सारे अर्थों का पयवसान हो जाय, फिर अथ की परम्परा आगे बरने ही न पावे वह सत्य अर्थात् परम अथ है । साहित्य के अनुसंधान मे लेखक की आत्मा का साक्षात्कार अर्थात् रस सप्रदाय की भावा म कहे तो लेखक की निर्व्यक्तिकता म हमार सीमित यत्तित्व का विलय होने पर अनुभवगम्य रसानुभूति की स्थिति पाठक के यत्तिगत लाभ के लिए किया गया तथ्याख्यान है । परंतु अनुसंधाना जो मात्र आत्मलाभ के लिए नहीं सवलाभ मे प्रवृत्त होता है वह प्रेय को छोड कर श्रेयवण या प्रय और श्रेय म अद्वैत स्थापन करते हुए इसम भी आगे बड कर सब के लिए इस रसास्वादन को सुलभ और सुगम बनाता है । यही साहित्यानुसंधान का अन्तिम और तथ्याख्यान का अरम स्वरूप है ।

## विहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या

२

लेखक का जीवन वक्त

लेखक के विषय में पूरा जानकारी पाने के लिए अध्ययन के अनिवार्य क्षेत्र —

(अ) १—लेखक के साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि से सम्बन्धित बाह्य परिस्थितियाँ ।

२—प्रेरणा तथा शक्ति देने वाली पूर्ववर्ती और समकालीन विभिन्न साहित्य धाराएँ ।

३—लेखक का अपने विषय के क्षेत्र में अध्ययन ।

४—लेखक की रचनाएँ ।

(ब) लेखक एक व्यक्ति है और उसका व्यक्तिगत जीवन प्रायः बहुत लिलचस्प होता है । बाह्य परिस्थितियाँ से भी अधिक व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ उसके व्यक्तिगत निर्माण में प्रेरक होती हैं । जिस लेखक का मवाग अध्ययन किया जाय उसकी जीवनी अवश्य लिखी जाय ।

(१) अनुसंधाता डा० नारायणदास खन्ना ने आचार्य भिखारीदास' के जीवन और कृतित्व का अध्ययन किया । उन्होंने इसमें उपयुक्त सब क्षेत्रों से तथ्य संग्रह किया । उनके विवेचन के मुख्य विषय थे—<sup>1</sup>

(क) रीतिकाल का आरम्भ—

(१) ऐतिहासिक पूर्वपीठिका

- 2) धार्मिक परिस्थितियाँ
- (3) आधुनिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ
- (4) साहित्यिक परिस्थितियाँ
- (ख) रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार
- (ग) हिन्दी में रीतियों की परम्परा
- (घ) रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- (ङ) भिलारीदास के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता

लेखक का वंश परिचय

भिलारीदास के जीवन-वृत्त की दृष्टि से अगत साध्य का एक सुंदर प्रमाण उदाहरणरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसके आधार पर अनुसंधान ने तथ्य संग्रह किया। भिलारीदास ने अपना वंश परिचय देने की दृष्टि से एक कविता और एक दोहा लिखा है—

कवित्त—

अमिलावा बरी सदा ऐसा नीका होय त्रित्य सब ठौर दिन सब याही सेवा घर जानि ॥  
 नोमा लई नीच पान हलाहल ही को भक्त है क्रिया पाताल निन्दा रस ही को जानि ।  
 सेनापति देखी केर शोभा गनती को भूप पना मोती हीरा हेम मोदा दास ही को जानि ।  
 हीय पर देख पर बडे यग रट नाउ खगा सन नग घर सीता नाथ को ला पानि ॥  
 इस कवित्त से दास का वंश परिचय पाने की युक्ति निम्न दोहे में बताई है—

या कवित्त अतवरण ल तुकात द्व छौडि ।  
 दास नाम कुल ग्राम कहि नाम भगति रस मीडि ॥<sup>1</sup>

अनुसंधान ने इसके आधार पर कवित्त की व्याख्या की—

कवि का नाम भिलारीदास कायस्थ तथा वण बहीवार था। इनके भाई का नाम जयनलाल, पिता का कृपालदास पितामह का वीरभानु तथा प्रपितामह का रामदास था। ये यखर प्रदेश में ट्यूंगार ग्राम के नगर ताथला के निवासी थे।<sup>2</sup>

इसके अतिरिक्त अनुसंधान ने लेखक के जन्म मृत्यु आश्रयदाता तथा वैयक्तिक जीवन की उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की है। इस काय में तीन जनश्रुतियाँ का आधार भी लिया गया है।

1 कापनिण्य पृ० २४४

2 छदार्णव पिगल, पृ० ४

3 प्राचाय भिलारीदास, डा० नारायणदास सन्ना, पृ० ४

(२) एक नामधारी अनेक लेखकों में विशिष्ट लेखक

जब तक एक नाम के अनेक लेखक नहीं होते, तब तक अनुसंधान का कार्य इन तीनों प्रमाणों के सहार बड़ी सरलता से सम्पन्न होता है। परन्तु एक से अधिक लेखक एक ही नाम के हो जान पर बड़ी मूढमता से कमीठी करके उद्दिष्ट व्यक्ति के जीवन वक्त तथा उसकी रचनाओं का निष्पत्ति किया जाता है। ऐसी स्थिति में जीवन-वक्त और रचनाएँ परस्पर को प्रमाणित करने में सहायक होते हैं।

डा० नगेन्द्र ने देव और उनकी कविता पर अनुसंधान किया तो मालूम हुआ कि हिन्दी साहित्य में छह सात तो देव' अथवा देवदत्त' नामधारी कवि आते हैं। उन्होंने उन सबका अलग अलग विवरण देकर अभीष्ट देव और अयो के बीच के अन्तर को विषय, भाषा भाव, शैली छन्द-व्यवस्था, काव्य की उत्कृष्टता आदि अनेक दृष्टियों से परख कर स्पष्ट किया। इस स्पष्टीकरण में प्रमाण के अभाव में अनुमान से आरोपविधि पूर्वक काम लिया गया है और प्रामाणिकता के निकटतम पहुँचने वाले अनुमान को अन्तिम मान कर स्वीकार किया गया है। चर्चा का महत्त्वपूर्ण अंग प्रथम तीन देव कवियों के विवरण में मिल जाता है जो इस प्रकार है—

(१) देव-काष्ट जिह्वा—भाषा भाव में काव्य हीन—काव्य, व्यक्तित्व और समय में अन्तर।

(२) देवदत्त—समय स० १७५२—रचना योगतत्त्व विषय और शैली में अन्तर।

(६) देवदत्त—जन्म स० १७०५—ललित काव्य' छन्द के बंदों में गिथिलता है परन्तु इनकी शैली में कुछ ऐसे स्पष्ट हैं जिससे भ्रम हा जाय कि यह देव की आरम्भिक रचना है। उदा०

भई रहत नटको बहा अटकी नागर नेह।

देव को भी एसी उपमाएँ प्रिय थीं। परन्तु 'मिश्रबधु' या 'लोज' में इनका उल्लेख नहीं है। ऐसी दशा में इस एक छन्द के आधार पर दो प्रकार की कल्पनाएँ की जा सकती हैं—

(१) यह छन्द देव के ही किसी प्रारम्भिक अप्राम्य प्रयो में से ही न हो।

(२) इसका रचयिता कोई दूसरा देवदत्त कवि था जो हमारे आलोच्य कवि से अथवा में लगभग २५ वर्ष बड़ा था। वह भी रीतिकार कवि था और उसने भी नायिका भेद पर कोई ग्रंथ लिखा। प्रस्तुत छन्द उन्नीसवीं शताब्दी के कलहानरिता के उदाहरण रूप लिया गया होगा। कविता में यह अपना उपनाम न लिख कर पूरा नाम 'देवदत्त' ही लिखता था जब कि देव के एक भी छन्द में 'देव' या 'देवजू' को छान्न नहीं

'देवदत्त' नहीं मिलता। हमारी भावना दूगरी ही है। इस कवि के कर्मों की श्रेय के कर्मों के साथ कुछ महत्व ही मन्वी की परन्तु देव व प्रथम श्रेष्ठ कर्मों के महत्त्व नहीं है कमबख्त विवेचना प्रथम है। इनके यह महत्त्व भी नहीं रहता है।

हो। तब ही इस प्रकार प्रथम श्रेष्ठ नाम के कर्मों की कर्मा करने का निष्पत्त स्वल्प प्रमाणित किया कि प्रसिद्ध कवि देव का व्यक्तित्व उन सभी के प्रथम था। उनका नाम श्रेष्ठता था। यह कविता गद्या में श्रेष्ठ तथा प्रथम के परिच्छेद के साथ ही देवता विनाया था। उ०

जायग गोप निवे कुल कायकुञ्ज कमनीय।  
देवता कवि जगत् में भये श्रेष्ठ रमनीय॥

करने सामोहन कवि देव का निष्पत्त करने पर धनुषपात उनके जीवन-व्यत का प्रामाणिक रूप प्रस्तुत करा का प्रथम करता है। इस विषय में एव ही तथ्य पर यदि अन्त गान्य बहिर्गन्ध घोर जायति तीना उमर्य हा परन्तु तीनों में तथ्यात्मक एतना का प्रभाव ही तो सेवक का साक्षात् कथित प्रामाणिक होने के कारण अन्त गान्य के रूप में स्वीकार करता चाहिए। अन्त गान्य के प्रभाव में बहिर्गन्ध का साधारण गोजा चाहिए। वह भी उपनयन १ है। तो जायति घोर अन्त गान्य प्रमाण की गोज की जाय। परन्तु उमर गानि १ मिन तो अनुसंधाना अध्ययन की विभिन्न सामग्रियों के साधारण पर साधुमा से निश्चय कर क्या कि जनश्रुति का मनेन कमी-जमी इतना भावक होना है कि महापत्र होन के बदल बाधा सही करता है।

देव के जन्म के विषय में अन्त गान्य—

(१) शुभ गतर में विद्यालया चङ्ग मोरही वप।  
बटी देव मुग देवता भाव विनाम सह्य॥

उपयुक्त दोहा भावविलास के उपसहार रूप में लिखे हुए तीन दोहों में से अर्थात् उनका जन्म स० १७४६ में देव ने तीनहवें वय में पदावलि किया था स० १६६१ लिखा है परन्तु देव की सानी के सागर उवा जनश्रुति पर साधित यह मत सबका निराधार ठहरता है।

(२) वण गोत्रा—देव ने स्वयं अपने आप को घोसरिया ब्राह्मण कहा है। भावविलास की हस्तलिखित प्रति में इसका प्रमाण मिलता है—  
घोसरिया कवि देव को नगर इटापो दास।  
जीवन नवल सुभाव रम कीही भावविलास॥

अतः साध्य के निकटतम का बहिर्साध्य—

प्रपौत्र भागीलाल द्वारा दिया गया वसु पत्रिचय देव का काव्यकुब्ज ब्राह्मण होने का अकाट्य प्रमाण है। यथा,

काश्यप गोत्र द्विवेदि कुल काव्यकुब्ज कमनीय ।

देवदत्त कवि जगत्त मे भये ऋव रमणीय ॥

डा० नगेन्द्र ने प्रसिद्ध कवि देव की खोज में बड़ी मत्तकता बरती है और कुछ स्थापित मानदण्डों का आधार लिया है। किंगी कवि की महानता का निरूपण करने में निम्नलिखित मानदंडों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(१) अपने ही युग में अथ महान कविया द्वारा सम्मानित ।

(२) सुव विर्यों की भाषा के समान भाषा ।

(३) परवर्ती कविया द्वारा सादर स्मरण ।

(४) परवर्ती कवियों द्वारा उसके काव्य का सरुलत और कवि तथा काव्य के सामान्य विवेचन में उद्धरण ।

(५) साहित्य के इतिहास में उसके महत्त्वपूर्ण स्थान की स्वीकृति ।

इन मानदण्डों के आधार पर निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत कर कवि देव की महानता सिद्ध की गई है—<sup>1</sup>

(१) काव्यविद् पंडितो और शास्त्रविद् कवियों में ऋव का नाम मध्ययुग में ही अत्यंत आदर के साथ लिया जाता था ।

(२) दास जैसे आचार्य कवि ने जिन मुकविया की व्रजभाषा को प्रमाण माना है उनके देव के नाम का सादर उल्लेख है ।

लीलाधर सेनापति निपट निधाज निधि,

नीलकण्ठ, मिश्र मुसदेव देव मानिए ॥

—काव्यनिर्णय ।

(३) इसके बाद सूदन कवि ने 'मुजात चरित्र के आरम्भ में अपने पूर्ववर्ती १७५ सत्कविया को प्रणाम किया है। इस सूची में भी देव का नाम यथास्थान आता है ।

(४) इनके अतिरिक्त कालिदास त्रिवेदी ने रतन हजारा में स० १७५५ के लगभग और दलपतिराय बगीधर ने अलंकार रत्नाकर में स० १७६२ के लगभग देवकृत छंदों को गौरव पूर्वक सत्काव्य के उदाहरणस्वरूप संकलित एवं उद्धृत किया



है। ये दोनों ग्रंथ देव के समय में ही संपादित किये गये थे फिर भी दोनों में देव की प्रतिभा की महत्वपूर्ण स्वीकृति है। इनके उपरांत फिर तो जितने भी प्रसिद्ध सग्रह हुए उनमें देव की उचित स्थान मिला। जैसे प्रतापसिंह के 'काव्यविलास' में या गोकुलप्रसाद के 'दिग्विजय भूषण' में भयवा सरदार के 'शृंगार सग्रह' आदि में। उपयुक्त तीनों ग्रंथों के कर्ता या संपादक रीतिकाल के गंभीर आचार्यों में से हैं। अतएव उनका मत देव के महत्व पर यथोचित प्रकाश डालता है, इसमें सन्देह नहीं। इधर भारती-दु बाबू हरिश्चंद्र के देव अत्यंत प्रिय कवि थे। उन्होंने मुख्यतः 'शब्द रसायन' और साधारण रूप से जाति विलास के आचार पर देव के कतिपय उत्कृष्ट छंदों का सफल सुदरी तिलक नाम से प्रकाशित किया।

अनुसंधान से आशा की जाती है कि वह बहिर्मुख के अतगत अपने आलोच्य लेखक के पक्ष विपक्ष में उपलब्ध तथ्यों को सगृहीत करके उनके सहारे निराय करे। इसके लिए अथ आलोचकों, अनुसंधानियों और इतिहासकारों के ग्रंथों का अध्ययन अनिवार्य है। यदि ऐसा अध्ययन उपयोगी और महत्वपूर्ण है तो उसका संक्षिप्त विवरण अपने प्रबंध में देना जरूरी है। डा० नगेन्द्र ने इसी शैली को अपनाते हुए देव विषयक उपलब्ध तथ्यों को इस प्रकार लिखा है—

(१) देव के प्रपौत्र भोगीलाल ने अपने रसग्रंथ—'वदतविलास' में कविकुल वरण करते हुए अपने और अपने पूज्य देव के वंश वंश गौतम आदि का निश्चित एवं प्रामाणिक विवरण दिया है—

काश्यप गोत्र द्विवेदि कुल कायकुंज कमनीय ।

देवदत्त कवि जगत में भये देव रमणीय ॥

(२) देव की प्रतिभा का विवेचन डा० शिवसिंह सेंगर के शिवसिंह सरोज में आया है।

(३) डा० प्रियसन के 'भारत की आधुनिक भाषाओं का साहित्य स० १९४० में प्रकाशित ग्रंथ में देव को अपन युग का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हुए उन्हें भारत के सत्कवियों में स्थान दिया गया है।

(४) सुखसागर तरंग की भूमिका प० बालकृष्ण मिश्र द्वारा लिखित है। देव के व्यक्तित्व और काव्य का यह पहला विवेचन है (स० १९५४)। इसमें देव के जन्म जाति आदि का प्रामाणिक अनुसंधान है।

डा० नगेन्द्र ने जिन स्रोतों से तथ्यों का सग्रह किया है उनका विवरण—

(१) सुखसागर तरंग में उपलब्ध तथ्य ।

(२) इसके १३ वप उपरान्त मिश्र-बधुघो का 'नवरत्न' म तथ्य ।

(३) मिश्रबधु 'दिव भयावली' मिश्रबधुविनोद 'देवमुघा'—इनमें कहीं-कहीं भेद है । नवरत्न के छठे सस्करण में यह भेद मिट गया है ।

(४) प० कृष्णबिहारी मिश्र— देव और बिहारी —स १९७७

(५) लाला भगवानदीन— बिहारी और देव में दोष-दशन ।

(६) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास ।

(७) बाबू श्यामसुं र दास का इतिहास ।

(८) प० गोकुलचंद्र दीक्षित—'शृ गार विलासिनी का सम्पादन । इसमें लखक ने १५० पृष्ठों में भूमिका लिखी है पर तु तीन दोष आ गये हैं ।

(i) विवेचन म गम्भीरता नहीं है, और जल्दबाजी के कारण उचित परीक्षा का धैय नहीं रहा ।

(ii) वाछिन ऐतिहासिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण की निघनता के कारण विवेचन बिखरा हुआ और असंगत हो गया है । उसमें सन् सवत का भेद नहीं रखा गया है ।

(iii) बिना ग्रथ देखे समति दे दी गई है ।

(९) कठी देव मुख देवना भावविलाम महप'—यह पक्ति 'देव को सरस्वती सिद्ध थी ऐसी किंबदंती को अत साक्ष्य के रूप में प्रमाणित करनी है ।

### (३) लोकप्रिय महाकवि

किसी भी महान और लोकप्रिय कवि के जीवन वत्त को पूरात प्रामाणिक रूप में उपलब्ध करन म अनुसंधाता को साक्ष्या से बढकर अपन विवेक से काम लेना पडता ह । ऐस कवि के जीवन चरिन विषयक उपलब्ध ग्रंथों का परीक्षण करने में प्रामाणिकता का विशेष स्थल करना पडता है । 'गोस्वामी तुलसीदास पर लिखे गये प्रबध म जीवन वत्त के परीक्षण की वैज्ञानिक शली के नशन होते हैं । इन्होंने सदिग्ध तथा असदिग्ध जो जा मामग्री प्राप्त की उसका सन्निप्त विवरण इस प्रकार दिया गया है—

'स० १९६१ की ज्यण्ट मास की 'मर्याग' मासिक पत्रिका में बाबू इन्द्रदेव नारायण ने तुलसीदास जी के एक बहुत्वाय जीवन चरिन की सूचना प्रकाशित की । यह महाकाव्य गाथाइजी के शिष्य बाबा रघुवरदास का लिखा बताया गया था । इन्द्रदेव नारायण जी ने इस ग्रंथ का परिचय या दिया था—

1 श्यामसुन्दर दास और पीतावर दत्त बडधवाल पृ० १५

‘इस ग्रंथ का नाम ‘तुलसी चरित्र’ है। यह बड़ा ही बहुत ग्रंथ है। इसके मुख्य चार खंड हैं—(१) भवध (२) काशी (३) नमदा और (४) मधुरा। इनमें अनेक उप खंड हैं। इस ग्रंथ की मग्या इस प्रकार लिखी हुई है—

चौ० एक लाख ततीस हजार। नोंसे बासठ छंद उदारा ॥

यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन चरित्र विषयक मुख्य मुख्य वृत्तान्त नित्य प्रति के लिये हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय गिण्य महात्मा रघुवरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रंथ की कविता श्रीराम चरित मानस के टक्कर की है और यह तुलसी चरित्र बड़े महत्त्व का ग्रंथ है। इससे प्राचीन समय की बातों का विशेष परिचय होता है।

अनुसंधान ने यह उद्घरण देने के बाद इस रचना को सदिग्ध मानने के युक्तिसंगत कारण प्रस्तुत किए हैं—

‘किंतु खेद है कि इस बहुत ग्रंथ के एक लाख ततीस हजार तीसरी बासठ छन्दों में से हम केवल भवध खंड की ४२ चौपाय्या और ११ दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी ने उक्त लेख में दे दिया है। ये दोहें चौपाय्या इस पुस्तक के पहले परिशिष्ट में दी गई हैं। शेष उक्त छंदों का जगत के सामने रखने की उत्तरता उन्होंने नहीं दिखाई है।

(२) उक्त ग्रंथ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी के अतिरिक्त और किसी सचप्रतिष्ठ लेखक ने नहीं देगा है।

संभवतः वे उमकी जाब बराना पसन्द नहीं करते। उस विषय के पत्रालाप में भी इन्होंने धानावानी की है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह ग्रंथ कहीं तक प्रामाणिक है।

अनुसंधान को तुलसीदास के जीवन चरित्र का एक और ग्रंथ उपलब्ध हुआ जिसमें उन्होंने प्रामाणिक मानने हुए उसके समय के पत्र में कारण प्रस्तुत किये हैं—

(१) अभी छोटे दिन का गोस्वामीजी के एक और गिण्य बाबा बेनी नाथनाथ का दिया एक ग्रंथ मिला है जिसकी जीव ज्ञान में किसी प्रकार की संशय नहीं है। इस ग्रंथ का नाम मूल-नामा चरित है। इसकी भाषा के समान

प्रकाशित करके उनाव के वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल तुलसी प्रेमिया के हार्दिक धन्यवाद के भाजन हुए हैं।

× × ×

“पंडित रामकिशोर शुक्ल को बेणी माधवदाम की प्रति काक भवन, धयोध्या के महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी।

(२) महात्मा जी की कृपा से उनकी प्रति को देखन का हमें भी सौभाग्य मिला है।

(३) जिस प्रति से यह प्रति लिखी गई थी वह भोजा मन्व पोस्ट भोवरा जिता गया के पंडित रामधारी पाडेय के पाम है। पाडेय जी ने लिखा है कि यह उनके पिता को गोरखपुर में किसी ने प्राप्त हुई थी। तब से वह उनके यहाँ है और नित्य प्रति उमका पाठ होता है।

(४) पाडेय जी इस प्रति को पूजा में रखते हैं इससे वह वाटर तो नहीं जा सकती परंतु यदि कोई उसे वहाँ जाकर देखना और जांच करना चाहे तो ऐसा कर सकता है।

(५) प्रति का विवरण—जांच करान से जात हुआ है कि यह प्रति पुराने देशी कागज पर दब नागरी अक्षरों में लिखी है। इसमें नौ सही एक बटा दो इंच गुणा पाँच सही एक बटे दो इंच के आकार के ५४ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पक्तियाँ हैं। ग्रथ की पुष्पिका में जात होता है कि यह प्रति स० १८४८ की विजयादशमी को समाप्त हुई थी। इसे किसी पन्नि राम रत्नामणि और उनके पुत्र रमादाम ने लिखा था।

(६) प्रसंग से संबंधित तिथिया का आधार—बेणी माधवदास की तुलसी में भेंट स० १६०६-१६१६ के बीच। तुलसी की मृत्यु स० १६८०। सपक ६४ ७० वष।

निष्कर्ष—उनके लिखे जीवन चरित्र की प्रामाणिकता का विषय में संदेह के लिये बहुत कम अवकाश ही संभव है। यदि यह मूल चरित्र प्रामाणिक न हो तो आरचय की बात होगी।

इसके बाद अनुसंधाता ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर आगे के प्रकरण में तुलसी के जीवन का पुनर्निर्माण शीघ्र में अपनी जानकारी में प्रामाणिक जीवन वक्त लिखा है। यहाँ ‘पुनर्निर्माण शब्द तथ्य का पुनराख्यान’ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसमें उन्होंने तीनों माध्या का आधार लिया है तथा प्रमाण के अभाव में अनुमान

या विवेकपूर्वक प्रयोग किया है। उग्रहरण के रूप में वहाँ दो प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं<sup>१</sup> :

(१) तुलसी का नाम 'रामबोला —  
प्रमाण (घ) अतः साह्य—

(i) पवितावली—

'रामबोला' नाम है गुलाम राम साहि को ।

(ii) विनय पत्रिका—

राम को गुलाम नाम 'रामबोला' राख्यो राम ।

(ब) बहिर्साह्य—

(१) मूल गोसाईं चरित के अनुसार रामबोला ।

(२) कुलगुरु तुलसीराम ने तुलाराम और 'तुलसी' भी रक्त दिया था। जनश्रुति इसी बात को थोड़ा बदलके बताती है कि उन्होंने तुलसीदास के वागी से शिक्षा प्राप्त करके लौटाने पर 'तुलसी' नाम रखा ।

(क) जनश्रुति (१) नरहर्यानिन्दजी ने हरिपुर में 'रामबोला' कह कर ही बालक तुलसी को प्रबोधन किया था ।

(२) जन्म से ही 'राम' कहा था, इसलिए उनका नाम रामबोला रखा गया। इसी अर्थ में विनय पत्रिका की पविता की सगत लगाई जा सकती है ।

इन तथ्यों के आधार पर अनुमान के सहारे अनुसंधान ने जो निर्णय दिया वह इस प्रकार है—<sup>२</sup>

(१) रामबोला सकार का नाम नहीं था ।

(२) कभी कभी जनश्रुति अतः साह्य और बहिर्साह्य के अभाव में संशयित तथ्य का काम देती है—<sup>३</sup>

तुलसीदास के समुर और पत्नी का परिचय—यमुना के उस पार तारपिता नामक एक गाँव था। उस गाँव में भारद्वाज गोत्रीय एक ब्राह्मण देवता रहते थे। वे बड़े धर्मनिष्ठ थे। वे सभी पर्वों को मानते थे। कार्तिकी द्वितीया का स्नान करने के लिए वे एक समय इस पार राजापुर आये। उनके कुटुम्बी जन भी उनके साथ थे। तुलसीदास की कथा की प्रशंसा उ होने भी सुनी थी। दान करके वे उनकी

१ वही पृ० १७ १८

२ वही, पृ० ३० ३१

कथा सुनने आये । व्यास गद्दी पर बैठे हुए तुलसीदास की योग्यता, उनकी शोभा और उनकी शारीरिक सुन्दरता को देख कर वे उन पर रोम गए और जाते-जाते उनके बारे में पूछताछ करते गये, जनश्रुति इन ब्राह्मण देवता को दीनबन्धु पाठक और उनकी कन्या को रत्नावली नाम से जानती है, पर बेणी माघवदास इस विषय में चुप हैं ।

‘तुलसीदास’ के जीवन और व्यक्तित्व तथा कृतिरत्न पर अनेक बड़े बड़े विद्वानों द्वारा अनुसंधान ग्रन्थ लिखे गये हैं, यह उनकी महानता का निश्चित प्रमाण है । परन्तु प्रत्येक अनुसंधान की अपनी विशेष दृष्टि, मायता, सत्कार रचि और जान-कारी के रहत भी वनानिक प्रयोगशाला के एक प्रयोग पर काम करने वाले विभिन्न प्रयोगकर्ता एक ही परिणाम की घोषणा करते हैं वैसी अन्तिम निष्कप की एकता साहित्य के अनुसंधान में प्रायः नहीं देखी जाती । प्राचीन कवियों के आत्मचरित के बारे में इस प्रकार की विभिन्नता हमारे ध्यान को आकृष्ट किये बिना नहीं रहती तुलसीदास विषयक उपयुक्त अनुसंधान के विरोध में एक ग्रन्थ अनुसंधान ग्रन्थ बताता है कि बेणी माघवदास कृत मूल गोसाइ चरित’ भी अप्रामाणिक है । उन्होंने उसकी अविश्वसनीयता के कारण इस प्रकार बताया है—<sup>१</sup>

(१) चमत्कार

(२) बचपन

(३) प्रेत ने हनुमान दशन कराया, परन्तु तुलसी भूत प्रेत के विरोधी थे ।

(४) विनय पत्रिका (राम विनयावली) ।

(५) गीतावली प्रथम कृति (प्रौढ) स० १६१६ ई० । वराम्य सदीपनी रामाज्ञाप्रश्न (अप्रौढ) स १६७० । क्या तुलसी की प्रतिभा तीस वर्ष तक मूर्च्छित रही ?

(६) जन्म स्थान गलत—रजियापुर (राजापुर) नहीं, ऐतिहासिक प्रमाण से वह विक्रमपुर है ।

(७) सूरका चित्रकूट जाकर सागर दिखाना स० १६१६ में ।

(८) मीरा ने स १६१६ में तुलसी को पत्र लिखा । स १६०३ में मीरा दिवंगत हो गई फिर पत्र कस लिखा ?

(९) गग, केशव, जहागीर और अकबर से मिलना गप्प है ।

(१०) पचायतनामा ।

(११) जन्म मृत्यु 'मानस समाप्ति पत्नी निघन की तिथियाँ दत्त हैं।

इस जीवनी प्रथम अनुमघाता ने ललित हाने वाली प्रामाणिकता का उल्लेख भी किया है—'मनापवीत और विवाह की तिथियाँ प्रामाणिक हैं। इसका प्रमाण पुरातत्त्व विभाग से प्राप्त होता है।

तुलसीदास के जीवन चरित की सामग्री इकट्ठी करने के लिए हमके अतिरिक्त अन्य अनेक स्रोत इस अनुमघाता ने जोड़े और उन पर अपना मत दिया जो इस प्रकार है—

(क) बहिर्साक्ष्य सामान्य साहित्य

(१) तुलसीचरित—रघुवरदास। अप्रामाणिक।

(२) गोसाईं चरित—भवानीदास। अविश्वसनीय।

(३) अन्य कृतियाँ भी अविश्वसनीय—

षट्शतमानस—तुलसी साहब का जन्म—चरित्र, सदिग्ध।

गौतमवर्द्धका—कृष्णदास मिश्र स० १६८१ पूर्य प्रामाणिक नहीं। मन्त्री निघन तिथि थावण शुक्लातीज स० १६६०।

अविष्यपुराण—अप्रामाण्य।

भक्तमाल टीका और टिप्पणी पदप्रसंगमाला दो सौ वाचन वैष्णवन की वार्ता—विचारणीय।

स्थानीय सामग्री—काशी अयोध्या राजापुर सोरो बनावली।

(ख) जनश्रुतियाँ—५०

(ग) चित्र—६

(घ) अतः साध्य—तुलसी साहित्य की प्रामाणिक रचनाएँ।

अनुमघाता ने अतः साध्य के आधार पर तुलसीदास का जीवनवत्त लिखा है।

(४) अविज्ञापित कवि —

उपयुक्त सब कवि हिन्दी साहित्य में अच्छी प्रतिष्ठा पाये हुए हैं। उनका जीवनवत्त प्राप्त करना जितना सरल है उतना ही अतिशयोक्तियों का भरमार के कारण कठिन भी है। परन्तु अविज्ञापित कवियों के बारे में अक्सर प्रमाण का अभाव रहता है और अनुमान का सहारा लिया जाता है।

कवि का संप्रदाय और वरुण — अनुसंधाता न सुदामाचरित' के कवि नरोत्तमदास के सम्प्रदाय और वरुण का निश्चय निम्नलिखित प्रक्रिया के आधार पर किया है।

(क) 'रहिसाक्षय १ शिवसिंह सरोज' में नरोत्तमदास, ब्राह्मण जिला सीतापुर कस्बा बाटीघाणे लिखा हुआ है<sup>1</sup>।

२ 'मिश्र ब बु विनो' में मिश्रब घुघो न हम आधार पर उनको कायकुम्भ ब्राह्मण बताया है। सीतापुर में अधिकतर वे ही लाग रहते हैं।

(ख) अनुमान 'नरोत्तम' के साथ 'दास' युक्त है, इससे यह अनुमान किया जाता है कि ये भागवत सम्प्रदाय के अनुयायी थे क्योंकि परम्परा यह देखने में आती है कि भागवत सम्प्रदाय के अनुयायी अपने को दास कहते थे या लोग उनके नाम के साथ 'दास' कहा करते थे जैसे तुलसीदास, मूरदास, केशवदास।"

(५) अन्य सहायक प्रमाणों का जीवनवत्त की जानकारी में स्थान —

म्यूजियम, ऐतिहासिक ग्रंथ, शिल्प और चित्रकारी प्रसिद्ध व्यक्ति का प्रामाणिक वत्त प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। अनुसंधाता ने कबीर जी के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए इन साधना का उपयोग किया और उसका विवरण इस प्रकार दिया।<sup>2</sup>

'अत साम्य, सत माहित्य किंवदंतियां तथा हम काल की भय सत पुस्तको तथा जीवनिया के अतिरिक्त कुछ ग्रंथ एस साधन भी है जो कबीरदास जी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। इन साधना में आईने अबबरी (अबुलफजल कृत) उल्लेखनीय है। दक्खिना (मानसिन फानी कृत) तथा खजिनतुल आसफिया' (मोहसिन फानी कृत) द्वारा भी कबीर के जीवन तथ्यों का उल्लेख होता है। इस प्रकार हम निम्नलिखित कबीरदास जी की जीवन सम्बंधी घटनाओं पर उक्त साधनों के अंतर्गत प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे—

- (१) कबीर की जन्म मृत्यु की तिथियां
- (२) कबीर का नाम
- (३) कबीर की जाति और जन्म मृत्यु के स्थान
- (४) कबीर का परिवार
- (५) कबीर के गुरु
- (६) कबीर का पयटन

1 सुदामा चरित, कलाशविहारी, पृ १

2 कबीर साहित्य और सिद्धांत, यशदत्त शर्मा, पृ० २



(७) कबीर की निम्न परम्परा

(८) कबीर के जीवन की अथ प्रसिद्ध घटनाएँ।

चित्र या मूर्ति की खोज

जीवन वस्तु के अनुसंधान में व्यक्ति के प्रामाणिक चित्र या मूर्ति की खोज उसका एक अनिवाय अंग है क्योंकि मनोवैज्ञानिक प्रभाव का कारण उसमें परोक्ष को प्रत्यक्ष करने की, भूत को वर्तमान बनाने की और मत को जीवन्त करने की तथा उसकी प्रामाणिकता में विश्वास उत्पन्न कराने की अदृश्य शक्ति है। उससे निराधार कल्पना को एक ठोस आधार मिलता है।

एक अथ अनुसंधान ने कबीर के प्रामाणिक चित्र को पान के लिए ऐसा ही प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं—

कबीर मूर्तिपूजा के विरोधी होने से उनके मठों में उनकी मूर्ति नहीं है। उनका चित्र कहीं कहीं दीवारों या शिलाओं पर चित्रित है—

'कबीर का कोई प्राचीन चित्र तो मिलता नहीं है। उनके जो चित्र मिले हैं वे उत्तर मध्यकालीन प्रतीत होते हैं। कबीर ग्रन्थावली में कबीर के दो चित्र मिलते हैं—एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का। पहला चित्र कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कबीरपथी स्वामी गुगलानन्द जी से मिला है। श्यामसुन्दरदास का मत है कि दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के नहीं मालूम पड़ते। दोनों की आकृतियों में बड़ा अंतर है। यदि दोनों नहीं तो इनमें से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा। दोनों भी अप्रामाणिक हो सकते हैं किन्तु सतत गुगलानन्द जी वृद्धावस्था वाले चित्र का सम्बन्ध में अत्यन्त प्रामाणिकता का दावा करते हैं जो ४६ वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्ति का ही हो सकता है।

'प्रसंगिक इस चित्र के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यह अवश्य ही अथ चित्रों से अधिक प्रामाणिक है। कबीर के दो चित्र, जो कबीर ग्रन्थावली और श्री महोदय की पुस्तक 'कबीर एण्ड हिज फालावस' में दिये गये हैं परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं। ग्रन्थावली के चित्र का समय अज्ञात है किन्तु श्री के चित्र का समय १८ वीं शताब्दी है। इसमें सन्देह नहीं कि ये चित्र वास्तविक हैं। कबीर के गले एक हाथ में कण्ठी और भाला का प्रतिरिक्त कबीर की भीनी भीनी चदरिया भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस चित्र का आधार प्रचलित प्रभाव है इतिहास या सत्य नहीं।

लेखक के जीवन वस्तु के अनुसंधान में महत्वपूर्ण और आवश्यक अंगों पर

अनुसंधान की प्रक्रिया का निरूपण करते हुए पर्याप्त प्रकाश डाला गया। अब उसके कृतित्व के पक्ष का अनुसंधान जिस प्रक्रिया का अपना कर किया जाता है उसका निरूपण किया जायगा।

### (ख) लेखक की प्रामाणिकता

प्रमाण और प्रमाण के अभाव में अनुमान, के सहारे मुख्यतः तीन विषयों की खोज आवश्यक होती है—लेखक की प्रामाणिकता, रचना की प्रामाणिकता और रचना काल।

लेखक की प्रामाणिकता के लिए रचना का अध्ययन कर लेखक की खोज की जाती है इसलिए रचना उपलब्ध होनी है। इस खोज शंभो को मिथ्यारोप का अणुवाद प्रमाणपूर्वक वास्तविकता का समर्थन और सामान्य अनुमान द्वारा आरोपणविधि कह सकते हैं। अणु रचना के नेपथ्य अणु हैं या हो सकते हैं। अथवा नहीं हैं या नहीं हो सकते—इस तथ्य का अनुसंधान युक्तियुक्त ढंग में सिद्ध करने में समय होना चाहिए। लेखक की प्रामाणिकता की खोज के कई कारण हैं—(१) एक लेखक की पूर्व की रचना की तुलना में बाद की रचना का स्तर नीचे दर्जे का हो तो लेखक के बारे में सन्देह हो जाता है (२) जानबूझ कर प्रसिद्ध कवि के नाम पर सामान्य कवि की रचना का प्रचलन, (३) एक नाम के दो लेखक, लेखक विषयक सन्देह या भ्रम, और (४) अनजान में बड़े कवि के नाम पर छोटे कवि की रचना।

(१) रचना के स्तर के आधार पर लेखक की प्रामाणिकता—बरख रामायण के बाद की रचनाओं में, जो और रचनाओं से स्पष्ट अलग की जा सकती हैं, प्रधान अनुमान बाहुक है जिसमें उन्होंने बाहुपीडा से पीड़ित होकर अनुमान जी की स्तुति की है। बहुत से लोगों को इसके गोसाई जी द्वारा रचित होने में भी सन्देह है। कदाचित् इसी कारण कि वह इतना अच्छा नहीं बन पड़ा है, जितनी उनकी और रचनाएँ।<sup>1</sup>

(२) प्रसिद्ध कवि के नाम पर सामान्य कवि की रचना का जानबूझ कर प्रचलन—रचना के प्रामाणिक लेखक के मन में प्रसिद्धि का विशेष मोह होता है और अपनी रचना के यशस्वी होना में वह विश्वास नहीं रखता, तब अपनी नाम-प्रसिद्धि का मोह छोड़ कर वह अपने अनुकरणीय प्रसिद्ध या लोकप्रिय कवि का नाम अपनी रचना में जोड़ देता है। ऐसी स्थिति में बड़ी सावधानी से बर्णन करने इसके पक्ष विपक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ते हैं। कबीर जी के नाम पर १४० रचनाएँ प्रचलित हैं। अनुसंधान ने इनकी पूरी

1 गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुंदरदास और पीतांबरदास बड़व्याल, पृ ७

सूची देकर मिलता है— इनमें से अधिकांश रचनाएँ हमें अद्यतन भी मिल चुकी हैं। इनके परवर्ती रचनाएँ जो निश्चित रूप से अद्यतन सत्यों की वृत्तियाँ हैं, कबीर के नाम से सम्मिलित कर सन के प्रतिरिक्त हम कुछ नाम स्वतंत्र अर्थात् रूप में एसे भी मिलते हैं जिनकी वास्तव में कोई स्वतंत्र सत्ता नही हानी चाहिए। भाग अनुसंधाना न इन सदिग्ध रचनाओं का तीन विभागों में विभाजन किया—<sup>१</sup>

(१) कुछ अद्यतन कबीर के हैं, न कबीर पद्य के, किंतु कबीर के नाम पर रच रहे हैं।

(२) कबीर के पश्चात् उनके पद्य के सत महात्माओं द्वारा कुछ रचनाएँ हुईं ज्ञात होती हैं। उनमें भाषा तथा भाव स्पष्ट रूप से न कबीर के हैं और न उनके जीवन काल के ही, बसल महा कही अद्यतन की पुष्टि के लिए प्रमाण-वाचक की तरह कबीर की साक्षियों अथवा पदों का दृष्टान्त दिया गया है।

(३) इनके प्रतिरिक्त जो रचनाएँ मिलती हैं, उहीमें कबीर की वृत्तियाँ हैं, यद्यपि संपूर्ण रूप से किसी भी एक अद्यतन को कबीर का नहीं कहा जा सकता क्या कि कोई भी अद्यतन ऐसा नहीं है जिसमें स्पष्ट रूप से अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों।<sup>२</sup>

कबीर के नाम पर प्रचलित अद्यतन संप्रदायों के ग्रन्थ—

(१) विचारमाला—अत में कबीर का एक बहुरा लिखा हुआ था।

(२) काफिर बोध—किसी कबीर पद्यों द्वारा बाद में जोड़ा हुआ जान पड़ता है कहे कबीर पीर को जानी, काफिर बोध संपूरन बानों।

इसमें रचयिता का स्पष्ट नाम है 'रतननाथ'—

बठी रह मामा हीवा । कुफ बसे अयमी रावा ॥

इतना सवाल रतन हाजी ने कही ।

(३) जनम बोध—कही भी कबीर या कबीर पद्य का नामोल्लेख नहीं। केवल आरंभ में चार पुरुष और बयालीस वंश की दया बनाई गई है। पाठ होता है कि ब्राह्मण विरोधी तथा अहिंसाचरक अद्यतन होने के कारण ही इसे कबीरपद्यों में समाविष्ट कर लिया गया।

(४) एक नाम के दो लेखक—एक नाम के दो व्यक्ति ही तो विशिष्ट लेखक के विषय में निश्चय का एक खास तरीका है। अनुसंधान के सामने एक साथ

१ कबीर के बावली, स० डॉ० पारसनाथ तिवारी, पृ० ३३-२५

२ वही, पृ० ३५

दो नददास अलग अलग परिचय ल के साहित्य के इतिहास में प्रस्तुत हुए तो उन्होंने दोनों के जीवनवृत्त का विवरण प्राप्त करने, दोनों का स्थान साहित्य में निर्धारित करते हुए विशिष्ट 'नददास' को, रचना तथा ग्रंथ स्रोतों के सहारे स्थापित किया।"—<sup>1</sup>

प्रथम तथा प्राचीनतम जिस ग्रंथ में नददास जी का उल्लेख हुआ है वह श्री नारायणदास प्रसिद्ध नाम नाभादाम जी का भक्तमाल है, जो भक्तसंप्रदाय में अत्यंत आदर के साथ देखा जाता है और साहित्य के इतिहास के लिए एक प्रामाणिक ग्रंथ है। नाभादास जी जयपुर के अतगत गलता निवासी भगवान जी के शिष्य थे और इनका रचना काल स १६४० और स १६८० के बीच में रहा है। भक्तमाल में दो नददास का उल्लेख है, जिनमें एक के विषय में केवल एक पंक्ति इस प्रकार दी गई है—

नाभा ज्यों नददास मुई एक बच्छ जिवाई ।

प्रियादास जी ने इस पर एक कवित्त में टीका की है, जिससे ज्ञान होता है कि यह बरेली निवासी एक भक्त थे और खेती करते हुए साधु सेवा में लगे रहते थे। इनके द्वार पर बठड़ा मार कर किसी दुष्ट ने सुला दिया था, जिसे इन्होंने जिला दिया। यह अष्टछाप के सुकवि नददास जी नहीं हो सकते क्योंकि इसमें इनका स्थान दूसरा दिया है, यह व्यवसायी बड़े गधे ह, और इनका कवि होने का संकेत तक नहीं है। दूसरे नददास जी के विषय में निम्नलिखित छप्पय दिया गया है—

(१) लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में भागर ।

सरस उचित रस जुनि भक्ति रस गान उजागर ॥

प्रचुर पयधि लीं सुजस रामपुर ग्राम निवासी ।

सबल सुकुल सबलित भक्त पद रेनु उपासी ॥

श्री चरित्रहास भगवत सुहृद परम प्रेम पद में पगे ।

श्री नददाम भानदनिधि रसिक सु प्रभु हित रग मने ॥

उक्त छप्पय की प्रथम दो पंक्तियों में यह ज्ञात होता है कि नददास जी ने कृष्ण लीला के पद तथा रसरीति पर ग्रंथ लिखे हैं। इनकी रचनाओं को देखने से यह बहुत ठीक ज्ञात होता है कि रचनाएँ रसमजरी तथा विरहमजरी और रीतिग्रंथों के अंतर्गत ही आ सकती हैं और घनेकाय तथा नाममाला कोष से संबंधित हैं। रूपमजरी आख्यानक रूप में होते हुए भी कृष्ण

1 नददास प्रयावली अजरदनदास, पृ० ७८

भक्ति म पूरा है तथा अय सभी रचनाएँ कुपण लीना सबधी हैं। इनकी कविता मे उन्नियी का गारम्य तथा भक्ति रम की पूरणा का होना प्रगिद्ध ही है।

‘इसके बा’ की पवित्रता स पता नगता है। यह रामपुर के निवासी थे, शुक्ल या सुनुत वग म उत्पन्न हुए थे भवता की सेवा करत थे चन्द्रहास मुद्द थे तथा परम प्रेमपथ के पथिक थे।’

(२) ध्रुवदाम के ‘भवत नामावली’ म नन्ददासका उल्लेख।

(६) दासी बावन वण्यवन की वानी अनुसंधाना की इस प्रथ म से एक तथ्य का समथन प्राप्त हुआ और अय तथ्य की उपलधि भी हुई।<sup>१</sup> नन्ददास तुलसीदास जी के भाई थे। —इसके समथन मे प्राप्त तथ्य—

(१) सूत्र शेत्र माहारम्य—नन्ददास जी क पुत्र कृष्णदास

(२) वपफल (ज्योतिषप्रथ)—नन्ददास

रामचरितमानस के बालनाट अयोध्याकांड तथा अरण्यकांड की हस्तलिखित खडित प्रतियाँ—कृष्णदास की।

(४) रत्नागली चरित्र णटा जिना सोरा ग्राम के निवासी मुरलीधर चतुर्वेणी कृत रचना काल स० १८८६।

(५) वदावन निवासी प्राणश कवि अष्टसला कृत।

(६) मुदरदास के पद।

इनस प्राप्त तथ्यों के आधार पर अनुसंधाना ने प्राभासिक रूप से निष्कथ निकाला कि— एक पितामह के तुलसीदास नन्ददास तथा चन्द्रहास वीत्र थे और अतिम सबमे छोटे थे।<sup>२</sup>

अनुसंधाना न अपने विशिष्ट लेखक का निष्कथ कर लेने पर उसका जीवन वक्त प्रस्तुत किया—<sup>३</sup>

जन्म स० १६०० के आसपास।

माता पिता—कमला आत्माराम।

जाति—ब्राह्मण, सनाढ्य शुक्ल।

भाई—तुलसीदास चचेरे बड़े भाई व चन्द्रहास छोटे सहोदर।

सतान—कृष्णदाम, पुत्र।

१ वही, पृ० ८ २२

२ वही पृ० १६

३ वही पृ० २०

विहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या

गुरु—शिलागुरु स्मात् वप्याव वेदज्ञ आहाण नसिंह जी ।

दीक्षागुरु—गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ।

जन्मस्थान—एटा जिले के अंतर्गत सोरा के पास रामपुर ग्राम, जो अब श्यामपुर कहलाता है ।

निवास स्थान—ब्रजमण्डल ।

मित्र—रूपमजरी, वप्यावी, श्रीकृष्ण की उपासिका ।

स्वभाव—दीक्षा पूर्व विषयासक्त । बाद में कृष्ण के अनन्य भक्त, सहृदय भावुक कवि ।

मृत्यु—स० १६६२ से पूर्व ।

(४) लेखक विषयक सदेह या भ्रम—

रचना के लेखक के बारे में सदेह या भ्रम होने के कई कारण हो सकते हैं ।

(क) मतभेद कभी अनुसंधाता की विशिष्ट विचार शैली और हृदय भावना या भाग्रहवश सम्यक प्रमाण के उपलब्ध होते हुए भी प्रामाणिकता में अप्रामाणिकता या सदिग्धता का आरोपण हो जाता है । कवि 'देव रचित देवमाया प्रपंच नाटक' को लेकर डॉ० रामचंद्र शुक्ल और डॉ० नगेन्द्र जैसे महान आचार्यों के बीच गभीर मतभेद है ।

डॉ० नगेन्द्र ने 'देवमाया प्रपंच नाटक' के लेखक कवि देव हैं —सप्रमाण इस प्रकार का समर्थन करते हुए लिखा है<sup>१</sup>—

(१) 'प० रामचंद्र शुक्ल को इस ग्रंथ की प्रामाणिकता में सदेह है, परन्तु वास्तव में उसके लिए कोई स्थान नहीं है । ग्रंथ के अंत में कवि ने स्पष्ट ही अपने नाम का उल्लेख किया है—

हृदये बसौ कवि देव के सत सगति को पाय ।

(२) शैली पर देव की छाप असदिग्ध है ।

(३) सबसे पुष्ट प्रमाण—देव ने सवस्वीकृत ग्रंथों में जो छन्द हैं इसमें भी हैं । उदा० देवनागरी के जगन्गन पञ्चीसी खण्ड में शारंगायन में आदि ।<sup>२</sup>

(४) प्रभाव—प्रबोध चन्द्रोदय कृष्ण मित्र का । यह सैद्धांतिक रूपको का आदर्श नाटक है । दोनों की शैली एक ही है प्रतिपाद्य में मोटी बहूत

देव और उनकी कविता डॉ० नगेन्द्र पृ ६७

२ वही, पृ ७०

समानता है। शीशु ने शाकराहुत सिद्धांत को माना है। दम्भ मोह भ्रष्टा आदि पाप भी समान हैं। बस इमके आगे कोई समानता नहीं है। कथावस्तु दोनों की सबका भिन्न है और आत्मा ये भी किसी प्रकार का साम्य नहीं है।

(ख) अज्ञान में बड़े कवि के नाम पर छोटे कवि की रचना का कुछ जाना—

इस प्रकार की भूलें खोज में असावधानी के कारण हो जाती हैं। भिखारी दास का छंदारण्य' हिन्दी के पुराने विंगल ग्रंथों में बहुप्रचलित है। ऐसा व्यवस्थित और विस्तृत विंगल दूसरा नहीं मिलता। काशीराज के यहाँ जब स० १८७१ में भिखारीदास जी के साहित्यिक ग्रंथों की प्रतिलिपि हो रही थी तब इस विंगल के प्रस्तार आदि को संशोधन में समझाने के लिए काशीराज के किसी दरबारी कवि ने छंदप्रकाश' नाम से इसमें परिशिष्ट जोड़ दिया खोज (३० ३२) में यह भिखारीदास जी का स्वतंत्र ग्रंथ मान लिया गया है पर इसमें स्पष्ट उल्लेख है—

२ दोहा सोरठा, १ दोहा—इस क्रम से महाराज का परिषय (प्रथम पक्ति में बदना) फिर महिमा गान तथा पाँचवे छंद सारठे में—

'सुकवि भिखारीदास किमी प्रथ छंदारणी।

तिन छंदनि का प्रथम भो महाराज पसंत हित ॥५ ॥'

लोकाववाद—

लेखक के नाम के स्थानापन्न होने में बड़ी लोकाववाद कारण होता है। लिखता सब अज्ञमेरी है और छपना सब मधिलीरण के नाम में है—इस लोकाववाद का निवारण स्वयं मुझी अज्ञमेरी को अपने गुप्त जी का और मेरा सबंध' लेख द्वारा बाध्य होकर करना पडा।<sup>१</sup>

(ग) रचना का प्रामाणिकता

लेखक की प्रामाणिकता और रचना की प्रामाणिकता बहुत हद तक सापेक्ष महत्त्व रखते हैं। फिर भी दोनों की प्रामाणिकता की शर्तों में अंतर है। लेखक की प्रामाणिकता में एक रचना के नाम पर दो लेखक के नाम लिये जाते हों तो खोज आवश्यक है। वैसे एक लेखक के नाम पर अतिरिक्त रचनाओं के नाम गिनाना, एक ही रचना को भिन्न भिन्न दीपकों के कारण अलग अलग मानना या एक ग्रंथ दो लेखकों के नाम पर प्रचलित होना आदि भ्रूसा के होने की समावना रहती है।

1 भिखारीदास प्रथम खण्ड प विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ १६ १८

2 मधिलीरण गुप्त व्यक्ति और काव्य डा० कमलाकान्त पाठक पृ ३३

घोरी और अपहरण की समस्या का समाधान इस खोज के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार खोज के अध्ययन में यह खोज बहुत सहायक है।

(1) रचना में सदिग्ध ग्रंथ—अपहरण की समस्या

तुलसीदास की 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली'—इन दोनों रचनाओं में कई पद अनुसंधाता को सदिग्ध जान पड़े। अनुसंधान करने पर प्रमाण के अभाव में अनुमान के आधार पर रचना की प्रामाणिकता का निरायण करने के लिए वे बताते हैं।<sup>1</sup>

(१) सूरदास चाहे तुलसीदास में मिलने आए हो या नहीं, परन्तु इसमें सदेह नहीं कि गोमाँझ जी की 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' को लिखने की प्रेरणा 'मूरसागर' ही को देख कर हुई होगी।<sup>2</sup>

(२) 'ये दोनों ग्रंथ मूरसागर की शला पर लिखे गये हैं और दोनों में कई पद अक्षरशः सूरदास के हैं।'<sup>3</sup>

अनुसंधाता ने अपनी इन स्थापना को उदाहरण देकर प्रमाणित किया है। फिर अनुमान का सहारा लेकर वे लिखते हैं—

"संभवतः तुलसीदास जी की रचनाओं में मिलने वाले सूरदास के इन पदों की तुलसीदास जी ने गाने के लिए पसंद किया होगा और तुलसीदास जी को प्रिय होने के कारण आगे चल कर उनके शिष्यों ने उचित परिवर्तन के साथ उन्हें उनकी रचनाओं में मिला दिया होगा।"<sup>4</sup>

इस प्रसंग में अपहरण की कल्पना की गई है।

(2) एक ग्रंथ के दो नाम

भिक्षारीदास के ग्रंथों की प्रामाणिकता की खोज की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुसंधाता ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन अनुसंधाताओं द्वारा लेखक की प्रमाणित रचनाओं का विवरण एकत्रित करना प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों की सूची देना, उनकी वस्तु का संक्षेप में परिचय देना और विवेचन के अंत में प्रामाणिक ग्रंथ का निरायण करना तथा सदिग्ध ग्रंथों की सूची अलग देना आवश्यक माना है।<sup>5</sup> आगे प्रामाणिक ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया है<sup>6</sup> और एक ग्रंथ के दो नाम होने से उन्हें सत्या में दो मान देने की जो भूल हुई है, उसका निवारण किया है—

1 गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुंदरदास, पीताम्बरदास बड़धवाल, पृ० ६७

2 वही पृ० ६६

3 पाचाय भिक्षारीदास, डॉ० नारायणदास खन्ना, पृ० ७२

4 वही पृ० १००

5 वही, पृ० १०२



‘ऐसा भी अनुमान है कि अनेक इतिहासकारों ने दास के प्रसिद्ध ग्रन्थ— काव्य निरुप्य’ ‘शृंगार निरुप्य’, और ‘छन्दवण विगम’ को छोड़ कर उनके अन्य ग्रन्थों को देखा भी नहीं था अथवा ये लोग ‘नामप्रकाश’, ‘अमरकोश’ अथवा ‘अमर प्रकाश’ को दास ग्रन्थ न बताते।<sup>1</sup>’

इसी प्रकार कृष्ण भक्त कवि नन्ददास के नाम पर प्रचलित ‘रासमञ्जरी (विरह मञ्जरी)’ और ‘रसमञ्जरी’ तथा ‘पचाध्यायी’ और ‘मानमञ्जरी’ में मात्र नाम भेद है, रचना अमल में एक ही है।<sup>2</sup> ऐसी स्थिति कस उत्पन्न नहीं जाती है उसका व्यावहारिक उदाहरण हमें जनेन्द्र व एक सकेत में मिलता है—

“तकाज पर प्रेमचन्द को कहानी लिख भेजी ‘साप’, लेकिन एक दो हफ्त बाद तार से फिर ताकीद आई। अमल में कहानी उन्हें मिली नहीं थी। फिर बाद में उसी मौजूद पर कुछ लिखाकर दूसरी जगह भेज दिया। वहाँ अभी वह चीज खरी न थी कि अपने कागजों में प्रेमचन्द को ‘साप’ कहानी मिल गई और फौरन उन्होंने इस में छाप दी। इस तरह आज भी इस कहानी के दो रूप मौजूद हैं। वे दोनों चीजें एक ही लेकिन रंग दो हैं।<sup>3</sup>”

(३) एक ग्रन्थ का दो लेखकों के नाम पर प्रचलन

भनुसधाता ने भिलारीदास व नाम पर प्रचलित बागवहार की प्रामाणिकता पर विचार करके लिखा है—

‘इस ग्रन्थ का नाम श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में दिया है। अथवा इसका किसी ने उल्लेख नहीं किया। किसी ग्रन्थ ‘दास कवि का यह ग्रन्थ भिलारी दास के नाम पर भी जाना गया होगा। ‘विर्वागिह सरोज’ में दीनदयाल गिरि व नाम पर एक ‘बागवहार’ दिया गया है। वही दीनदास का धानमेल हो जाने से एक ग्रन्थ दो स्थानों पर तो नहीं चढ़ गया।

ऐसी भूल प्रसिद्ध रचना को लेकर नहीं हो सकती। अप्राप्य या अप्रसिद्ध रचना जिनकी मात्र गणना होती है उसके लेखक के बारे में इस प्रकार का भ्रम या भूल हो जाना स्वाभाविक है। एक शोधक ने अनेक रचनाओं के निर्माण की प्रथा साहित्य-जगत में प्रचलित है। उसी स्थिति में एक नाम की उपलब्ध सब रचनाओं को एकत्र कर उनका परीक्षण करना चाहिए और समझ लेना प्रसिद्ध भीतर लेना चाहिए जिससे इन प्रकार की भूल की परम्परा का अन्त हो जाय।

1 नन्ददास काव्यवरी, अमरकोश नाम १० प्र० म० काशी पृ० २३

2 भिलारीदास, प्रथम शतक विद्यानाथप्रसाद मिश्र पृ० ७

3 जनेन्द्र व्यक्ति कथारार और चिल्लक म० बकिविहारी भटनागर प ११० ११२

इस स्थिति में लेखक की प्रत्येक रचना की प्रामाणिकता की जाँच के लिए उसके विविध पहलुओं का परिचय प्राप्त कर एक विशेष गैली को अपना पढता है। अनुसंधान ने भिवारीदास की नामप्रकाश और शतरजशतिका के बारे में मप्रमाण चर्चा की है<sup>1</sup> —

‘नामप्रकाश सम्भृत ‘अमरकोश का भाषानुवाद है। इसकी पुष्पिका यो है—  
इति श्री भिवारीदाम कृते सोमवगावतस श्री १०८ महाराज छनघारी  
सिंहात्मज श्री बाबू हिंदुपति ममने अमरतिलके नामप्रकाशे तृतीय कांडे अनेकाय वग  
संपूष्णम् ।

इससे स्पष्ट है कि इसका नाम ‘नामप्रकाश ही है ।

अमरतिलक

(१) विशेषण = अमरकोश का तिलक है ।

(२) भाषांतर । उदा० बिहारी सतसैया के भाषांतर को भी ‘तिलक कहा गया है ।

रचना-काल— ‘दास’ लिखित दोहा उद्धृत किया है—

‘सत्रह सँ पचानवे अगहन को सित पक्ष ।

तरेसि मंगल को भयो नामप्रकाश प्रत्यक्ष ॥

स० १७६५ में नामप्रकाश पूरा हुआ ।

(४) लेखक की अथ रचनाएँ लम्बी हो तो एक छोटी रचना के सदिग्ध होने की आशंका

‘शतरजशतिका (दासकृत) — अनुसंधान ने इस प्रति की खोज का उल्लेख कर उसकी पुष्पिका दी है, उमम १३० श्लोक हैं और पाँच पृष्ठों में उसका विस्तार है । यह बताकर ‘शतिका का अथ बूढ़ने का प्रयत्न किया गया है। अनुमान से ‘सौ छ’ उसका अथ लगाने पर दगा तो ५६ छंद निकले । शतिका के छन्द होने से चाहिए तो चालीस कम निकले । फिर श्री उदयशंकर गान्धी द्वारा प्राप्त खंडित प्रति का विवरण देते हुए लिखा कि उममें १ स ६वें अध्याय के छंद ६ तक प्रति है।<sup>2</sup>

अनुमान की दिशा में वे आगे बढ़ते हैं— पाँच, छ, सात अध्यायों की पुष्पिका खंडित है । छंद नहीं है । तब छंद १३५ हुए । इसलिए स्पष्ट है कि

1 वही, पृ० ८१०

2 वही पृ० ११

'गणिका का सार 'गो दू' बनाने नहीं है। बार तीन गो दू' के नाम का बार्' दाय नहीं है। अनुसंधान में यह दाव भी पटा होगा। मेरी धारणा है कि 'गतरज' पर दाव का दाव दाव भी 'गो' के दाव' में दाव' होगा। 'गणिका' माने गो दाव' में गो गुणक ।'

इस शिष्य में प्रमाणों के राजाओं की प्रशस्ति में लिखी गई प्रचारमोम बंगाली में दू' उद्धृत करने बताया कि उनमें दाव के नाम पर दाव दाव बताया लगे है—

प्रथम 'वाच्यनिगम' को जानो । पुनः 'सिगारनिगम' तर्हें जानो ॥  
 दू'दानव दण विदुषुपुरता । रसमारीग दाव ज्ञान जाना ॥  
 अमरकोश दण सतरजगणिका । रस्यो गता किन मो' मुमदिया ॥  
 नूपति अत्रिगणिग दू लुजवाई । गणिन किचो अमिन मुग पाई ॥

इसके साथ काशी भा० प्र० ग० द्वारा सहायित गोज का इस प्रकार विवरण दिया है—

गोज में सिगारीग के नाम पर ११ दावों की सूची दी है और अमरकोश (नामप्रकाश) और गतरजिका को भी बताया है जो एक । इसमें दावे 'भावा गिरोमणी निब'पदव को जो अनुसंधान अमरकोश और गतरजिका के विनापण मान है, एक साक्षिपादेपत्र १ दो स्वतंत्र दाव समझ लिया । निब'पण' का व्यवहार किमी भी कृति के लिए परम्परा में रुढ़ है । तुलसीदास का मानस भी निब'पण ही है । भावानिब'पमतिमनुसंधानोति । इसलिये ये कोई नये दाव नहीं हैं ।

अनुसंधान ने इस गोजप्रशिया में जो क्रम अपनाया है वह इस प्रकार है—

- (१) अमरकोश और गतरजिका को एक बताया ।
- (२) 'गतरजिका' को खंडित प्रति बताया ।
- (३) 'अमरकोश' और नामप्रकाश को एक बताया ।

इस अनुसंधान में एक प्रति की प्रामाणिकता की जांच के लिए तीन प्रकार में चलन चलन श्रम करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि ये तीनों विवरण एक ही प्रति के बारे में दिए गए हैं ।

(५) लेखक का निराय, भाषा के आधार पर

'नामिकेतपुराण' नामक ग्रन्थ की खोज की रिपोर्ट में नन्ददास' कृत न मानत हुए भी उन्ही के नाम से वह निर्या गया है इमका उल्लेख करके अनुसंधाता विवरण देकर लेखक विषयक भ्रम का निवारण करने के लिये लिखते हैं—

'प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नन्ददास' क परिशिष्ट १ (ड०) मे इम ग्रन्थ की तीन प्रतिया स उद्धरण लिए गये हैं जिनमे लो का लिपिकान स० १७६५ तथा स० १८५५ है। ना० प्र० स० कागी को इधर एक हस्तलिखित प्रति इस ग्रन्थ की प्राप्त हुई है जो स० १८८८ बि० की लिखी हुई है। आरम्भ तथा अंत म नन्ददास जी का कही रचयिता के नाम मे उल्लेख नही है। ग्रन्थ के भीतर पाठ म उनका कई बार उल्लेख हुआ है जो इम प्रकार है—

आरम्भ म—(१) नन्ददास जी आपणा मित्राने कहतु है।

(२) मु अवे स्वामी नन्दान जी आपणा मित्राने भाषा करि कहतु है। मिसु पूछत है गुमाइ जु मेरे अभिलाषा नामकेतु पुराण मुखिवे की यच्छया बहोतु है।

(३) अथ नन्ददास जी कहतु हैं ॥

अंत में— (४) स्वामी नन्ददास आपणा मित्राने भाषा करि सुणाइ छे मु या कथा महा अमृतु है।

उपयुक्त उदाहरणो स पात होता है कि किसी गोस्वामी नन्ददास जी ने 'नामिकेतपुराण' भाषा मे अपने निष्प वा मित्र को सुनाया था जिसे किसी तीमरे व्यक्ति ने पुस्तक का रूप दिया है। इमकी भाषा अत्यन्त सिधिल है और प्रसिद्ध नन्ददास जी जम भाषा पर अधिकार रखने वाल क योग्य कभी नही है। यह कृति इन की नही हो सकती।<sup>1</sup>

(६) लोकप्रिय कवि के नाम पर अज्ञात कवि की रचनाएँ

सत कवियो की अनेक रचनाएँ लोक कठ म अमर स्थान पा चुकी हैं। इस लोकप्रियता का लाभ उठाकर बाद के मामाय और अज्ञात कवि अपनी रचना उनके नाम पर प्रचलित कर देते हैं। ऐसी स्थिति मे लेखन अपने नाम और यश की चिन्ता छोड कर अपनी रचना का प्रचार देखना चाहता है जो लोकप्रिय कवि के नाम पर आसानी से हो जाता है।

मीराबाई को कायकला सहजमिद थी। उन्हें सगीत का अभ्यास था। उनका समुराल भी माहित्य तथा सगीत का प्रेमी था। वैद्यय मे यही उनका सहारा

1 मीराबाई की पदावली, म० प परगुराम चतुर्वेदी पृ० ३०

गा । उन्हीं की रचनाएँ लिखी । उनके नाम पर मध्य कवि की पूरी की पूरी छ रचनाएँ प्रचलित की गई हैं तथा अनेक पुस्तकें पर भी सन्निध्य हैं । इन विषय में अनुसंधान ने श्री पुरोहित हरिनारायण जी के अनुमान का बलून किया है— मीरा जी के पर भरे वाम ५०० के करीब दाढ़े हो गए हैं । ये हस्तलिखित मुद्रित और मौखिक रूप में प्राप्त हुए हैं जिनका इतिहास बहुत है । पर बहुत से प्रामाणिक ही प्रतीत होते हैं । गद्य सन्निध्य और मित्रावट के वा अशुद्ध लिखाई दत्त हैं ।

वास्तव में मीराबाई के अनेक पदों की भी कबीर साहब आदि के पदों की भाँति ही बहुत कुछ दुर्लभ हो गई है । जिन किरी ने गायो है उन्हीं उन्हीं अपने रंग में रंगने की चेष्टा की है और अपने अपने विचारानुसार मीरा के ढर्रे पर नितने ही ऐसे स्वरचित पद प्रचलित कर दिये हैं जो ब्याप्य ध्यानपूर्वक दमे भाले किये मीरा रचिन ही जान पड़ते हैं । १

प्रायः मध्यकालीन सभी प्रतिद्ध कवियों की रचनाओं की यह स्थिति है । कुछ रचनाएँ लुप्त हो गई हैं मान नाम प्राप्त हैं तो कुछ रचनाओं के नाम का भी पता नहीं, और रचनाएँ उपलब्ध हैं तो लेखक सदिग्ध हैं । लेखक का नाम है तो रचना सदिग्ध है । आचार्य कवि केणवदास के नाम पर १७ रचनाएँ मिलती हैं परन्तु अनुसंधान ने खोज करके बताया कि उनमें ६ रचनाएँ प्रामाणिक हैं ७ अप्रामाणिक हैं तथा १ सन्निध्य है ।

### (घ) रचना कालका निर्धारण

साहित्य के इतिहास की दृष्टि से किसी भी रचना का निर्माण-काल महत्व रखता है । इसके साथ लेखक के जीवन का गाढा संबंध है और उस की पृष्ठभूमि में युगजीवन प्रतिबिम्बित होता है । रचना काल के निरणय के साथ लेखक का और लेखक के निरणय के साथ रचना काल का परस्पर सापेक्ष संबंध है । लेखक निश्चित है तो रचना काल लेखक के जीवन वृत्त के आधार पर अनुमान के सहारे निश्चित हो सकता है । परन्तु लेखक के बारे में यदि अतर्क्य या बहिर्लक्ष्य का अभाव रहा तो अनुमान पूरा सही नहीं हो सकता ।

हिंदी के अनेक प्राचीन कवियों की यह गैली थी कि वे अपनी रचना के अक्षय्य निर्माण काल का सकेत स्पष्ट रूप से देते थे और रचना के अक्षय्य में अपना नाम भी छंदोबद्ध कर देते थे । फिर भी ऐसी अनेक रचनाएँ मिलती हैं जिनमें इन दोनों प्रमाणों का अभाव रहता है । प्रति खंडित हो जाने से उसका अक्षय्य हिम्सा लुप्त हो जाने से भी लेखक तथा रचना काल का सकेत अप्राप्त रहता है । ऐसी परिस्थिति में अनुसंधान अनुमान की प्रक्रिया के बल पर निरणय करने का

प्रयत्न करता है। लेखक के जीवन के प्रसंगों की जानकारी इसमें सहायक हो सकती है।

(१) लेखक द्वारा दिया गया रचना काल—

प्राचीन कवि अपनी रचना में कभी सीधी और स्पष्ट शब्दावली में रचना काल लिखते थे, तो कभी साकेतिक शब्दावली में। साकेतिक शब्दावली पाठानुसंधान का एक अंग है।

(१) साकेतिक शब्दावली—वे कवि सीधे अथवा में रचना काल का निर्देशन करके साकेतिक भाषा में उसे छंदबद्ध करके रचना के प्रारम्भ में ही अपने उद्देश्य का प्रचार करते हुए कभी अपना तथा रचना का नाम भी देते हुए लिखते थे। जैसे कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' का रचना काल इस प्रकार दिया है—

'सिधि निधि सिवमुख चंद्र सखि माघ शुद्ध तृतियासु।

हिततरंगिणी हौं रची कविहित परम प्रकासु ॥

अथ लगान की शली—सिधि ८, निधि ९ सिवमुख ५ चंद्र १

इस उदाहरण में चार तथ्य और उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

(१) काल—य कवि साकेतिक भाषा में भी सीधे क्रम से न लिख कर उल्टे क्रम से लिखते थे। यहाँ दिया हुआ समय इस प्रकार पढ़ा जायगा—स० १५६८ वि०, माघ सुदी ३।

(२) शीपक—हिततरंगिणी

(३) कवि—हौं—कृपाराम

(४) उद्देश्य—कविहित

पाठानुसंधान के अंतर्गत हाते हुए भी महत्वपूर्ण होने के कारण यह अन्त-साध्य के प्रमाण के उदाहरण के रूप में अनुसंधितसुद्धा की जानकारी के लिए दिया गया है।

(२) सीधी स्पष्ट शब्दावली 'रामचरितमानस' के निर्माण-काल में विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। पहली की शैली में अपनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वयं अपने प्रथम में रचना काल का निर्देश किया है—

सवत सोरह स इक्तीसा। कहहु कया हरिपद धरि सीसा।

नौमी भौम वार मनु भासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥

1 हिंदी साहित्य का बहुत इतिहास, भा ६, पृ १६६

अनुसंधाना न ह्यय ऐतिहासिक तिवि स इग की मगति तया कर इत कथन को अन्त साम्य रूप म स्वीकार किया है और उमक लिए तुलनीयता के जीवन प्रसंगा पर भी भाव यक विचार किया है। व निम्नत है—

सीतामढ़ी से चल कर भासाई जी भयोभ्यापुरी पहुँच। वहाँ उन्होंने सवत १६३१ मे, जबकि लग्न, ग्रह तथा राशि वा वही माग था जो रामचन्द्र क जन्म के समय पडा था 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की।<sup>1</sup>

(२) प्रत्यक्ष स्रोत का सहायता से काल निर्धारण मे अनुमान —

(क) एक कवि द्वारा एक ही विषय पर दो रचनाएँ

कभी कभी कवि एक ही विषय पर दो रचनाएँ करता है तब प्रथम प्रयोग रूप होती है। उसका सगोपन कर वह नाम बदल कर दूसरी बार लिखता है। उस रचना मे सतुष्ट होन पर उस म रचना का नाम निर्देश करता है, परन्तु प्रयोगात्मक रूप में निती रचना वा विशेष महत्व न मानने के कारण उम म रचना काल नहीं देता है। कवि देव क नाम पर इग प्रकार की 'दो रचनाएँ' है—'जातिविलास और रसविलास। अनुसंधाना ने नाम का विवरण इस प्रकार दिया है—

रसविलास—देव ने रचना-काल लिखा है—स० १७८३ वि० विद्यादशमी को। इसकी प्रमाणिता स्वतः सिद्ध है। ग्रथ के आरम्भ म तथा प्रत्येक विलास के अन्त म देवदत्त कवि का नामोल्लेख है। देव के अनेक प्रचलित छन्दों की पुनरावृत्ति रसरीति का क्रम आदि सभी उनके साक्षी है।<sup>2</sup>

'जातिविलास'—लेखक की एक रचना दूसरी रचना के समय का संकेत देती है— 'रसविलास जातिविलास' का संशोधन परिवर्द्धित संस्करण है। कारण नवीन छंद कम है थोड़े समय म पूरी की गई है। इसका रचना काल 'रसविलास' से कुछ पूर्व, अनुमानतः स० १७८० वि० के आसपास माना जा सकता है। इसका वष्य विषय है नारी सोदय।<sup>3</sup>

(ख) एक कवि की पूर्ववर्ती एक या अनेक रचनाओं से घांशिक रूप मे कृति का ग्रहण तथा नवीन नामकरण उसमे कुछ नवीन कृति का योग रचना काल क प्रमाण के अभाव मे एक लेखक की दो रचनाओं की तुलना की जाय और प्रत्यक्ष स्रोत क रूप मे एक मे से दूसरे मे उद्धृत भाग का पता चले तो अनुमान से रचना-काल का निर्णय किया जा सकता है। इसमे यह ध्यान

1 गोस्वामी तुलसीदास इयामसु दरदास पीतावरदन बडधवाल, पृ० ७३

2 देव और उनकी कविता डा० नगेन्द्र, पृ० ५३

3 वही, पृ० ५२

अवश्य रहता है कि किस रचना को प्रथम और किसको द्वितीय माना जाय ? अक्सर इसके लिए भी हमें उन रचनाओं से ही सकत मिलते हैं। उदाहरण के रूप में तुलसीदास की 'वराग्य सदीपनी' और 'दोहावली' पर एक माय विचार करन पर अनुसंधाता ने यह निष्कर्ष निकाला—

इसमें तो सदेह नहीं कि 'वराग्य-सदीपनी' 'दाहावली' के सङ्गृहीत होने से पहले बनी क्योंकि 'वराग्य सदीपनी' के कई दोहे 'दोहावली' में सङ्गृहीत हैं। यह बात की भाङ्गका नहीं की जा सकती है कि 'दोहावली' ही से 'वराग्य सदीपनी' में दोहे लिए गए हों, क्योंकि 'वराग्य सदीपनी' एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है और 'दाहावली' स्पष्ट ही सङ्ग्रह ग्रन्थ। 'दाहावली' का सङ्ग्रह स० १६४० वि० में हुआ था। इससे यह ग्रन्थ स० १६४० से पहले ही बन चुका होगा।<sup>१</sup>

देवकृत प्रेमचन्द्रिका का रचना-काल भी इस सिद्धांतानुसार निर्णीत किया गया है। लेखक की एक रचना का निर्माण-काल निश्चित हा तो वह दूसरी रचना के काल निर्धारण में आनुमानिक रूप से सहायक हाती है।

### (३) रचना शैल्य के आधार पर काल निर्धारण

सम्यक प्रमाण मिल जाने पर कभी-कभी स्थापित मत के विरोध में, युक्तियों के आधार पर मत स्थापन किया जा सकता है। उदा० भिखारीदास कृत विष्णुपुराण। यह संस्कृत विष्णुपुराण का भाषानुवाद है। इसमें निर्माण काल का उल्लेख नहीं है। मिश्रबधुप्रो का अनुमान है कि शिथिल रचना के कारण यह दास की पहली कृति जान पडती है। अमर कोश का अनुवाद १७६५ में किया गया है। इसके पूर्व १७६१ में वे 'रसमाराश लिल चुक थे। इसलिए यह कल्पना सत्य नहीं जान पडती। नाम प्रकाश' के भाषानुवाद का काय भी छेडा गया हो यह सम्भावना की जा सकती है।<sup>२</sup>

### (४) एक ही रचना के काल निर्धारण में दो शलिया का प्रयोग

(१) लिपिकार द्वारा दिया गया समय सङ्केत और पूर्ववर्ती रचना के निर्माण-काल व आधार पर रचना काल का निष्णय। यथा

डा० नगद्र देवकृत 'सुजान विनोद' (रमान लहरी) के समय का निश्चय करते हुए लिखते हैं—'यह 'प्रेमचन्द्रिका' पूर्व की रचना है। उसका रचना-काल स० १७६० के आसपास हो तो 'सुजानविनोद' स० १७६५ के आसपास मान लेना अनुचित न हागा।

१ गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुन्दरदास पाताम्बरदत्त बडध्याल, पृ० ७६

२ भिखारीदास, प्रथम खड विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७



‘कुसमरा निवासी प० मातादीन दुबे की प्रति काफी पुरानी है। सभवतः देव के ही हाथ की हो। यह प्रति अपूर्ण है उसमें १५ छंद हैं और आश्रयदाता का वणन है। शिक्षित जी की प्रति पूर्ण है और उसमें भी आश्रयदाता का वणन है। प० गोकुलचंद्र लिपिकार द्वारा दिया गया समय स० १८०७ है। उसमें लिखा है—  
“शुभमस्तु श्रीरस्तु सम्बत् १८०७ मिति आश्वि मास शुक्ले पक्षे मुदि चतुर्थी वैनीघर त्रिपाठी स्वहस्ताक्षर तथा स्वपठनाथ शुभम।”<sup>१</sup>

‘यह प्रति मौनिक मुजान विनोद से लिपिवद्ध है। देव की गली इसमें स्पष्ट है।’<sup>२</sup>

(२) रचना की प्रसिद्धि का समय निर्धारण में महत्व देवकृत मुजान विनोद—देव रचित प्रेमचंद्रिका के बाद की कृति है ऐसा विधान करके अनुसंधाता ने पातीराम का परिचय दिया है जिनके पुत्र मुजानमाणिक्य के लिए यह रचना देव की।<sup>३</sup> फिर मुजानविनोद की प० मातादीन बाती प्रति में से सप्रहीत कुछ उदाहरण देकर लिखा—<sup>४</sup>

उपयुक्त छंद मिश्रबधु सहादित मुजानविनोद में नहीं मिलते। उस प्रति में आरम्भ में वे ३० छंद नहीं हैं जो कुसमरा में प० मातादीन जी और भरतपुर में श्री गोकुलचंद्र दीक्षित के यहाँ सुरक्षित शिलियों में स्पष्ट मिलते हैं। कुसमरा की प्रति स० १८०७ वि० में वैनीघर त्रिपाठी नाम के किसी व्यक्ति द्वारा अपने उपयोग के लिये लिखी हुई है। इससे यह तो निश्चित हो ही जाता है कि मुजानविनोद की रचना स० १८०७ से पूर्व अवश्य हो चुकी थी। किसी दूसरे व्यक्ति ने अपने पढ़ने के लिए यह प्रति तैयार की थी इसका अभिप्राय यह हुआ कि उस समय तक यह ग्रंथ पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इधर इसकी प्रौढ़ शैली और ग्रंथ अंत साध्यों के अनुसार यह निश्चित ही रसविलास (स० १७८२) तथा प्रेमचंद्रिका के भी बाद की रचना सिद्ध होती है। एसी दशा में हमारा अनुमान यही है कि मुजान विनोद की रचना स० १७६०-१७६५ के आसपास हुई है।<sup>५</sup>

दो विभिन्न तरीकों से तथ्यसंकलन और तथ्याख्यान का परिणाम एक ग्रंथ के कारण अनुसंधाता द्वारा दो गद्द सुक्तियाँ बनाएँ गिद्ध हुईं। मत के समर्थन में ऐसी समीचीन प्रक्रिया को अपनाना बाँधनीय है।

१ देव और उनकी कविता पृ० ५७

२ वही पृ० २४-२५

३ वही पृ० २५

४ वही, पृ० २६

(५) विषय और शैली की गम्भीरता और प्रौढ़ता के आधार पर रचना काल का निर्धारण

देवकृत 'रसविलास' के विषय में अनुसंधान अपनी खोज के निष्कृत स्वरूप बताते हैं— 'भावविलास' से 'सुजानविनोद तक सभी ग्रंथों से इसका विषय और प्रतिपादन शैली गम्भीर है। नायिका भेद को हल्का समभवत छोड़ दिया गया है। किसी को यह ग्रंथ समर्पित नहीं है। अथर्व नहीं इसका उल्लेख नहीं है। केवल विषय शैली की गम्भीरता तथा प्रौढ़ता अन्त साक्ष्य के रूप में उपलब्ध है। एक सुखसागर तरंग को छोड़, अथर्व सब ग्रंथों के पश्चात् इसकी रचना तथा नीति और विराग की कविता हुई होगी।

'रसविलास' का रचना-काल स० १७८३ है। अतएव इसका रचना काल स० १८०० के आसपास हो सकता है। 'यह' साहित्य सम्मेलन' द्वारा आज मुद्रित भी है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हैं।<sup>३</sup>

अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के सम्मिलित बल पर निष्णय —

देवकृत प्रेमचन्द्रिका का रचना काल कवि द्वारा नहीं दिया गया है। अनुसंधान ने अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर इसका निष्णय किया है—

(१) अन्त साक्ष्य महाराज मदनसिंह के पुत्र उद्योतसिंह का समय तथा शैलीगत प्रौढ़ता।

(२) बहिर्साक्ष्य—प्रेमचन्द्रिका के छंदों का अथर्व ग्रंथों में समावेश।

(३) सहायक प्रमाण—उद्योतसिंह डोंडिया खेरा के राजा थे। उनका समय १८वीं शताब्दी का चतुर्थ चरण है।

(४) तुलनात्मक आलोचना— विषय शैली में 'रस विलास' की अपेक्षा प्रौढ़ कवि की मनोवृत्ति क्रमशः शरीर से मन में और मन से आत्मा में एकाग्र हुई है। अलंकरण में आंतरिक रसात्मकता है व्यंजना शक्ति का विकास हुआ है। छंदों की आवृत्ति का भवानी विलास 'प्रेमचचीमी और 'सुजानविना' से साम्य है। अथर्व ग्रंथों में भी इही छंदों के साथ समानता देखी गई है।

(५) निष्णय— प्रेम और विषय का अन्तर यथावत 'सुजान विना' में भी है। पांच दोहे अतिरिक्त मिलते हैं। इस प्रसंग को पढ़ कर यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि प्रेमचन्द्रिका सही 'सुजान विनोद' में से दोहे उद्धृत किये गए हैं।

1 वही० पृ० ६०

2 वही० पृ० ६० ६१

3 वही० पृ० ५५

अगर कम उल्टा हाता तो 'मुजान विनो' के सभी दोहे 'प्रेमचंद्रिका' में उल्टत होते क्योंकि उनके दोष पाच दोहे भी काफी सुंदर और महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव हमारी धारणा है कि 'प्रेमचंद्रिका' की रचना रसविलास से पहले हुई है। उद्योतसिंह के समय का दखत हुए हम उस स० १७६० के आसपास मान सकते हैं।

इसकी प्रामाणिकता में तो कोई संदेह नहीं है। उसके लिए भी व सभी साक्ष्य उपस्थित किये जा सकते हैं जो भवानी विलास तथा रसविलास के लिए दिए गए हैं।'

(६) एक रचना की अनेक प्रतिलिपियों में से प्रामाणिक प्रतिलिपि की खोज— एक रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ मिलान पर प्रामाणिकता के निकटतम की प्रति का सांगोपांग विवरण अनुसंधान की अपने प्रपञ्च में देना चाहिए। इस विवरण के अन्तर्गत कागज़ की बनावट साइज स्थिति स्याही, लिपि और हस्ताक्षर की जाँच की जाती है। महाकवि मतिराम की रचना रसराज की प्राप्त ७ प्रतिलिपियों का विवरण अनुसंधान ने इस प्रकार किया है—

प्रतिलिपि-१—सबसे प्राचीन है।

२—पाँच सही एक बड़े चार इंच चौड़े और छ सही एक बड़े १० इंच लम्बे देगी माटे कागज़ पर। देखने में यह प्रतिलिपि नई प्रतीत होती है जो देवनागरी लिपि में है (लिपिकाल—स० १८४८ वि०)।

प्रतिलिपि-३—देवनागरी में लिखी यह पूरा एक अशुद्ध प्रतिलिपि है। स्वदेगी कागज़ पर लिखी हुई ११५ पृष्ठों की प्रतिलिपि ३ इंच लम्बी और साढ़ तीन इंच चौड़ी है।

प्रतिलिपि ४—ना० प्र० स० काशी स ४ प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई—

(i) १२ इंच लम्बी और १० इंच चौड़ी, स्वदेशी खुरदुरे कागज़ पर पुरानी लिपि में लिखी हुई अशुद्ध है।

(ii) लिपिकाल—स० १८६३ वि०। पाकार रजिस्टर का। देखने में नई जान पड़ती है क्योंकि रागनाई की चमक अभी बाकी है।

(iii) रजिस्टर मान्ड कागज़ तथा, नासी-साल रोगनाई का प्रयोग।

(iv) धर्यात जीण। अनुमान संगाना कतिन।

(v) लिखित समय का अभाव में रचना का समय—पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं का साथ तुलना द्वारा रचना का निष्कर्ष ही जान पर अनुमान से जान

निर्धारण हो सकता है। ऊपर उद्धृत प्रसंग में प्राप्त विवरण के आधार पर अनुसंधाना न बताया कि "रसराज" में कवि व्यक्तित्व की प्रौढ़ता का अभाव है। फिर भी यह प्रथम रचना नहीं है। फूलमजरी के प्रथम होने का प्रमाण उपलब्ध है। दूसरे यह रचना विभी राज्याश्रय में नहीं लिखी गई।

"रसराज, के बाद ललाम" की रचना हुई। 'रसराज' के छन्द 'ललित ललाम' में है। 'ललित ललाम' के 'रसराज' में नहीं हैं।

उपसंहार —

इस विस्तृत चर्चा के सार स्वरूप जो सिद्धांत निकलते हैं उन्हें शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है —

लेखक रचना और रचना काल की प्रामाणिकता में अन्तःसाक्ष्य, बहिर्साक्ष्य जनश्रुति और सहायक प्रमाणा के अतिरिक्त अनुमान का भी महत्त्व है।

### (अ) लेखक

(१) हस्ताक्षर की परीक्षा अमुक रचना के लेखक के स्थान पर किए गए हस्ताक्षर की जांच का प्रश्न अक्सर हस्तप्रतियां क बार में उठता है। इस जांच में आधुनिक युग की वैज्ञानिक सुविधा के अनुसार माइक्रोस्कोप, केमरा, मापकयंत्र तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों की सहायता ली जाती है तथा इन साधनों के प्रयोग की एक निश्चित विधि है।

(२) भाषाशली अन्तःसाक्ष्य के अंतर्गत आने वाले इस प्रमाण से अनुसंधाना की विचार की एक निश्चित दिशा मिलती है। विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक भाषा शैली के भाव्यम से प्रकट हो ही जाता है। व्यक्तित्व के साथ उनकी रचना का यह अंग इतना घुला मिला रहता है कि बड़ी आसानी से लेखक की पहचान हो जाती है। इसमें अनुसंधाना की सूक्ष्म परीक्षण शक्ति प्रयुक्त होती है। इतना ही नहीं, वह अपनी धारणा का दूसरों के लिए विश्वसनीय तब बना सकता है जब अर्थ प्रमाण भी उसके पास हो। लेखक की भाषा की विशेषताएँ अनुमान में उपयोगी हैं। सदिग्ध और प्रामाणिक रचना की भाषा शैली में कि तनी समता या विषमता है, यह देखकर अनुमान हो सकेगा।

भाषा के अंतर्गत हिज्ज की विशेषता को भी अनुमान में महत्त्व दिया जाता है। यह विशेषता लिपिकार से सम्बन्धित न होकर व्यक्तिगत रूप से लेखक के शुभविशिष्ट भाषा प्रयोग तथा साहित्यिक परंपरा के साथ-साथ वास्तविक प्रयोगों से संबंधित होनी चाहिए तथा उसे अर्थ प्रमाण से पुष्टि मिलनी चाहिए। मात्र इसी विशेषता का अन्तिम प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अगर कम उल्टा होता तो 'सुजान विनोद' के सभी दोहे 'प्रेमचंद्रिका' में उद्धृत होते क्योंकि उनके शेष पांच दोहे भी काफी सुंदर और महत्वपूर्ण हैं। अतएव हमारा धारणा है कि 'प्रेमचंद्रिका' की रचना रसविलास से पहले हुई है। उद्योतसिंह के समय का दखत हुए हम उस स० १७६० के आसपास मान सकते हैं।

इसकी प्रामाणिकता में तो कोई सन्देह नहीं है। उसके लिए भी व सभी साक्ष्य उपस्थित किये जा सकते हैं जो भवानी विलास तथा रसविलास के लिए दिए गये हैं।

(६) एक रचना की अनेक प्रतिलिपियों में से प्रामाणिक प्रतिलिपि की खोज— एक रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ मिलने पर प्रामाणिकता के निकटतम की प्रति का सागोबाग विवरण अनुसंधाता को अपने प्रबन्ध में देना चाहिए। इस विवरण के अन्तगत कागज की बनावट साज, स्थिति स्याही लिपि और हस्ताक्षर की जाँच की जाती है। महाकवि मतिराम की रचना 'रसराज' की प्राप्त ७ प्रतिलिपियों का विवरण अनुसंधाता ने इस प्रकार दिया है—

प्रतिलिपि-१—सबसे प्राचीन है।

२—१२ इंच लम्बी एक बट चार इंच चौड़ा और छ मही एक बट दो इंच लम्बे देगी माट कागज पर। देखने में यह प्रतिलिपि नई प्रतीत होती है जो देवनागरी लिपि में है (लिपिकाल—स० १८४८ वि०)।

प्रतिलिपि-३—देवनागरी में लिखी यह पूरा एव अशुद्ध प्रतिलिपि है। स्वदेगी कागज पर लिखी हुई ११५ पृष्ठों की प्रतिलिपि ३ इंच लम्बी और साढ़ तीन इंच चौड़ी है।

प्रतिलिपि ४—ना० प्र० स० बागी से ४ प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई—

(i) १२ इंच लम्बी और १० इंच चौड़ी स्वदेशी लुरदुरे कागज पर, पुरानी लिपि में लिखी हुई अशुद्ध है।

(ii) लिपिकाल—स० १८६३ वि०। अकार रजिस्टर का। देखने में नई जान पड़ती है क्योंकि रोगनाई का चमक अभी बाका है।

(iii) रजिस्टर साज कागज तथा नीली-लाल रोगनाई का प्रयोग।

(iv) अत्यंत नीच। अनुमान लगाना कठिन।

(७) निश्चिन्त समय में अभाव में रचना-ग्रन्थ —दूबवर्ती और परवर्ती रचनायाँ का गाय तुलना द्वारा रचना-ग्रन्थ का निष्पत्ति हो जान पर अनुमान से जान

निर्धारण हा सकता है। ऊपर उद्धृत प्रसंग में प्राप्त विवरण के आधार पर अनुसंधाता ने बताया कि 'रसराज' में कवि व्यक्तित्व की प्रौढ़ता का अभाव है। फिर भी यह प्रथम रचना नहीं है। फूलमजरी के प्रथम होने का प्रमाण उपलब्ध है। दूसरे, यह रचना किसी राज्याश्रय में नहीं निम्नी गई।

'रसराज, के बाद ललाम' की रचना हुई। 'रसराज' के छन्द 'ललित ललाम' में है। 'ललित ललाम' के 'रसराज' में नहीं हैं।

उपसंहार —

इस विस्तृत चर्चा के सार स्वरूप जो सिद्धांत निकलते हैं उहे शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है —

लेखक, रचना और रचना काल की प्रामाणिकता में अन्त साक्ष्य, बहिर्साध्य जनश्रुति और सहायक प्रमाणों के प्रतिरिक्त अनुमान का भी महत्त्व है।

(अ) लेखक

(१) हस्ताक्षर की परीक्षा समुक्त रचना के लेखक के स्थान पर किए गये हस्ताक्षर की जांच का प्रश्न अक्षर हस्तप्रतियों के द्वार में उठता है। इस जांच में आधुनिक युग की वैज्ञानिक सुविधा के अनुसार माइक्रोस्कोप, केमरा, मापकयंत्र तथा अन्य वैज्ञानिक साधना की सहायता ली जाती है तथा इन साधनों के प्रयोग की एक निश्चित विधि है।

(२) भाषाशली अतः साक्ष्य के अतगत आने वाले इस प्रमाण से अनुसंधाता को विचार को एक निश्चित दिशा मिलती है। विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक भाषा शली के माध्यम से प्रकट हो ही जाता है। व्यक्तित्व के साथ उसकी रचना का यह अंग इतना घुला मिला रहता है कि बड़ी आसानी से लेखक की पहचान हो जाती है। इसमें अनुसंधाता की सूक्ष्म परीक्षण शक्ति प्रयुक्त होती है। इतना ही नहीं, वह अपनी धारणा को दूसरे के लिए विश्वसनीय तब बना सकता है जब अर्थ प्रमाण भी उसके पास है। लेखक की भाषा की विशेषताएं अनुमान में उपयोगी हैं। सदिग्ध और प्रामाणिक रचना की भाषा शली में कि तनी समता या विषमता है, यह देखकर अनुमान हो सकेगा।

भाषा के अतगत हिज्जे का विशेषता को भी अनुमान में महत्त्व दिया जाता है। यह विशेषता लिपिकार से सम्बन्धित न होकर व्यक्तिगत रूप से लेखक के भुगविक्षिप्त भाषा प्रयोग तथा साहित्यिक परंपरा के साथ-साथ साक्षणिक प्रयोगों से संबंधित होनी चाहिए तथा उसे अर्थ प्रमाणों से पुष्टि मिलनी चाहिए। मात्र इसी विशेषता को अंतिम प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए।

यदि यह विषयता हमारे लेखक में प्रधान रूप में है और सन्धि रचना में भी है, तथा उसे प्रयोग उसका समवालीना में विरल है या विरल नहीं है तब तो उस आधारभूत प्रमाण मानना चाहिए। परन्तु लेखक को निश्चय करने में भाषा का साम्यता या एकरूपता पर अधिक जोर नहीं देना चाहिए क्योंकि यह भी सम्भव है कि एक लेखक अपनी कल्पना या भावना को स्पष्ट करने वाली पंक्तियों को दूसरे से ग्रहण करने को सलचाता है।

(३) विषय वस्तु, भाव विचार, उद्देश्य, चरित्र चित्रण की विविध शैली क्या विन्यास, शीतल में लय और छन्द, पक्तियों की संख्या और विस्तार आदि शिल्प तत्व लेखक तथा रचना दोनों की प्रामाणिकता की कसौटी में अनुमान की शिगा में सहायक होते हैं। इस कसौटी में व्यक्तिगत विविधताओं की सम्भावना का नहीं भूलना चाहिए। फिर भी सदैव रचनाकाल से ही ध्यानपूर्वक उस रचना में यदि दिखे तो लेखक और रचनाकाल दोनों को सदिग्ध समझना चाहिए।

(४) अन्तर्मात्र के रूप में लेखक का कथन यदि रचना में है तो परीक्षण में सरलता होती है और यदि अत्यन्त शक्यता न हो तो उस प्रमाणभूत मानना चाहिए। परन्तु लेखक का कथन प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

(५) लेखक के व्यक्तित्व के बारे में प्रवर्तित सामान्य अभिप्राय का उचित महत्त्व देने हुए भी अनुसंधान की स्वतंत्र विचार शक्ती अतिम निष्पत्ति में अधिक उपयोगी होती है।

(६) रचना की लंबाई और विस्तार की दृष्टि से यह खोजने का प्रयत्न करना चाहिए कि उसे विस्तार वाली लेखक की अथवा कोई रचना है या नहीं। अतिम निष्पत्ति पर पहुँचने के पूर्व लेखक के समकालीनों पर भी यह कसौटी लागू होनी चाहिए और तब निष्पत्ति निकालना जाय कि अमुक रचना उसी की है या नहीं। इस खोज में मुख्यतः कल्पना, लय आराह अवरोह भाव विचार आदि विषयगत तत्वों की रोज अभिवाय है।

(७) शीतल की असाधारण शक्ती, आत्मपरक गर्वोक्ति या आत्मश्लाघा भी लेखक का निष्पत्ति करने में प्रमाण है।

(८) यह रचना किसकी? इस प्रश्न के उत्तर में अनुमान की समस्या हल हो जाती है परन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से तीव्र प्रश्नों का उत्तर पाना शेष रहता है—

- (i) क्या यह रचना उसी ने लिखी है, जिसका अनुमान किया गया है?
- (ii) जो रचनाकाल बताया जाता है क्या वह तभी लिखी गई थी?
- (iii) क्या उद्देश्य और परिस्थितियाँ वही या जो बताई जाती हैं।

(६) उत्तम प्रमाण है हस्तप्रति प्राप्त करना। फिर भी जिसके हस्ताक्षर हैं उमी की यह रचना है कि नहा, यह निश्चित नहीं हो सकता।

### (आ) रचना

रचना की प्रामाणिकता की जाँच में लेखक और रचना काल की खोज का प्रगाढ़ सम्बन्ध हान से इनके अतगत इम पर स्वतन्त्र विचार ही ही जाता है। कुछ बातें ऐसी हैं जो केवल रचना में सबध रखती हैं

(१) सबप्रथम यह जान लें कि छपे या लिखे हुए सभी को प्रामाणिक मानना भ्रम है।

(२) अमुक पाण्डुलिपि आपके अधिवार में है यह दावा नहीं चल सकता। उससे तो पाठक उत्तेजित ही होता है। लोग उस देखना भी चाहें और न दिखा सकने पर हमारी बात पर विश्वास नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ 'तुलसी चरित्र' और मूल गोसाईं चरित।

### (३) रचना काल

(१) समय बीतने पर सामान्य स्थायी का रंग ब्राउन हो जाता है और अमक लुप्त हो जाती है।

(२) कागज की लम्बाई चौड़ाई बनावट प्रकार और उसमें छपे अदृश्य अक्षरों में लिया हुआ समय सक्त जिस अंग्रेजी में Water Marks कहते हैं उन सबके आधार पर अनुमान द्वारा रचना-काल का निष्पत्त होना है। पर लेखा गया है कि प्रायः यह जाँच अतिम निष्पत्त के रूप में हमें प्राप्त प्रयुक्त नहीं हो सकती। कभी कागज ठीक हो सकता है रचना ठीक नहीं होती है और कभी उसके विपरीत भी होता है। रचना में जो समय दिया हो, उसके बहुत बाद का कागज हो तब भी निधि गसत मानी जाएगी।

(३) छपी हुई पुस्तक में प्रायः मुद्रक का काल भी छपा रहता है। यदि काल न छपा हो तो पुस्तक छपन में प्रयुक्त टाइप के विशिष्ट आकार प्रकार प्रामाणिकता की खोज में महायत्न होते हैं। तब उस विशेष प्रकार के टाइप के बनने का इतिहास देखना चाहिए। यदि रचना में उसके पूर्व का समय लिया गया हो तो उस अतः माध्य को प्रामाणिक नहीं मानना चाहिए।

(४) लेखक की मृत्यु तिथि के आधार पर रचना-काल का निश्चय हो सके तो प्रमाण पाने में सरलता रहती है। उदाहरणार्थ सन् १२०० ई० पूर्व लिखी गई रचना के बारे में इस प्रकार विचार किया जायेगा—लेखक सन् ११६६ ई० में मर गया हो तो प्रमाण माना जाय। परन्तु मृत्युतिथि यही हो और रचना-काल





## निहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या

३

निहित तथ्यों की खोज और उनका सफल मनमाने ढंग से नहीं हो सकता। कसौटी रूप में साहित्य शास्त्र के मानदण्ड और उसकी 'यावहारिक' पूर्तिस्वरूप लेखक की रचनाओं से गृहीत उद्धरण तथ्य की प्रामाणिकता में आवश्यक होते हैं। अनुसंधान जिम जिम तथ्य का विधान करता है उसकी स्पष्टता व्याख्या द्वारा करना आवश्यक है। व्याख्या बुद्धिसंगत सत्याश्रित, सरल और सरम होनी चाहिए।

व्याख्या का रूप निश्चित नहीं हो सकता। वह टीका टिप्पणी, आलोचना भावाय विवरण विचार विस्तार आदि किसी भी रूप में हो सकती है। भूमिका, प्रस्तावना सम्पादनीयरी सूत्र आदि के लेखक भी ग्रंथ की मुख्य विनोयना को लेकर तस्मन्वन्धी ग्रंथ की व्याख्या के लोभ का सवरण नहीं कर सकते। यदि व्याख्याता कसे भी, लेखक के दृष्टिकोण को स्पष्ट कर रहा है तो अनुसंधान काय में उसकी व्याख्या सहायक और मागवक है।

ललित साहित्य की व्याख्या में रस भग की प्राणका रहती है परंतु व्याख्या कार यदि ममज्ञ और कलाकार है तो रस की वृद्धि ही हागी न कि रसभग। स्वतंत्र रूप से देखा जाय तो व्याख्या स्वयं एक नूतन रचना भी प्रतीत होगी। परंतु अनुसंधान मात्र व्याख्याता नहीं है इस बात को वह ध्यान में रखे और न वह भावावेस में बहे। उसे अनिगयोक्ति किण्विना भावधानी से तथ्य और रस की एकता की रक्षा करनी चाहिए।

अनुसंधान के क्षेत्र में व्याख्या के लिए ऐसा बंधन नहीं हो सकता कि वह अपने आलोच्य विषय की सीमा के बाहर प्रिलुल न जाय। रचना की गूढता और गभीरता अपनी स्पष्टता के लिए सम्बन्धित विषयो का उल्लेख और चर्चा की अपेक्षा रखती है। प्रायः इनमें ग्रंथ प्रमाणा की आवश्यकता नहीं रहती कभी कभी गीष्

रूप में लेखक के जीवनयुक्त से सम्बन्धित प्रमाण उपयोगी होते हैं। रंग, इतिहास, ज्योतिष आदि जिस जग विषय में रचना सम्बन्धित हो उगना ज्ञान, और आवश्यक हो तो उसका उन्नत तथ्य के प्रमाण और व्याख्या में भाव बिना नहीं रहता।

विषय के मम को छुने के लिए और लेखक के व्यक्तित्व के यथायुक्त रंग के लिए व्याख्या में प्रसार, विराग और गहनता सीमा गमान रूप में आवश्यक हैं। उसकी जड़ और दाया प्रसार और दीपक जग तर म्पन होना है वे सब इन व्याख्या में महामक होते हैं। साथ साथ व्याख्याता का गावधान रहना भी आवश्यक है कि सत्य न छुने और विषयांतर न हो जाय पिष्टपण न हो प्रवाह हो भाषा प्रयोग में दम न हो चुम्नी हो दौली सहज और स्वाभाविक हो फिर भी अपन उच्च साहित्यिक स्तर की रक्षा करनी हो। कई प्रसंगा में लेखक स्वयं अपनी रचना में व्यक्त अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या देता है। यह व्याख्या विंग न हो कर साकेतिक होती है। धनुसधाता को ऐसी साबेनिक व्याख्या क रहस्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट करना चाहिए।

तथ्यानुसधान और तथ्याख्या का वज्ञानिक रूप में स्वीकार करते हुए भी उसे पूर्णतः किसी एक निश्चित साधे में ढाल कर स्थूल नियमों में जकड़ कर नहीं रखा सकते। लेखक और रचना का विषय दोनों अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं जैसे धनुसधाता का भी अपना व्यक्तित्व है अपनी भाषा गती और भाव विचार की विशेष प्रणाली रहती है इस कारण उसमें भी विविधता दृष्टिगाचर होती है। विषयानुरूप भी इसमें विभिन्नता की संभावना रहती है।

क्रमिक रूप से निहित तथ्याख्यान के मोटे तौर से तीन विभाग हैं—

- (१) रचनागत (विषयगत) तथ्य में निहित सत्य का साक्षात्कार।
- (२) कृत्रित्व के माध्यम से लेखक का व्यक्तित्व (विषयगत सत्य) का साक्षात्कार।
- (३) काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का साक्षात्कार और मौलिक उदभावना।

जब तक धनुसधाता प्रथम विषयगत सत्य को हृद्यगम नहीं कर सकता, तब तक वह लेखक के दृष्टिकोण को समझ नहीं सकता। इस प्रकार प्रथम तथ्याख्यान दूसरे तथ्याख्यान में साधन है। अक्सर लेखक के दृष्टिकोण की जानकारी सही-यारया में सहायक होती है। जब दाया की सम्यक जानकारी हो जाती है तब काव्य शास्त्र की पेशी में गुत्थिया को सुलभाने की योग्यता प्राप्त होती है। वह स्थापित सिद्धांतों के यथायुक्त स्वरूप को समझता है उसके गुण दोषों का विवेचन सामयिक परिस्थितियों की मगति में उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन और सुधार करने की अन्तर्दृष्टि

उसे प्राप्त होती है। प्रथम दो के अभाव में तीसरे में उमकी बुद्धि का प्रवेश ही असंभव है। यह क्रम विश्वविद्यालय के अभ्यास क्रम में भी देखने में आता है।

तीनों में कुशलता पा लेने पर यह पृथक्करण उमके लिए अनावश्यक हो जाता है। फिर त्रिपुगी नहीं रहती मात्र एकांत मृत्यु शेष रह जाता है। वह इस मृत्यु का साक्षात्कार करते ही उम तथ्य को अपनी व्याख्या का विषय बना सकती है। वह किसी भी एक तथ्य की व्याख्या करेगी और दो हमेशा उसके मागदगक और सहायक बने रहेंगे।

अनुसंधान के स्तर पर साहित्य में व्याख्या आलोचनात्मक होती है और उसके विषय अनेक होते हैं —

(क) रचनागत (विषयगत) निहित तथ्य की व्याख्या वरुण का प्रतीक रूपक द्विधर्मों का, पदावली पंक्ति या वाक्य, अनुच्छेद प्रकरण या सग प्रथम अभिव्यक्ति कौशल, रचनागत विनिष्टता छत्र अन्कार चरित्र की व्याख्या, प्रसंग प्रथवा घटना भावपक्ष उद्दीपन विभाव प्रवृत्ति-वर्णन आलवन विभाव आश्रय, रमपरिपाक ।

(ख) कृतित्व के माध्यम से लेखक के (विषयगत) व्यक्तित्व व्याख्या एक लेखक के संपूर्ण कृतित्व की एक व्यक्तिगत विनोपता स्वयं लेखक द्वारा अपने संपूर्ण कृतित्व में घटित हान वाली एक विनोपता की व्याख्या साहित्य के एक लेखक-वर्ग की एक सामान्य विनोपता लेखक के जीवन की एक घटना लेखक का संपूर्ण जीवन और कृतित्व, लेखक का वहिमुख व्यक्तित्व लेखक का अन्तर्मुख व्यक्तित्व लेखक द्वारा अपने संपूर्ण कृतित्व की व्याख्या लेखक का व्यक्तित्व विस्तरेपण विषय और विषयी की एकता ।

(ग) काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का साक्षात्कार और मौलिक उदभावना-साहित्य में विशेष युग की विनोप प्रवृत्ति में उपलब्ध लक्षण समसाभयिक साहित्य साहित्य के एक लेखक वर्ग की एक सामान्य विनोपता स्थापित सिद्धांत मौलिक उदभावना ।

(क) रचनागत (विषयगत) तथ्य में निहित सत्य का साक्षात्कार  
१ वरुण

तथ्य—तुलसीदास जी के रामचरितमानस का प्रथम वरुण और अन्तिम वरुण व है अर्थात् अचारम्भ व कार में किया तथा अर्थ की समाप्ति भी 'व' से की है।

उद्धरण—प्रारम्भ—' वरुणनामयमघाना रसाना छन्दसामपि ।

अन्त—वे ससारपतङ्क घोर किरणेंदहन्नि नो मानवा ॥

व्याख्या— व जलतत्व है। भाव यह कि रामचरितमानस प्रेमान्धु से पूर्ण है।”<sup>१</sup>

२ शब्द—

तप्य—तुलसीदास जी गुह्यचरणकमल की धूलि की वचना करते हैं।

उद्धरण—बदौं गुरु पद पदुम परागा।

व्याख्या—पराग (पुष्प की धूलि) में तीन गुण होते हैं सुवचि, सुवास और सरसता। रुचि स्वाद को कहते हैं (यथा सुचि सुरमरि हवि निरि सुधाह) और वास गंध को कहते हैं। मकरन्द के कारण पराग में स्वाद गंध और रस का प्रवेश होता है। चरण कमल का मकरन्द अनुराग है (यथा पद्मकमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना)। इसी के कारण गुह्यचरण में सुवचि, सुवास और सरसता है।<sup>२</sup>

यहाँ शब्द 'पराग' की व्याख्या का सम्बन्ध तुलसीदास जी द्वारा की गई संपूर्ण गुरु वचना से है।

३ प्रतीक—

तप्य—कभी कभी एक ही शब्द चरित्र का रूप होता है। वह प्रतीकात्मक होने के कारण जड़ होते हुए भी चतप्य पूर्ण और स्थूल होते हुए भी सूक्ष्म भाव को मूर्तिमान करने वाला होता है। सूरदास जी ने 'सूरमागर के दगम स्कंध में श्रीकृष्ण लीला धरण में वेणु' को इसी अर्थ में चित्रित किया है। परम्परा से यह प्रतीकात्मक चरित्र प्राप्त होने पर भी कवि का भाव व्यञ्जना के प्रभाव से उसमें अतिरिक्त सौन्दर्य प्रकट हुआ है। अनुसंधान ने अपनी याख्या द्वारा इस अर्थ सौन्दर्य को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है।

वेणु की व्याख्या—वेणु का अर्थ है व + ह + ञणु = जिसके समक्ष सारा ससार अणुमात्र है—=म लिए वह नाश ब्रह्म का प्रतीक है जिसके प्रागे समग्र ससार अणुमात्र है। इसी कारण वेणु में विश्व मोहिनी गङ्गा है जिसका विमाहन प्रभाव अदभुत है।

उदा० पृ० ८ पर ४६ और ४०वें पं०।

१ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस विजया टीका सहित, प्रथम भाग, बाल काण्ड टीकावार मानस राजहंस विजयानन्द त्रिपाठी पृ० १

२ वही, पृ० ७

तथ्य—स्पष्ट शब्दों में कवि न मुरली को पधटिन पटना बबुर और योगमाया कहा है—

उवा०—तब सीने तर कमल जोगमाया भी मुरली ।

अपत्ति घटना बबुर बहुरि अपरामव जुरली ॥

× × × ×

तथ्य—वस्तुतः उस रहस्य का उद्घाटन कवि न स्पष्ट शब्दों में किया है—

उवा०—जाको धुनि तै जिंगम अगम प्रगटति बड भागर ।

नाम अज्ञ की जननि मोहिनी सब मुख-भागर ॥

और इसलिए शुद्ध प्रेमरूपणी पंचभूत न घनीन गोपियां ही एम सुन सकती है ।<sup>१</sup>

इस प्रसंग में प्रत्येक व्याख्या धागे धान वाले प्रसंग के लिए तथ्य रूप है । अनुसंधाता न प्रथम व्याख्या दकर मोहाहरण तथ्य निरूपण द्वारा अपनी व्याख्या की पुष्टि की है । मात्र वगु' ग' से यह व्याख्या नहीं निकल सकती । श्रीकृष्ण लीला के रहस्य का जानन वाला भक्त हूय कवि ही इस अर्थ को उसम भर कर तन्मुरूप चरिताम बर लिखाता है । अनुसंधाता के लिए तद-विषयक ग्राह्यज्ञान अपत्ति है । प्रतीकों का ऐसा प्रयोग बलकाल न भारतीय साहित्य में हाता आया है । उवा०

'वेदों की भाषा सार्वत्रिक है । प्रतीकों को अधिगण बड़ी सावधानी से चुनते थे । ये प्रतीक एम होते थे जिनसे उनके विचार कुमुम सुगमित रहे और समय के अनुसार उनका बाह्य अर्थ भी अनुकूल हो ।

× × ×

प्रतीकों को समझन का सूत्र हाथ लगते ही वेग का रहस्य खुलने लगता है और तब ज्ञान जाता है कि सा' श्रु' आत्मा क' सग्राम और उसकी विजय की सूक्ति है ।

× × ×

बलि अश्व गवि का, आध्यात्मिक सामर्थ्य, तपस्या के बल का प्रतीक है । श्री अरविन्द कहते हैं जब अग्नि अश्वरूप वाले और गौ जिसके आगे है ऐसा दान (ऋग ८ । २ । ३१) अग्नि न मांगते हैं तो वह वस्तुतः सी-पचाम घोड़ों के समुदाय जिनके आगे कुछ गौएँ चल रही हैं गानरूप न नहीं मांगते, वरन एक ऐसी गवि मांगत है जो प्रकाशयुक्त हो ।"<sup>२</sup>

१ नन्दाम रामपचाध्यायी और अमरगीत, स० डा० सुश्रीन्द्र पृ० ११ २२

२ श्री अरविन्द साहित्य—एक भाँकी, विदु पृ० १६ २०

## ४ स्वरूप—

प्रतीक में एक दाह में गूढ़ अर्थ रहता है रूपक धनेक प्रतीकों के सामुच्चय से बनता है। ये दोनों गूढ़ अर्थ की व्यक्तता करने वाले होते हैं। गोप्तामी तुलसीदास जी ने स्वयं धनेक रूपक का निरूपण रामचरितमात्र में विस्तार में किया है।

तथ्य—रामचरित मार है। उगम छन्द विषयक वर्णन इस प्रकार है।

उगम—छन्द सोरठा सुन्दर सोहा। सोइ यहुरग कमल कुल सोहा ॥

पुरइत गदन बाण चौपाई। जुगुनि मजु मनि गीप गुहाई ॥

व्याख्या—छन्द सोरठा और सोहा को उगम मार का कमल तथा चौपाइयो को पुरइत (कमल की लता) माना है। इस अर्थ के लगान का रहस्य इगी कमल और पुरइत की जानकारी में भरा पड़ा है। कौतूहल का कमल जिस पुरइत में निकला है इस बात के बिना जाने किम छन्द सोरठा और सोहे का किम चौपाई से सम्बन्ध है इस बात का पता नहीं चलता और सम्बन्ध बिना जाने भ्रम्रात अर्थ हो नहीं सकता। तात्पर्य में पुरइत कहीं तो कहीं पर फूल दे देती है और कहीं भीतर दूर जाकर फूल देती है कहीं दूगरी पुरइतों से उलझनी चली जाती है। अर्थ करने वालों को इसकी जानकारी की कड़ी आवश्यकता है।

धनुसधाता ने बालकाण्ड के प्रारम्भ में सुवचना के प्रथम चार सोरठों को चार कमलों का गुच्छ और उनकी पुरइतों को अयोध्याकाण्ड से आई बताया है। इसकी स्पष्टता के लिए व्याख्या की है—

इसी बात को दिखाने के लिए कवि ने इन सोरठाओं में बन्दीपन<sup>1</sup> नहीं दिया किमी में यथा का नाम भी नहीं है। इन ऋटियों की पूति टीकाकारों को अदायक से करनी पड़ती है। इसमें मतभेद भी होता है और अर्थ में सशय रह ही जाता है। अवधवासियों की उपासना का नियम है कि पञ्चदेव की उपासना करके उनसे रामभक्ति मागते हैं। तदनुसार चित्रकूट प्रकरण में पुरवागी पञ्चदेव का पूजन करते हैं (यथा कटि मज्जन पूजाहि नरनारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी ॥ रमारम पद बनि बहोरी। बिनबहि अजलि अचल जोरी ॥) श्री गोस्वामी जी की भी अवधवासियों वाली उपासना है अतः ये भी पञ्चदेव की अजलि जोडकर वदना करते हैं। वदना यहाँ पुरइत से ली जायगी तथा जहाँ वय का नाम नहीं है उनकी पहिचान भी इसी पुरइत (चौपाई) से होगी। यह पुरइत अयोध्याकाण्ड से भीतर ही भीतर चली आई है, और इमने चार फूल बालकाण्ड के भादि में दिये।<sup>2</sup>

1 विजय टीका पृ० ५

2 वही।

आग इन चारों सोंठों रूपों कमलों की व्याख्या की गई है। कबीर के दार्शनिक रूपक और उल्टवासीयों में रहस्यवाद का बहुत गूढ़ अर्थ भरा हुआ है। आत्मा परमात्मा की एकता को अपने आत्मानुभव बल पर उन्होंने अनेक रूपों में प्रदर्शित किया है।\*

मनोवैज्ञानिक रूपक—उद्वेग रस।

“चित्ता स्थायी भाव है और आवग दैय, मोह भीसुक्य शका व्याधि, प्राप्त असूया विपाद क्षपलता ग्नानि और तक सचारी भाव हैं।

रूपक—इनका बीज है कामना जिसमें से रागद्वेष की जड़ें निकलकर कामना का प्रसार और विलास करती हुई अतस्तन की गहराई में दृढ़ हानी हैं और अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के दो बूला बंधों में बहती हुई जीवन धारा से सिंचित होती हैं। इसका तना है चित्ता शाब्दिक है य सचारी भाव जिन पर अभिव्यक्ति रूप फल फूल और पत्तें निकलते हैं। और इस अभिव्यक्ति रूप फल का रस है उद्वेग। इसकी रसोत्पत्ति सुगंध करने वाली है किंतु रसास्वादन बेचैनी करने वाला है जो कवि और पाठक दोनों के लिए अपरिहाय है। इसी लिए बेचैनी से उनका प्रेम हो गया है और वे उसी में रम गये हैं। १

इस रूपक की यथायत व्याख्या समझने के लिये पूरा प्रकरण 'उद्वेग रस' पढ़ना आवश्यक है।

#### ५. द्विअर्थी शब्द—

उच्च वनात्मक साहित्य में अनेक प्रसंगात् द्विअर्थी शब्दों का प्रयोग रहता है। रामचरितमानस में—

मनि मानिक मुकुना छवि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥  
नप किरोट तरनी तनु पाई । लहहि सकल सोभा अधिकाई ॥  
तैसहि मुखि कवित बुध करही । उपजहि अनत अनत छवि लहही ॥  
भगति हेतु विधि भवन विहाई । सुभिरत सारद आवनि धाई ॥

व्याख्या सस्कृत के महाकवियों की शैलियों में भाषा बच में आकर अधिक गोभित होंगी। अहि व सिर में अणि गिरि में माणिक और गज के सिर में मुकुना होनी है। य सब गुण, प्रमोद और सुन्दर हैं, पर जैसी इनकी गोभा है वैसी उत्पत्ति स्थल में नहीं होती। गज के सिर पर अणि की क्या गोभा है? पर्वत में माणिक और हाथी के सिर में मुकुना की क्या गोभा है? राजा के धारण करने पर

१. आधुनिक हिन्दी कविता में मनाविधान—डा उवणी ज सूरती, पृ १३०-१३१



मणि, की मुकुट में जटित होन पर माणिक की घोर सुन्दरी के शृंगार में मुक्ता की स्वाभाविक गोभा से भी अधिक गोभा हो जाती है ।

यहाँ तीन सुक्वि है—(१) शम्भु (२) याज्ञवल्क्य और (३) भुशुण्डी । यही क्रमशः (१) ग्रहि (२) गिरि और (३) गज से उपमित है । गरलकण्ठ होन से शम्भु को ग्रहि से उपमित किया, वद क तत्र तत्त्वा क चारण करन से याज्ञवल्क्य को गिरि से उपमित किया (यथा वारगत वद तत्त्व गज तोर । पावन पवत वद पुराना ।) और खाने के दाँत और तथा टिमाने के दाँत और होन से, भुशुण्डी जी को गज से उपमित किया । भुशुण्डी जी दसन में बटुभापी (काग) हैं, पर हैं बड़े मधुरभापी (यथा मधुर वचन बोले तत्र कागा) । य तीन सुक्वि है (यथा-परब्रूव प्रभुणाकृत सुक्विना था शम्भुना) । इनकी बरी हुई कथाएँ यथाक्रम मणि, माणिक और मुक्ता हैं ।

'जहाँ ये कथाएँ हुई वहाँ इनकी जसी चाहिए वसी गोभा नहीं हुई । कलास पवत पर एका त में शम्भु न गिरजा से खवाणी से कथा कही । समाज में केवल भुशुण्डी की कथा हुई सो भी पधीभाषा में और पक्षिया के मध्य में । इसलिये कहते हैं कि 'ग्रहि गिरि गज सिर सोह न तमो । छवि प्राप्ति के स्थान भी तीन है (१) नृप (२) क्रिरोट और (३) युवती सो जान नृप है (यथा सचिव विराग विवेक तरेस्) कम मुकुट है (यथा मुकुट न होहि भूष गुन चारी । यहाँ अपह्लाति अलकार द्वारा भूष के चारों गुण—साम दाम, दण्ड, भद को मुकुट कहा) । उपासना तरणी है (यथा भगति मुतिय कल करन विभूषन) ।

'अत उमा शम्भु सवाद की शोभा मानस के ज्ञानघाट पर हुई, भारद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद की शोभा मानस के कम घाट पर हुई, और गरुड भुशुण्डी सवाद की गोभा मानस के उपासना घाट पर हुई । यथा

मुठि सुन्दर सवाल वर विरखेउ बुद्धि विचारि ॥

ते येहि पावन सुभय सर घाट मनोहर चारि ॥

सबके स्वाधिष्ठात चक्र में ब्रह्मदेव का वाम है वही ब्रह्मभवन है । परावाणी मूलाधार में रहती है । वहाँ से जब यह नाभि दग को प्राप्त होती है तब इसका नाम पर्यती होता है और जब यह हृदय दग में अवस्थान करती है तब इसका नाम मध्यमा पड़ता है और जब कण्ठ-तात्वादि स्थान में आकर वरुणरूप अभिव्यक्त होती है तब इन्द्रा नाम वैखरी पड़ता है । वैखरी वाक को ही अथबोध का सामर्थ्य है । इसी के द्वारा अपना मनोगत भाव दूसरे को बसलाया जाता है । परा पर्यगती मध्यमा और वैखरी यथाक्रम वाणी की सूक्ष्मतम मृक्षमतम मृक्ष और

स्थूल भवस्थाए है। सूक्ष्मतम भवस्था से स्थूल भवस्था में आना ही वाणी का ब्रह्मभवन से यहाँ पधारना है।<sup>1</sup>

इस व्याख्या में व्याख्याता अपनी पनी अनुसंधानप्रधान दृष्टि की विशेषता के कारण संपूर्ण ग्रंथ के प्रसंगों में प्रस्तुत चोपाइयों को अखित करके द्विभर्षी गठनों के युक्तसंगत ग्रंथों पर विवेकपूर्वक विचार करके व्याख्या कर पाया है। परिणाम स्वरूप तुलसीदास की दृष्टि और व्याख्याता की दृष्टि में अभेद स्थापित हुआ।

#### ६ परावली—

कभी कभी संपूर्ण रचना में प्रयुक्त प्रमुख विशिष्ट पदावली पाठक और आलोचक के लिए भ्रम उत्पन्न करने वाली होती है और जिसकी युक्ति जिस पक्ष को अधिक प्रामाणिक मानती है उस पक्ष में व्याख्या सहित ग्रंथ में निरूप देती है। हम प्रसंगों में अक्सर कवि के जीवन-वृत्त का भी उन्हीं दृष्टि में अनुसंधान करके अनुसूक्त तथ्या का सकलन और व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रयत्न में प्रमाण से अधिक अनुमान का उपयोग होता है।

कवि श्री जयशंकर प्रसाद की रचना 'श्रीसू' की निम्नलिखित पंक्तियों में आलोचकों और अनुसंधानार्थी का दुविधा में डाल दिया है—

शशि मुख पर घूँघट डाले  
अचल में दीप छिपाये  
जीवन की गाधूली में  
कौतूहल से तुम आये।<sup>2</sup>

इन पंक्तियों में प्रयुक्त पदावली (१) शशि मुख पर घूँघट डाले, (२) अचल में दीप छिपाये और आये शब्द का प्रयोग विचारणीय है। इस पर परस्पर विभिन्न दो मत हैं—

(१) कवि न किमी लौकिक प्रेमिका के प्रति अपने ये भाव प्रकट किये हैं, परंतु अपनी इस प्रणय कथा को गुप्त रचन के लिये 'आय' शब्द का जान बूझकर प्रयोग किया है। 'शशि मुख पर घूँघट डाले' और 'अचल में दीप छिपाये' स्पष्ट ही चारी सौम्य और वेप भूषा का वर्णन है। अतः निष्कप स्वरूप 'श्रीसू' को कवि-जीवन की विरह-कथा माना गया है।

(२) प्रसाद जी की कोई लौकिक प्रेमिका नहीं थी। वे उच्चकोटि के दार्शनिक थे और यह प्रेमाभिव्यक्ति उनका रहस्यवाद है। उन्होंने सृष्टी प्रेमसाधना

1 विजय टीका, पृ ३२ ३३

2 पृ १६ स पकरण १

नुसार परमात्मा का प्रेमिना रूप म वणन कर लिया है परंतु सम्पूर्ण रचना मे प्रियतम परमात्मा क निये पुल्लिग का प्रयोग हुआ है, उमी का यही भी निर्वाह किया गया है।

सार रूप मे ऊपर निर्दिष्ट विवेचन का आधार विभिन्न आलोचनाएँ है। कुछ आलोचनाओं की मोटी रूपरेखा यहाँ दी जाती है—

(१) 'प्रथम संस्करण मे लगता है कि प्रेम भौतिक शारीरी तथा पार्थिव सौंदर्य के प्रति रहा। द्वितीय संस्करण मे उता रहस्यवादी आवरण मे रख कर आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की गई है।

श्रीसू को पढ़ते हुए पहला प्रश्न यह हाता है कि इसका आलम्बन कौन है ?'

प्रसाद ने उसके लिए पुल्लिग शब्दों का प्रयोग किया है कहा जाता है कि यह उद्ग के प्रभाव से है कुछ लोग यह मानते हैं कि श्रीसू रहस्यवादी कृति है और यह प्रिय वही अज्ञात रहस्यमय परम पुरुष है।'

यदि श्रीसू का आलम्बन वही अज्ञात माना जाय तो स्थूल शरीर का नखशिख वणन करने म कोई सगति नहीं है उदा, यह निश्चित है कि श्रीसू का आलम्बन पारलौकिक नहीं है। वह कोई पार्थिव है जो शशि मुख पर घू घट डाले हैं। परंतु वह पुरुष नहीं था नारी ही थी ॥ १

(२) उद्ग काव्य के प्रभाव ने काव्य को रहस्यात्मक रूप देने मे बड़ा भाग लिया है। कवि पुल्लिग में प्रेमिका को संबोधित करता है। परंतु इस विदेशी पद्धति के प्रभाव से गढ़बड़ी भी हो सकती है जैसे—

शशि मुख पर आचल मे

जिस दूसर संस्करण मे प्रसाद को अंतर मे करना पडा।

श्रीसू के आलोचकों ने प्रसाद के मनस्तत्व को न समझते हुए उसकी कई प्रकार की 'याख्याएँ' की हैं—

(१) श्रीसू ऐश्वर्यमय अतीत का कर्दन है।

(२) श्रीसू प्रमदिरह मूलक साकेतिक काव्य है।

(३) श्रीसू जीवात्मा परमात्मा के सम्बंध का 'यजक' आध्यात्म-काव्य है।

(४) श्रीसू विशेष वाग भगिमा प्रधान काव्य है।

× × ×

“इसमें तो सदेह नहीं कि श्रीसू की प्रेरणा लौकिक प्रेम और विरह है। अध्यात्म से उभरा सबंध पहले सस्वरण में नहीं जुड़ पाया था। कवि ने किसी से प्रेम किया था और उस सौंदर्य पुत्तलिका के नख शिख के वरण भी मिलते हैं। ऐसी भवस्था में उसे किसी भी प्रकार आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य नहीं कहा जा सकता।”<sup>1</sup>

(३) ‘श्रीसू’ में व्यक्ति के प्रति ही आकांक्षा प्रकट की गई है। इसमें अन्नमव नोयका-स्थूल सौंदर्य का आकषण प्रबल है।”<sup>2</sup>

(४) ‘श्रीसू’ विरह काव्य है। श्रीसू के साथ ही एक प्रश्न यह उठा दिया जाता है कि इस विरह का आलम्बन क्या है? कवि का प्रेम किसी स्त्री के प्रति है या किसी पुरुष के प्रति, यह शका इसलिए उठाई जाती है कि प्रमाद जी न बुद्ध स्थला पर अपने प्रेमी को पुरुष के रूप में संबोधित किया है।

बहुत से लोग श्रीसू के सम्बन्ध में यह भ्रम भी उत्पन्न करते हैं कि यह रचना रहस्यवाद के अंतर्गत आयेगी तथा वे इसमें आत्मा और परमात्मा के विरह निवेदन का रूपक भी ढूँढ लेते हैं। किंतु जो लोग ध्यान से श्रीसू तथा उसके पूर्व का प्रसाद काव्य पढ़ेंगे वे श्रीसू का निश्चिन् रूप से मानवीय बतलायेंगे ॥<sup>3</sup>

(५) पुस्तक पढ़ने से अनुमान लगता है कि कवि ने किसी से प्रेम किया था। प्रेम व्यापार कुछ दिनों तक चलता रहा। पर फिर कवि के प्रिय ने सम्भवन उसे अपनाना छोड़ दिया और इस प्रकार अचानक प्रेम समाप्त हो गया।

कवि अपने प्रिय को संबोधित करके अपनी व्यथा कहता है। उसे प्रिय के प्रथम आगमन का स्मरण हो आता है और उस भी शब्दबद्ध करता है ‘शनि मुख पर

श्रीसू के आलम्बन का लेकर भी विद्वाना में विवाद रहा है। कुछ लोग उसे अलौकिक सत्ता मानने के पक्ष में रहे हैं।

“दूसरी ओर कुछ लोगो का कहना है कि श्रीसू का आलम्बन कोई लौकिक ही है अलौकिक नहीं। दूसरी ही बात ठीक मात्राम पड़ती है। इसके लिए कई तक दिये जा सकते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि श्रीसू अपने मूल रूप में प्रथम सस्वरण में अलौकिकता या रहस्यवादिता से दूर था। दूसरे सस्वरण में कवि ने संबोधनी द्वारा उसे नया रूप दिया। अतएव स्पष्ट है कि अलौकिकता या रहस्य

1 कवि प्रसाद, रामरतन भटनागर, पृ ६४-७२

2 जयशंकर प्रसाद, इन्द्रनाथ मदान पृ २८

3 प्रसाद की कविताएँ सुधाकर पाण्डेय, पृ १७५-१७७

बादला सादी हुई है, प्रकृत नहीं है। दूसरे इसमें जो रूप वर्णन है वह इतना सजीव और मामल है कि स्पष्टतः किसी हाइ मांस के पुतले की घोर सकेत करता है। तीसरे विराट सौन्दर्य-वर्णन का अभाव है। चौथे मानवीय विरह-वर्णन कारण धनभूत बोधकता और मार्मिकता।

'श्री रामनाथ 'सुमन' ने अपनी प्रसाद की काव्य साधना में लिखा है—  
'जिन दिनों भ्रामू लिखा जा रहा था तभी मैंने इसके छन्द सुने थे। सुनकर कहा—  
इसमें तो आप छिप न सके बहुत स्पष्ट हो गये।' कवि हँसकर चुप रह गया।  
यह भी उसी का समर्थक है। प्रसाद जी के धनिष्ठ मित्र श्री विनोदगर्ग व्यास ने भी कुछ इस प्रकार के मन्त्र दिये हैं। उनकी रचनाशा में भी हम बाण के सकेत हैं कि उनके जीवन में इस प्रकार की कोई घटना घटी थी।'

भरना में कवि कहता है—

(क) पर गई पलावित तन मन साग।

एक दिन तब अथाग की धारा।

(ख) निदम होकर अपने प्रति अपने को तुमको सौंप दिया। अपनी आरम  
कथा में भी कवि ने कहा है—

"मिला वहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देख कर जाग गया।

आलिंगन में प्राते प्राते भुसक्याकर जो भाग गया ॥

जिसके अक्षय कपोल की मनवाली मुग्ध छाया में।

अनुरागिनी उपा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में ॥

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पथा की।

'मुझे लगता है कि 'आरमकथा' और 'भरना' के सकेतों से ही भ्रामू भी  
भाव्य है। इस प्रकार आलम्बन लौकिक है अलौकिक नहीं।

भ्रामू' में आलम्बन को सबत्र पुत्रिग रूप में रखा गया है—

(क) पर एक बार आये थे नि सीम गगन में मेरे।

(ख) ये सुमन नीचले सुनते करते जानी मनमानी ॥

यहाँ तक कि जहाँ अक्षय का वर्णन है वहाँ भी कवि ने पुत्रिग का ही प्रयोग  
किया है—'गणि मुख पर ।' कहना न होगा कि स्त्री के लिए यह पुत्रिग  
का प्रयोग उद्गू का प्रभाव है।

अलौकिकता का सकेत करन वाले स्थल बहुत अधिक नहीं हैं। १



वास्तविक आस्वादन करने वाले व्यक्ति को इस सत्य एक यथाय की धीरे देखना तो दूर रहा, मुडना भी नहीं चाहिए। यदि वह कविता का भान द ही लेना चाहता है तो उस उतने समय के लिए एक बालक बन कर अपने सभी ज्ञान को भूल जाना चाहिए। उसमें कहे हुए की ईश्वर वाक्य मानकर कुछ समय के लिए तो भ्रम विश्वास ही कर लेना चाहिए। तभी उसका वास्तविक रस लिया जा सकता है।<sup>1</sup>

(६) प्रकरण या सग—

व्याख्या के नियम के लिए जो नियम परंपरा के लिए हैं वे सब प्रकरण या सग के लिए भी हैं। शिकर का खडवाय 'रश्मिरथी' विशेष हेतु से लिखा गया है। कवि ने मानो उपेक्षित निघ पात्रो के उत्थान का महानुभूतिपूर्वक प्रयत्न किया है। महाभारत के उपेक्षित पात्र कण्व की भ्रमण खडवाय का नायक बनाया और 'रश्मिरथी' से उसे गौरवाचित किया। उसके प्रति होने वाले भ्रमण में कवि हृदय पीडित हुआ और उसे 'याय देने की प्रेरित हुआ। 'याय से घम की रक्षा होती है। इस घम और भ्रमण की समस्या पर कवि ने अष्टम सग में बड़ी गभीरता से विचार किया है। इस पर व्यापकता न अपने विचार प्रकृत किये हैं और आघार स्वरूप अन्त साध्य की ही धारें रखा है—

क्या कहें घम पर कौन रहा या उसके कौन विरुद्ध बना ?

× ×

है क्या घम का किसी समय करना विरुद्ध के साथ प्रयत्न ,

× +

है घम पहुँचना नहीं घम तो जीवन भर चलने में है

× ×

इस लिए ध्येय में नहीं घम तो सदा निहित साधन में है

× ×

फिर क्या विम्वय कौरव-पाण्डव भी नहीं घम न गाय रहे ?

व्याख्या इसी प्रसंग में इस बात की निश्चितता की गई है कि महाभारत का युद्ध घमयुद्ध था या नहीं। उसका यह निश्चय है कि कोई भी युद्ध घमयुद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के क्षति मध्य धीरे घन सब पापयुक्त होने हैं। जब हिंसा आरम्भ हो गई तब घम कहाँ रहा ? मनुष्य युद्ध इसलिए करता है कि वह अपनी स भयना सत्य प्राप्त कर ले। किन्तु सत्य की प्राप्ति को घम नहीं कहें। घम का भ्रम की धीरे समाग से चलने का नाम है। घम गाय नहीं साधन का देगना है।

किंतु युद्ध में प्रवृत्त होने पर मनुष्य का ध्यान साधन पर नहीं रहता, वह किसी भी प्रकार विजय चाहने लगता है। और यही आतुरता उसे पाप के पक में ले जाती है। फिर क्या आश्चर्य कि युद्ध में प्रवृत्त होने पर कौरव और पाण्डव, दोनों ने पाप किये दोनों ने विजय विन्दु तक पहले पहुँच जाने में समाग का त्याग किया ?<sup>1</sup>

खण्डकाव्य में सग रचना का अभिन्न अंग है परंतु काव्य संग्रह में सकलित प्रत्येक गीत या कविता अपने आपमें पूर्ण और स्वतंत्र होती है। उस एक गीत की व्याख्या के द्वारा हम कवि की अमुक समय की मन स्थिति का परिचय मिलता है। एक अन्तर्धारण रूप में सम्पूर्ण संग्रह में एक भावधारा या दृष्टिकोण प्राप्त होना सम्भव है, परन्तु यह नियम नहीं है। हिन्दी में इस प्रकार की व्याख्याएँ प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती हैं। यथा, आधुनिक कवि (पत) की समालोचनात्मक टीका।<sup>2</sup>

### (१०) ग्रथ

सुमित्रानन्दन पत' में डा० नगद ने कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करते हुए कवि की आरम्भिक रचना 'वीणा' से लेकर पत के नव-जीवन दशक तक सब पर आलोचनात्मक व्याख्या की है। इस श्रेणी में ऐसे अनेक ग्रथ और कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। एक एक प्रबन्ध लेखक की एक रचना पर लिखा जाय ऐसी रचनाओं में रामचरितमानस, सूरसागर, पद्मावत, प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी आदि गिनाये जा सकते हैं।

कई बार देखने में आया है कि लेखक स्वयं अपनी रचना के ममस्थल की ओर संकेत करते हैं और मानो वह संकेत हमें बता रहा है कि उसी की व्याख्या में सारे ग्रथ की रचना हुई है। यथा, मंथिलीशरण गुप्त की 'मशोधरा'। कवि ने मानो काव्य का गौहन करके काव्य के शीघ्र स्थान पर दो पंक्तियाँ लिख दी हैं जो उनकी रचना का मूल प्रेरणा-स्रोत कहा जा सकता है—

प्रबला जीवन, हाथ ! तुम्हारी यही कहानी

आँसु में है दूध और आँसु में पानी ।

इसके समर्थन में कवि ने सुत्क में गुदोपन के माध्यम से लिखा है—

गोपा बिना गीतम भी प्राह्य नहीं मुमको ।

कोई भी व्याख्याता मशोधरा की चाहे जो व्याख्या कर उपयुक्त दृष्टि को छोड़ कर नहीं कर सकता ।

<sup>1</sup> रश्मिरेखी सक्षिप्त सस्वरण, रामचारीसिंह शिन्कर, प ८

<sup>2</sup> डॉ० लक्ष्मीनारायण टंडन, प्रेमी



जिमी महान् रचना या महान् लेखक की जिमी एक विवेचना को भी धनुर्मयान धानोचका या ध्याना का महत्त्व दिया जाता है, चाकि वह एक एका तत्त्व होता है जो लेखक की धारणा का साक्षात्कार करता है। यथा—

तथ्य— प्रथम 'न' गुभाविन घोर सूचिगया म हो वार्याविक प्रेमवन्  
बोलता है।

व्याख्या— 'जीवा की विविध भावियों म यचान म सकर बुझये तर  
मातृवृत्तियो में दवा घोर क्षमा से सगर भय घोर मातृव तरु, पग विगा के विचारों  
में तथ्य घोर मिथ्या से लेकर प्रेम घोर वागा तरु, नारी के विभिन्न रूपों म  
विधवा घोर परित्यक्ता स लेकर वेधया तरु समाज के भिन्न भिन्न विधा में भाई  
बन्धु से लेकर दुनिया तरु, पृथक्-पृथक् व्यवसायियों म विगा घोर बतक स लेकर  
विवाह प्रथा तथ्य शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रीशिक्षा से लेकर सहजिगा तरु, धावत्यक्  
मातृवीय वस्तुधा म भोजन स लेकर धाभूषण तरु विभिन्न वाद एव सधर्षों म  
साम्यवाद स लेकर धादधवाद तरु घोर ऐसे ही असंग्य फुटकर विचार भेना में  
प्रेमघद ने पदापण किया है जिमका मूतरूप उनके यह सुभाविन घोर सूचितया हैं।

(११) शाली

इसी प्रकार हिन्दी की गद्य 'नैली का विकास' <sup>३</sup> में राजा निवप्रसाद सिंह  
से लेकर जैनेन्द्र तक प्रत्येक महत्वपूर्ण लेखक की भाषा शाली की सम्यक व्याख्या की  
गई है। कभी कभी 'नैली की व्याख्या सूत्रात्मक' होनी है। उपन्यासकार भगवती  
प्रसाद बाजपेयी की सवाद की विभिन्न 'नैलियों' के धनुर्मयान में प्रथम उदाहरण प्रस्तुत  
किए उनके साथ धपनी टिप्पणी दी और निष्कण रूप में तथ्य दे कर उनकी धारणा  
की। हास्य की व्याख्या सोदाहरण की गई है।

धनुर्मयाना— 'सवाद की जितनी शलियाँ बाजपेयी जी की है उनके धाधार  
पर कहा जा सकता है—

- (१) इस शाली में सरल और सुस्पष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है।
- (२) कही-कही हास्य का भी पुट मिलता है।
- (३) प्रश्नोत्तर की शली में व्यञ्जना की प्रधानता है।
- (४) सवय नाटकीयता पाई जाती है।
- (५) प्रत्येक कथन के साथ मनोभावों का भी चित्रण किया गया है।

<sup>३</sup> प्रेमचन्द सुभाविन एव सूचिगया स० 'गरण, दो शब्द'

<sup>३</sup> जगन्नाथप्रसाद शर्मा

(६) गृहस्थ जीवन और प्रेमालाप के प्रसंगा में रोषकता अधिक पायी जाती है ।

(७) सवादा से प्रायः जीवन दान का स्पष्टीकरण होता है ।<sup>१</sup>

(१२) अभिव्यक्ति-कौशल

भाषा गली स्वरूप से स्वतंत्र होत हुए भी लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने वाली होने के कारण एक और वह रचना के विषय से सम्बन्धित है तो दूसरी ओर लेखक के अभिव्यक्ति-कौशल की परिचायक है । आ० रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में प्राप्त अभिव्यक्ति-कौशल की व्याख्या इस प्रकार तथ्य दत्त की गई है—<sup>२</sup>

तथ्य १ शुक्ल जी के निबन्ध केवल मस्तिष्क के लिए व्यायाम नहीं जुटाते हृदय में अनुभूति की घटकनें भी जगाते हैं । वे केवल हमारे चिंतन को ही जाग्रत नहीं करते, हृदय को भी भाव विभार करते हैं । इनमें हृदय और मस्तिष्क का अत्यन्त उपयुक्त सानुपातिक सामंजस्य है ।

तथ्य २ यह भावात्मकता कई रूपा में मिलती है । मनोविकार, भावना या वृत्ति का विचारानुसंग विवेचन करते समय उसकी परिभाषा स्वप्न, पृथक्ता, समानता आदि अत्यन्त गूढ गुम्फित गम्भीर गली में उपस्थित करते हैं । तब श्रम परिहार के रूप में भावचित्रण रहता है ।<sup>३</sup>

तथ्य ३ श्रमपरिहार के रूप में जो भावात्मकता आती है, वह अधिकतर 'यम्य' प्रधान होती है ।

अन्तःसाध्य के रूप में रचना में से उद्धरण

(१) 'लोभिया का दमन योगिया के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता । लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान अपमान में समान भाव रखते हैं ।'<sup>४</sup>

(२) वे गरीर सुखाते हैं । अच्छे अच्छे भोजन, वस्त्र आदि की आकांक्षा नहीं करते, लोभ के अकुण्ठ से अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को बग में रखते हैं । लोभियों ! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय निग्रह तुम्हारी मानापमान समता तुम्हारा तप अनुसरणीय है तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निलज्जता तुम्हारा अविवेक तुम्हारा अयाय विगहणीय है । तुम धन्य हो । तुम्हें धिक्कार है ॥"<sup>५</sup>

<sup>१</sup> गिल्प और चिन्तन, डॉ० ललित शुक्ल, पृ० ८१

<sup>२</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयनाथ ललित पृ० ४१ ४२

<sup>३</sup> चिन्तामणि आ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ८५

<sup>४</sup> वही-गृ० ८५

तथ्य—' यह व्यय प्रयोग मम परिहार या रिलीफ के रूप में ही हमेशा नहीं होता, लेखक के हृदय की भावनाओं और तीव्र अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के रूप में भी आता है।

उद्धरण— रसखान तो किसी की नकुटी भरू कामरिया पर तीनों पुरो का राज सिंहासन तक त्यागन को तयार थ पर देश प्रेम की दुहाई देने वाली मे से कितन अपन थके माँदे भाई के फटे पुराने और धूल भरे परो पर रोमकर या कम स कम न लीक कर गिना मन मला किये कमरे का फश भी मता होने दगे ? मोटे आँसुमियो ! तुम जरा सा दुबने हो जाते, अपने आँसु से ही सहो, तो न जाने कितनी ठठरियो पर मान चढ जाता !'<sup>१</sup>

व्याख्या—अवतरण में आजाय ने बनावटी किताबी या फग्नेबल देगभक्तों पर ही करारा व्यय वार नहीं किया अभावप्रसिद्ध भोले भाले देशभ्रात्यों के लिए आत्मीयता और ममता भी प्रकट की है। देग की मार्मिक विपमता की ओर भी संकेत किया है। और 'यय तो कितना शानदार है कहने की बात ही क्या ? मोटे आँसुमियो ! चढ जाता ! अपने आँसु से इम लिए कि बहुत अधिक मोटा होने से आँसुमी रोगा का गिवाग बनता है किसी कामवा नहीं रहता जीवन का मान-द नहीं उठा पाता। इमलिये पनला होने घन का बँटवारा करने स तुम्हारा अपना ही लाभ है कोर उपकार नहीं। उपकार और मानव हित की भागा तो ऐसे पूँजीवादियों से की ही नहीं जा सकती, थोडा सा त्याग करने पर ही सफ़डो आँसुमिया को लाभ हो सकता है इस एक छोटे से वाक्य खड में कितना कुछ भर दिया है युक्त जो ने।"

### (१६) रचनागत विशिष्टता—

इसके अतगत लेखक की संपूर्ण प्रणिभा का आकलन हो जाता है। व्याख्याता शिक्षात्त का आधार लेकर निहित तथ्यों का उल्लेख कर उद्धरण देकर उसकी विस्तार में व्याख्या करता है। यथा

निबन्धकार की कला का उच्चांग इमी में है कि वह सामान्य विषय को भी रोचक तथा सरल रूप में प्रस्तुत कर उद्धरण उदाहरण आदि के द्वारा उसका क्लेवर मन्त्रित कर पाठकों के लिए उपयोगी तथा मारणा बनाय। इस दृष्टिकोण के म तीनों निबन्ध परिचायक हैं। इन निबन्धों में (कम्पोजीटर स्तोत्र प्रयुजी मेरे मोयुन चिन न घनी खोगी कला के रूप में) गलीगत विनिष्टता (आँसु मध्य और प्रवमान की उरुष्टना) प्रमाद-व्यवचना, मय-मोरम, व्यवहार-कीगत्य, बुद्धि

तथा मनका अगाधी भाव अर्थात् बौद्धिक तथा रागात्मक अथवा सौंदर्यात्मक निरूपण हुआ है। मुहावरा, लाजोविनया, उद्धरण उदाहरण से ये निबन्ध पूर्णरूपण प्लावित हैं। बाबू जी के निम्नांकित उद्धरण में वह विशिष्टता दृष्ट्य है।<sup>1</sup> प्रायः व्याख्याता ने उद्धरण दे कर विस्तार से व्याख्या की है।

(१४) छंद—कविता में छंद कोई तिलवाड की वस्तु नहीं है 'संपूर्ण कवितासे उसकी प्रेरणा, प्रभाव, उद्देश्य, कवि का भाव, भाषा, और विषय सब में छंद अभिन्न रूपसे अपना स्थान बनाय हुए हैं। छंद गायत्री ने नथ्य निरूपण किया है कि— 'छंदों को भा सौन्दर्य शास्त्र के नियमों का मानना आवश्यक है।'<sup>2</sup> फिर उसकी व्याख्या की है— हम इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि भाव तथा रस के अनुकूल ही वृत्ति हो। जो कवि इस ओर ध्यान नहीं देता वह सारे पिगल का अध्ययन व्यर्थ ही करता है क्योंकि पिगल का प्रतिम ध्येय भावों रसों तथा भावनाओं को मरस और सुन्दर बनाना है। गणना का विचार इसी सुन्दरता की दृष्टि से किया गया है, परंतु जो कवि गण सवधी नियमों को रट लेता है और यह नही समझता कि क्यों ये नियम बनाये गये हैं और न उनकी भीतरी सुन्दरता का अनुभव करता है उसके लिए गणों के नियमों का स्मरण करना व्यर्थ है। इतना ही नही कवि स्वयं इन गुणों का अपन अनुभव तथा सौन्दर्य शास्त्र के अनुसार दूसरा दूसरा नियम भी बना सकता है। और इन नियमों के पालन करने में उसे अपेक्षाकृत अधिक सफलता हो सकती है। कवि को स्वयं उसकी भीतरी सुन्दरता का भी अच्छी तरह से अनुभव कर लेना चाहिए। संभव है कि कवि भी स्वतंत्र रीति से उही सिद्धान्तों तथा नियमों पर पहुँच जाय जिस पर पहले के आचार्य पहुँचे थे।'<sup>3</sup>

उपयुक्त उद्धरण में छंद विषयक तथ्य और उसकी सद्भाषितिक व्याख्या बताई गयी अब उसका व्यवहार पक्ष देखें। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी कालिदास कृत मघदूत में प्रयुक्त छंद की व्याख्या करने के पूर्व सिद्धांत और तथ्य देते हैं—

सिद्धांत—'कविता की यह सम्मति है कि विषय के अनुकूल छंद आयोगना करने से वष्य विषय में सजीवता सी आ जाती है। वह विशेष सुलभता है। उस की सरलता और सहृदयों को आनंदित करने की शक्ति बढ़ जाती है।'

तथ्य—'इस काव्य में शृंगार और वरुण रस के मिश्रण की अधिकता है।'

व्याख्या—पक्ष का सदेग कार्णिक उक्तियों से भरा हुआ है जो मनुष्य कार्णिक आलाप करता है, या जो प्रेमोद्देव के कारण अपने प्रेमनात्र से मीठी

<sup>1</sup> निबन्धकार गुलाबराय, देवेन्द्रकुमार जन प० १११

<sup>2</sup> नवीन पिङ्गल, अथर्व उपाध्याय, पृ० १४

<sup>3</sup> वही, पृ १४ १५

बातें करता है वह न तो साँप क मट्ठा टेढ़ी मड़ी घाल घमला है न रप के सट्टा दोडता ही है । अतएव उसकी बातें भुजङ्गप्रयात या रथोद्धता, या प्रौर ऐस ही वृत्त में प्रच्छी नहीं लगती । वह ता ठहर ठहर कर कभी घीमे प्रौर कभी बुद्ध ऊँचे स्वर में प्रपन मन क भाव प्रकट करता है । यही जानकर कान्तिदास न मन्दा क्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है । प्रौर वहहि जान कर उन की देखा देखी प्रौरों ने भी दूत काव्यो में इसी वृत्त से काम लिया है”<sup>1</sup>

यहाँ सिद्धान्त पक्ष प्रौर व्यवहार पक्ष में जो एकता सक्षित होती है वह कोरा तथ्य नहीं, तथ्य के अंतराल में छिपे सत्य का दधान है ।

(१५) अलंकार —

मात्र कलापक्ष के निर्वाह क लिए बाह्य सुंदरता के आग्रही, चित्र काव्य के प्रेमी कवियों की चर्चा करना महा अभिप्रेत नहीं है । तुलसीदास जी जस सिद्ध कवि, जिनकी लेखनी के स्पग मात्र स, भाव तरंग स उच्छ्वसित भाषा अनायास अलंकार का धारण कर लेती है उसकी चर्चा है । रामचरितमानस का एक भी वरग तो क्या, एक मात्रा भी अतिगोविन क लिए नहीं है, सब सप्रयोजन प्रौर सायक है । उसमें अलंकार की योजना अथ गाम्भीय प्रौर भाव सौ दय की द्योतक हो तो क्या आश्चय ?

तथ्य—सीता स्वयम्बर के अवसर पर महारानी सुनयना राम की सुकुमारता प्रौर धनुष की कठोरता देख कर अत्यंत व्याकुल है प्रौर उनको सखि उन्हें एक के बाद एक तव देकर आश्वासन दे रही हैं—

उठरण—

दोहा—रामहि प्रेम समेत लखि, सखिह समीप बोलाइ ।

मीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ ॥ २५५ ॥

चौ०—सखि सब कौतुकु देख निहारे । जेउ कहावत हिनु ह्मारे ॥

कोउ न बुमाइ कहइ गुण पाही । ए बालक सखि हठ भलि नाही ॥

रावन बान सुभ्र नही चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥

सो धनु राजकु अर कर देही । बाल भराल की मदर सेही ॥

भूप सयानप सकल सिरानी । सखि विधि गति बछु जात न जानी ॥

बोली चतुर सखी मुहु बानी । तेजवत तपु गनिअ न रानी ॥

कह कुभज कह सिधु अपारा । सोपेऊ गुजसु सकल समारा ॥

रवि मबल दखत लघु सागा । उदय तामु त्रिभुवन तप भागा ॥

<sup>1</sup> सचपन, स०प्रभात शास्त्री पृ १५६

दोहा—मत्र परम लघु जायु बस विधि हरि हर मुर सब ।

महामन् राजराज कहैं बग बर अकुत खव ॥ २५६ ॥

कवि ने राम के लिए चार उपमाओं का प्रयोग किया—कु भज, रविमण्डल, मन्त्र और अकुत । परन्तु राम के चरित्र से साम्यता नहीं मिली—कु भज महात्मा रूप जलाने वाला मन्त्र सन्निवृत्त अकुत पीड़ा देने वाला । सुनयना के कामल हृदय का कवि को मानो खयाल हुआ और पाँचवीं उपमा देकर उसे मुक्त पहुँचाया—

काम कुसुम धनु सायक सीन्ह । सकल भुवन अपन बस कीहे ॥

दबी तजिम ससउ अग जानी । भजव धनुषु राम सुनु रानी ॥

सखी बचन सुनि भैं परतीती । मिटा विषादु बडी प्रति प्रीति ॥

इस प्रसंग में जिस प्रकार रानी सुनयना से तुलसी के हृदय की एकता है, वस व्याख्याता के हृदय की एकता से भी वे किसी एक के साथ हो जाने पर प्रतिकार का प्रसंगी सौन्दर्य पकट हा सकता है इसमें चरित्र की व्याख्या का साधन प्रतिकार है ।<sup>1</sup>

तथ्य—तुलसीदास सीता विनय में ही इसी प्रकार उपमाओं का प्रयोग करते करते अन्त में सही उपमा खोज निकालते हैं—

उद्धरण—

चौ०—उपमा सकल मोहि सधु लागी । प्राहत नारि अग धनुरानी ॥

मिय बरनिध तेइ उपमा दई ॥ कुकवि कहाइ अजमु की लेई ॥

जौ परितरिछ सीय सम सीया । जग अति जुवति कहा कमनीया ॥

गिरा मुखर तन धरम मजानी । रति धति दु खित भतनु पति जानी ॥

विष बादनी वधु प्रिय लेही । करिअ रमा सम किपि बइही ॥

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कछछपु मोई ॥

मोमा रजु मन्क सिगार । भय पानि पवज निज मारु ॥

दो०—एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता मुख मून ।

तदपि सकीच समेत कवि सीय कहहि समतून ॥ २५७ ॥

व्याख्या—इन उपमाओं के अन्वेषण में कवि सीता के विपुल सौन्दर्य को प्रतिमान देवता चाहते हैं । किसी लौकिक नारी से मरस्वती से पावती से रति से

<sup>1</sup> रामायण व्याख्यानमाला जनवरी फरवरी ७०, श्री सीतारामचरण भारतीय विद्याभवन बम्बई

बातें करता है, वह न तो साँप के सदृश टेढ़ी मढ़ी घाल घसता है न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अतएव उसकी बातें भुजङ्गप्रयात या रयोधरता या घोर ऐसे ही वृत्त में अच्छी नहीं लगती। वह तो ठहर ठहर कर कभी धीमे घोर कभी कुछ ऊँचे स्वर में अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जानकर कालिदास ने मदा क्राता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। घोर वही जान कर उन की देखा देखी घोरों ने भी दूत वाच्यों में इसी वृत्त से काम लिया है<sup>1</sup>

यहाँ सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष में जो एकता लक्षित होती है, वह कोरा तथ्य नहीं तथ्य के अंतराल में छिपे सत्य का दशन है।

(१५) अलंकार —

मात्र कलापक्ष के निर्वाह के लिए, बाह्य सुंदरता के आग्रही, चित्र काव्य के प्रेमी कवियों की चर्चा करना महा अभिप्रेत नहीं है। तुलसीदास जी जैसे सिद्ध कवि, जिनकी लेखनी के स्पदा मात्र से भाव तरंग से उद्धवसित भाषा अनायास अलंकार का धारण कर लेती है उसकी चर्चा है। रामचरितमानस का एक भी वण तो क्या एक मात्रा भी अतिशयोक्ति के लिए नहीं हैं सब सप्रयोजन और साधक है। उसमें अलंकार की योजना अथ गाम्भीय और भाव सौंदर्य की द्योतक हो तो क्या आश्चर्य ?

तथ्य—सीता स्वयंस्वर के अवसर पर महारानी सुनयना राम की सुकुमारता और धनुष की कठोरता देख कर अत्यंत व्याकुल है और उनकी सखि उन्हें एक के बाद एक तक देकर आश्वासन दे रही हैं—

उद्धरण—

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि सखिह समीप बोलाइ ।

सीता मातु सनेह बस वचन कहइ बिसखाइ ॥ २५५ ॥

चौ०—सखि सब कौतुकु देख निहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ॥

कोउ न बुझाइ कहइ गुरु पाही । ए बातक असि हठ भलि नाही ॥

रावन बान छुप्रा नही चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥

सो धनु राजकु अर कर देही । बाल मराल की मदर सेहीं ॥

भूप सयानप सकल सिरानी । ससि विधि गति कछु जात न जानी ॥

बोली चतुर सखी मुदु बानी । तेजवत लघु गनिअ न रानी ॥

कह कुभज कह सिधु अपारा । सोपेऊ सुजनु सकल ससारा ॥

रवि मडल देखत लघु सागा । उदय तामु त्रिभुवन तम भागा ॥

<sup>1</sup> सचयन, स०प्रभात शास्त्री पृ १५६

दोहा—मत्र परम लघु आमु बस विधि हरि हर सुर सब ।

महामत्त गजराज कहै बस कर घ कुम गव ॥ २५६ ॥

कवि न राम के लिए चार उपमाओं का प्रयोग किया—कुंभज, रविमण्डल मन्त्र, और घकुसु। पर तु राम के चरित्र से साम्यता नहीं मिली—कुंभज महात्मा सूय जलान वाला मन्त्र शक्तियुक्त, घकुसु पीड़ा देने वाला। सुनयना के कोमल हृदय का कवि का मानो खयाल हुआ और पौरवी उपमा देकर उसे सुख पहुँचाया—

नाम कुमुम धनु सामक सीन्ह । सकल भुवन अपने बस कोन्हे ॥

दबी तजिष ससठ प्रस जानी । भजव धनुषु राम सुनु रानी ॥

सखी बचन सुनि भ परतीती । मिटा विपादु बड़ी प्रति प्रीति ॥

इस प्रसंग में जिस प्रकार रानी सुनयना से तुलना के हृदय की एकता है वैसे व्याख्याता के हृदय की एकता दो मत्त किसी एक के साम हा जान पर मतकार का मतनी सौंदर्य प्रकट हो सकता है इसमें चरित्र की व्याख्या का साधन मतकार है ।<sup>1</sup>

तथ्य—तुलसीदास सीता चरणों में भी इसी प्रकार उपमाओं का प्रयोग करते करते मन्त्र में सही उपमा खोज निकालते हैं—

उद्धरण—

श्लो०—उपमा मकल मोहि लघु सागी । प्राकृत नारि म म नुरामो ॥

सिय बरनिष तेइ उपमा दई ॥ कुकवि कहाइ भजनु की लेई ॥

जौ परितरिछ सौय सम सोया । जग प्रति जुबनि कहा कमनीया ॥

तिरा मुखर तन धरष मदाना । रति प्रति दु खित मतनु पति जानो ॥

विय बाहनी बधु प्रिय जेहो । करिष रमा सम किमि बदेहो ॥

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपम कवथपु साई ॥

सोभा रजु मदरु सिगाह । भयै पानि एकज निज मारु ॥

श्लो०—एहि विधि उपज लच्छि जब, सुन्दरता मुख मूल ।

तदपि सकोच समन कवि, सीम कहहि समतूल ॥ २४७ ॥

व्याख्या—इन उपमाओं के प्र वेदण में कवि सीता के विन्दु सौंदर्य को प्रतिमान दखना चाहते हैं । किसी लौकिक नारी से मरस्वती से, पावती से रति से

<sup>1</sup> रामायण व्याख्यानमाला, जनवरी फरवरी ७० श्री सीतारामचरण भारतीय विद्याभवन बम्बई



घोर लामो मे भी सीता के मोक्ष की ममता होना सम्भव नहीं है ऐसी धनुषम त्रिभुवन सुन्दरी सीता को यदि हम अपने हृत्प्रदेश में मूर्तिमान करना चाहते हैं तो विगुह मोक्ष का भी जो सार है उम हम अपने मानव धनुषा से दसों। ये सारे उपमान तो शोषयुक्त हैं इसलिए मोक्ष रागित है अगुह है। सीता तो मोक्ष की प्रबधि है मोक्षमूर्ति कामदेव प्रथम शोभाभूत के सागर में परम रूपमय बच्छर की पीठ पर शृंगार के मन्त्राचल को रग कर शोभा के इन्द्र से अपने कमल कोमल सुन्दर हाथों से उमवा मघन करे और धन्त में जा सारतत्र उपलब्ध हो उसी से सीता के मोक्ष को उपमित कर सकते हैं पर तु तब भी सकोच बना रहता है एसा धनिवचनीय मोक्ष सीता का है।

कवि के इस प्रलकार प्रयोग में वाक्य का कलापक्ष तो अवश्य निखर उठता है परतु उद्देश्य है सीता का चरित्र चित्रण। इसमें कवि को पूरा सफलता मिली है। इस चित्रण में कवि हृदय की भायुक्तता और स्निग्धता बरबस प्रकट हो जाती है। सीताजी के प्रति कवि हृत्प्रदेश में कितना आदर कितना पूजभाव कितनी धन्यता और श्रद्धा है इसका परिचय भी मिल जाता है। हम इन प्रलकारों को पढ़ कर व्याख्या द्वारा कवि हृदय की इस स्थिति को अपने में अनुभव करने की क्षमता प्राप्त करनी होगी धन्यता तथ्यानुसंधान और व्याख्या मात्र धाडम्बर और वाग्जाल बने रहेंगे।

### (१६) चरित्र की व्याख्या

सम्पूर्ण रचना में मुख्य चरित्र के लक्षण बिलर रहते हैं और अनुसंधानता को उनका सकलन करना होता है। परतु इनमें एक लक्षण मुख्य होता है और उस लक्षण को न खोजा गया या उसकी सम्यक व्याख्या न हो पायी तो चरित्र का वास्तविक स्वरूप दगन नहीं होता। यदि लक्षण की गलत या विपरीत व्याख्या हुई तो हमारा दशन दूषित होगा, उपलब्धि होगी ही नहीं।

तथ्य—रामचरितमानस में सीता के चरित्र पर विचार किया गया तो एक तथ्य ऐसा मिला कि सीता का चित्रण 'माया' रूप में है तथा दूसरा तथ्य ऐसा मिला जो इस तथ्य को काटता है कि सीता माया नहीं है। ऐसे परस्पर विरोधी तथ्यों की उपलब्धि होने पर उसका निष्कय व्याख्याता की बुद्धि और भावना पर निर्भर करता है।

व्याख्या—(१) राम और सीता मिलके प्रलण्ड ब्रह्म है, धन्यता मनु शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर वरदान देने को राम प्रकृति ही प्रकट होते "

(२) "सीता जी माया नहीं हैं। जैसे 'माया को हटाओ' 'माया मिथ्या है,' 'भ्रजामर्जहि' कहते हैं वैसे सीता जी के बारे में नहीं कहा जा सकता। वह तो जगत जननी है—

(१) सिय सोमा नहि जाइ बखानी । जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥

(२) सोह नखल तनु सुदर सारी । जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥

तुलसी सीताजी के शारीरिक सौंदर्य का वर्णन कैसे करें? मात्र इशारा करते हैं! माँ के सौंदर्य का वर्णन वेटा नहीं कर सकता। वे सकोच में हैं।

इस स्थायना को कोई विरोधी सोनाहरण काट भी सकता है क्योंकि सीता जी का माया रूप में वर्णन तो है—

उभय बीच मिय मोहति कैसे । ब्रह्म जीव बिच माया जसे ॥

परन्तु 'सोहति' का सहायक होने से विरोधी तक टिक नहीं सकता।

'सोहति' की व्याख्या—माया जीव को विकृत कुरूप कर देती है, परन्तु यह सोमा बढ़ाने वाली है अर्थात् योगमाया है। अथवा अनेक वर्णनों में सीताजी का सोमा की विशेषता है—

बहुरि करऊ छवि जनि मन बसई । जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥

उपमा बहुरि कहऊ जित जोही । जनु बुध विबु बिच रोहनि सोही ॥

चरित्र चित्रण विषयक तथ्यों की उपलब्धि पुस्तक में से होती है। उपन्यासका भगवतीप्रसाद वाजपेयी—गल्प और चिन्तन में अनुसंधाता ने प्रथम पुस्तक में उदाहरण दे कर उनके आधार पर तथ्यों का अवतरण करके, उनकी व्याख्या की है। चरित्रों का आकनन करने के लिए उहान चरित्रों की विशेषताओं का सैद्धांतिक रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—<sup>1</sup>

(१) मानवतावादी ।

(२) नये पुराने विचारों की गंगा नमुनी ।

(३) स्थिर—निमित्त और विकसित रूप ।

(४) पाशों के चित्रण वर्णन या उदघाटन—मनोवैज्ञानिक आधार पर

(५) सगुण और अगुण दोनों प्रकार के चरित्र ।

(६) समाज के प्रायः सभी रूपों की भाँकी चरित्रों द्वारा मिल जाती है ।

<sup>1</sup> डॉ० ललित शुक्ल, पृ० ५५, ५६

- (७) प्रायः चरित्र प्रकाश उपान्यास ।  
 (८) चरित्र चित्रण की शशी धारणा । अज्ञान दुःखता नहीं ।  
 (९) कतिपय पात्र अथवा घोर दान्त विविध कर्म के लिए स्वयं भव है ।  
 (१०) चरित्रों के ऊपर महाद्विष मुग का प्रभाव मनुष्य परिमार्जित होता है ।

कभी-कभी एक चरित्र की व्याख्या अथ चरित्र गाथा होती है—

यथा 'राधा' (मूरमागर)—

धनुमघाता ने मीन में राधा विषयक जो तथ्य उल्लेख किए उन्हें मूरमागर का नाम में व्याख्या के शीर्षकांत पर रखा गया—

तथ्य— परमानन्द का जो पुत्रक प्राणि प्रकृति राधा

व्याख्या—मूरमागर रचित जिन पात्रों का आधार पर राधा की व्याख्या की गई है उनका नाम धनुमघाता ने प्राणि प्रकृति म दिया है । कृष्ण का इस परमाण्विक रूप का प्रकाशन ब्रह्म के शक्ति मायिका का भाव हुआ है उसमें राधा का स्थान अथ गीतियों में विद्यमान रूप में महत्त्वपूर्ण है । कवि ने जिन प्रकार कृष्ण का सविष्णुवाद रूप प्राणि प्रकृति कहा है उसी प्रकार राधा को प्राणि प्रकृति । दोनों में तात्त्विक अन्तर्भाव है माया का कारण वे भिन्न भिन्न प्रकृत होते हैं तथा सीता मुल के लिए उनके पृथक् व्यवहार ही जाते हैं ।

राधा और कृष्ण की प्रेमलीला प्राणि घोर अत्यन्त है । प्रथम बाल मिलन से ही दोनों के मन में गुप्त प्रेम प्रकट हो जाता है (मूरमागर ना० प्र० मभा कागी० पृ० १२६१) । बालक कृष्ण राधा को बाता में भरमाकर ले जाते हैं तभी कहते हैं— मैं जब भी घोर जहाँ भी दारीर धारण करता हूँ वहाँ तुम्हारे ही कारण । तुम्हारे स्वयं में दारीर का ताप मिटाता हूँ घोर कामद्वन्द्व दूर करता हूँ । यथा घोर यथा ही गुप्त सीता मूर से कही गयी जाती (वही पद १३०१) ।

इस अर्थ के पं क्रमांक १३३२ १३३३ १३५० १३६६ १३०० १३०६ १३१७, १३७१ १२६२ १२६४ १३०१ तथा मू० सा० (ये० प्रे०) पृ० २८२ २६२ २७२, २८७ ३०२ २८० २८७ ३४५ ३४७ ३५१ ६५२ ३५३ ४१२ ४१६ ४३० ४५१, ३७४ ३८३ ४०८ ४०६ ४१० ५०६ ५६२ के आधार पर बड़े विस्तार से राधा चरित्र की व्याख्या की गई है ।

(१७) प्रसंग अथवा घटना—

तथ्य—श्रीरामधर्म का सदेव लेकर सीताजी के पास जाने के पूर्व हनुमानजी को समुद्रोत्थान करना पड़ता है । काय बड़ा दुष्कर है घोर देवता लोग 'सुरसा' को

१ मूरदास डा० अनेकर वर्मा पृ० १६७ १७१

भेज कर हनुमान जी की शक्ति को तोलना चाहते हैं। सुरमा' हनुमान जी को खा जाना चाहती है। दोनों अपने शरीर को स्पर्धापूर्वक बढ़ाते चल जाते हैं। हनुमान जी ने देखा, सुरमा की विशालता का कहीं अंत नहीं। तब वे छोटे बन गये और उसके मुख में प्रविष्ट हो के बाहर निकल आये—

मत्त जोजन तेहि आनन कीहा । अनि सधुरूप पवनसुत लीहा ॥

वदन पइठि पुनि बाहर आवा । भागी विदा ताहि मिर नावा ॥

(सुन्दरकाण्ड)

‘व्याख्या—इसका तात्पर्य है—शास्त्रों का अंत नहीं। सब में पण्डित होने का नाम छोड़ दो। शास्त्रों का मम जान लो। अथवा अभिमानवश अपने को बड़ा समझोगे परंतु शास्त्रों का सार हाथ न लगेगा और खोज का अंत भी न आवेगा। अभिमान छोड़ कर लघु' माने हल्के फुल्के हो जाओ अर्थात् उपाधिय, का सारा बोझ फेंक कर, परमानंद रूप हो जाओ।’

आधुनिक हिन्दी साहित्य यथायवाद' के साथ घटनात्मक सत्यता पर अधिक जोर देने लगा। परिणामस्वरूप आंचलिक उपन्यास लिखे जाने लगे। जहाँ तक हम उस प्रदेश विशेष के लोक जीवन और इतिहास नहीं जानते इन उपन्यासों की सही व्याख्या नहीं हो पाती। व्याख्या से अपेक्षा की जाती है कि एक लेखक के व्यक्तित्व और इतित्व का या एक सम्पूर्ण रचना का अध्ययन करने वाला उसमें आए हुए सब विषयों का जानकार हो और लेखक के सम्पूर्ण जीवन वक्त से परिचित हो। यदि रचना में इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा व्यापार राजनीति धर्म-वेदांत भक्ति योग शिक्षा विज्ञान या चाहे कोई भी विषय हो व्याख्याता को तद्विषयक उतनी जानकारी अवश्य होनी चाहिए जिससे उनकी ‘यान्या अधूरी गलत या विपरीत न हो जाय।

कबीर के रहस्यवाद का अध्ययन न करने के सिलसिले में अनुसंधाता ने योग का महत्व देखा और उसकी व्याख्या करके कबीर के मत-य को समझने की चेष्टा की। बिना योगदर्शन की प्राथमिक जानकारी के यह नहीं हो सकता। अनुसंधाता ने योग के प्राथमिक सिद्धांतों की व्याख्या की और आध्विक व्याख्या जहाँ अपूर्ण मालूम हुई चित्रों द्वारा कुंडलिनी प्राणायाम और पटञ्जल की व्यवस्था को समझाने का प्रयत्न किया।<sup>1</sup> ऐसे चित्र भी व्याख्या का एक महत्वपूर्ण अंग समझना चाहिए। व्याख्या और चित्र तब एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं।

<sup>1</sup> कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, प० ७६-८७

(१८) भावपक्ष—

सूरदास की काव्यकला की अनेक विशेषताओं में एक है भाव शिष्टता, जिसका अनुसंधान ने तथ्यरूप में उल्लेख करके उसकी परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार की है—

तथ्य— 'सूर की काव्यकला की एक विशेषता है भावशिष्टता—अनेक भावों की एष साथ एक ही पद में व्यंजना ।

व्याख्या—भावशिष्टता का जसा उन्मेष सूर के अमरगीत में प्राप्त होता है वंसा अथ वक्तव्यों में नहीं है। इसकी यह विशेषता है कि इसमें भाव-पात्रों का मात्र रूप धारण कर पाठक या श्रोता के हृदय में सघन उत्पन्न कर देते हैं। इससे मानव व्यावहारिक जीवन की जड़ता से सचेतनीय हो कर पृथक् इन्हीं भावों में सीन हो जाता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

निरखत अक्षय्यासुन्दर के बार बार लावति छात्री ।

लोचन जल वाग्द भूमि मिलिकैं हूँ गई दयाम दयाम की पाती ।

मौन गोपियों की यह अनयता प्रेमदग्ध विरहाकुलता और प्रेम भावना अत्यन्त दुर्लभ है। नीरस से नीरस हृदय यत्कि भी इन पक्तियों को पढ़ कर विचलित हो उठता है ।<sup>१</sup>

(१९) उद्दीपन विभाव प्रकृति बलन

भारतेदुरचित चद्रावली नाटिका के प्रकृति बलन की व्याख्या सोपाहरण, सिद्धांत बचनपूर्वक गुण लोप की सम्मक चर्चा के साथ की गई है। व्याख्याना नाट्यकार के ध्येय को समझने की चेष्टा करता है—

तथ्य—चद्रावली नाटिका का तीमरा अथ वर्णा-बलन में प्रारम्भ होता है। यही नाट्यकार ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखा है—

उद्धारण—'सली देय बरमान

पाल मक्ती है ।'

व्याख्या—इस बचन में उत्प्रेक्षा और उपमा द्वारा नाट्यकार ने प्रकृति के होकर हृदय की विरह भावना की अभिव्यक्ति ही प्रधान रूप में प्रस्तुत की गई है। मानव प्रकृति के साथ सम्बन्धित वर्णों का स्वाभाविक विचलन कामिनी के शब्दों में बहनाया गया है—

उद्धारण—'देव भूमि पारों और

प्रायः जान ही घाय है ।'

१ सशिक्षित अमरगीत रत्नमाला बच्य 'सूरवृत्त अमरगीत' भावोच्छ्वासा एव मूल्यांकन, पृ० ४६ ५०

व्याख्या—बाह्य प्रकृति के स्वरूप का प्रत्यंगीकरण ही नाट्यकार का ध्येय प्रतीत होता है। प्रकृति के वर्पाकानीन व्यापारों को छुने नभों में तो भवदय देखा है, परंतु उसकी मूल प्रेरणा बाह्य मोक्ष तक ही सीमित रह गई है। प्रकृति केवल भावोत्पत्ति करती है पर रसवत्ता के लिए भाव में स्थायित्व का होना अनिवार्य है और वह मानव में प्रकृति के प्रति आंतरिक प्रेरणा हुए बिना नहीं हो सकती। अतः उद्दीपन के प्रयोजन से प्राकृतिक दृश्यों की भवतारणा करना दोष नहीं है किन्तु जब प्रकृति का भाव केवल प्रेम का उदात्त और उन्माद बढ़ाना ही रह जाय तो नसर्गिक सजीवता एवं प्रभावमयता नष्ट हो जाती है। प्रकृति तथा मानव को निकटतम लाने के लिए भाव विभोरता तथा चतनगील भाव धारा के प्रवाह की नितात भावश्यकता है। प्रकृति और मानवीय व्यापारों के अन्तस का सम्बन्ध ही प्रकृति का सजीव तथा रसमय चित्र खींचता है।<sup>1</sup>

‘ प्रकृति चित्रण नाटिका के आकार प्रकार के विचार से आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार अपनी भावुकता को सतत नहीं रख सका है। ’

### (२०) घालबम विभाव—

व्याख्याता तथ्य के माध्यम से व्याख्या में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है—<sup>1</sup>

तथ्य—‘मुरली पर कहीं हुई उत्तिया भी ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उनसे प्रेम की सजीवता टपकती है।

व्याख्या—यह वह सजीवता है जो भरे हुए हृदय से छलक कर निर्जीव वस्तुमा पर भी अपना रग चढाती है। गायियों की छेड़छाड़ कृपण तक ही नहीं रहती, उनकी मुरली तक भी—जो जड़ और निर्जीव है, पहुँचनी है। उन्हें यह मुरली कृपण के सम्बन्ध से कभी इठनाती, कभी चिढाती और कभी प्रेममग्न दिखाती जान पड़ती है। उमी सम्बन्ध भावना से ये उसे कभी फटकारती हैं कभी उसका भाग्य सराहती हैं और कभी उससे ईर्ष्या प्रकट करती हैं—

बदरण—(क) माई रो ! मुरली अनि गव काहू बदति नहि घाज ।

हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज ।।

<sup>1</sup> सुरनाम भा० रामचन्द्र शुक्ल-पृ० १८४ १८६

## (१८) भावपक्ष—

सूरदास की शब्दकला की अनन्य विशेषताओं में एक है भाव शिष्टता, जिसका भनुसधान ने तथ्यरूप में उल्लेख करके उसकी परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार की है—

तथ्य—‘सूर की वाच्यकला की एक विशेषता है भावशिष्टता—अनेक भावों की एक साथ एक ही पद में योजना ।

व्याख्या—भावशिष्टता का जसा उल्लेख सूर के भ्रमरगीत में प्राप्त होता है वसा अन्य कवियों में नहीं है। इसकी यह विशेषता है कि इसमें भाव-यात्रा का-ना रूप धारण कर पाठक या श्रोता के हृदय में सव्य उत्पन्न कर देते हैं। इससे मानव व्यावहारिक जीवन की जड़ता से सवेदनशील हो कर पूराने इन्हीं भावों में लीन हो जाता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

‘निरखत अक श्यामसुन्दर के बार बार आवति छानी ।

लोचन जल कामद ममि मिलिहँ हँ गई श्याम श्याम की पाती ।

मौन गोपियों की यह अनन्यता प्रेमदंगन विरहाकुलता और प्रेम भावना अत्यन्त सुलभ है। नीरस से नीरस हृदय यत्कि भी इन यत्किशो को पद कर विचलित हो उठता है।”

## (१९) उद्दीपन विभाव प्रकृति वर्णन

भारतेदुर्घटित ‘चन्द्रावली’ नाटिका के प्रकृति वर्णन की ‘यारया सोदाहरण, सिद्धांत कथनपूर्वक गुण लीप की सम्पन्न चर्चा के साथ की गई है। व्याख्याता नाटककार क ध्येय को समझने की चेष्टा करता है—

तथ्य—चन्द्रावली नाटिका का तीसरा अंक वर्षा-वर्णन से प्रारम्भ होता है। यहाँ नाटककार ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखा है—

उद्देश्य—‘सखी देख बरसात पाल सकनी है।”

व्याख्या—इस कथन में उल्लेख और उपमा द्वारा नाटककार ने प्रकृति के व्यापारों को उद्दीपन का रूप प्रदान किया है। यहाँ पर प्रकृति का स्वरूपकनन होकर हृदय की विरह भावना की अभिव्यक्ति ही प्रधान रूप से प्रस्तुत की गई है। मानव प्रकृति के साथ सम्बन्धित वर्षा का स्वाभाविक चित्रण कामिनी के मन में कहलाया गया है—

उद्देश्य— देख भूमि चारों ओर प्रलम्ब वान ही भाया है।”

१ सशिक्षित भ्रमरगीत, रत्ननाल वन्य सूरकृत भ्रमरगीत धारोचना एक मूर्पाकन, पृ० ४६ ५०

व्याख्या—वाह्य प्रकृति के स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण ही नाट्यकार का ध्येय प्रतीत होता है। प्रकृति के वर्पाकाजीन व्यापारों को सुने नश्रो से तो भवश्य देला है, परतु उमकी मूल प्रेरणा वाह्य सौदय तक ही सीमित रह गई है। प्रकृति केवल भावोदय करती है पर रसवत्ता के लिए भाव म स्यायित्व का होना अनिवाय है और वह मानव में प्रकृति के प्रति आतरिक प्रेरणा हुए बिना नहीं हो सकती। अत उद्दीपन के प्रयोजन से प्राकृतिक दृश्या की भवतारणा करना दोष नहीं है किंतु जब प्रकृति का काय केवल प्रेम का उत्ताप और उभाण बढाना ही रह जाय तो नसगिक सजीवता एव प्रभावमयता नष्ट हो जाती है। प्रकृति तथा मानव को निकटतम लान के लिए भाव विभोरता तथा चेतनशील भाव धारा के प्रवाह की नितात भावश्यकता है। प्रकृति और मानवीय व्यापारों के अतस का समवय ही प्रकृति का सजीव तथा रसमय चित्र खीचता है।

प्रकृति चित्रण नाटिका के आकार प्रकार के विचार स आवश्यकता से अधिक सम्भा हा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार अपनी भावुकता को सयत नहीं रख सका है।

### (२०) धालवन विभाव—

व्याख्याता तथ्य के मायम से व्याख्या म स्थूल स सूक्ष्म की ओर बढता है—<sup>1</sup>

तथ्य— मुरली पर कही हुई उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं क्योकि उनसे प्रेम की सजीवता टपकती है।

यारया—यह वह मजीवता है जो भरे हुए हृदय मे छलक कर निर्जीव वस्तुओं पर भी अपना रग चढाती है। गापिया की छेडछाड कृपण तक ही नहीं रहती, उनकी मुरली तक भी—जो जड और निर्जीव है पहुँचती है। उह यह मुरली कृपण के सम्बध से कभी इठभाती, कभी चिढाती और कभी प्रेमगव दिखाती जान पडती है। उसी सम्बध भावना स ये उसे कभी फटकारती हैं कभी उसका भाग्य सराहती हैं और कभी उससे ईर्ष्या प्रकट करती हैं—

उदरण—(क) माई रो ! मुरली प्रति गव काहू बढति नहिं धाज ।

हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज ॥

1 सूरनास - धा० रामचन्द्र सुक्ल पृ० १८५ १८६



(ख) मुरली तऊ गोपालहि भावति ।  
 सुन, रो मली । जदपि नदनदडि नाना भति नचावति ।  
 रासति एष पायें ठाके परि भति अधिकार जनावति ॥  
 आपुन पौडि अधर सज्जा पर बर पल्लव सो पद पलुटावति ।  
 भकुटि कुटिल कोप नामापुट हम पर कोपि कपावति ॥

हृदय के पारसी सूर ने सम्बन्ध भावना की गति का अन्वेषण प्रसार दिखाया है। कृष्ण के प्रेम ने गोपियों में इतनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण क्या कृष्ण की मुरली तक से छेड़छाड़ करने को उनका जी चाहता है। हवा से लड़ने वाली क्षिप्रा देखी नहीं तो कम से कम सुनी बहुताने होगी चाह उनकी जिंदादिली की बदन की हो। मुरली के सम्बन्ध से वहे हुए गोपियों के वचन से दो मानसिक तथ्य उपलब्ध होते हैं—आलवन के साथ किसी वस्तु की सम्बन्ध भावना का प्रभाव तथा अत्यंत अधिक् या फालतू उमग के स्वरूप। मुरली सम्बन्धियों उक्तियों में प्रधानता पहली बात की है यद्यपि दूसरे तथ्य का भी मिश्रण है। फालतू उमग के बहुत अध्ये उदाहरण उस समय देखने में आते हैं जब कोई स्त्री अपने प्रिय को कुछ दूर पर देख कभी ठोकर खाने पर ककड पत्थर को दो चार मीठी गालियाँ सुनाती है कभी रास्ते में पडती हुई पेड़ की टहनियों पर झूझा सहित भुभुलाती है और कभी अपने किसी साथी को यो ही ढकेल देती है।

अक्सर देखने में आया है कि तथ्य और तथ्याख्यान का मिला जुला रूप ही व्याख्याता मात्र व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करता है, परन्तु अनजान में भी खोज प्रक्रिया का सही रूप अपनाने के कारण प्रत्येक व्याख्या आगे तथ्य के रूप में परिणत होती जाती है क्योंकि सत्य तक पहुँचने की एकमात्र यही पद्धति है।

उपयुक्त ग्राह्या में तथ्य सफल और तथ्याख्यान की एक परम्परा सी बनी हुई है। प्रत्येक पिछला तथ्याख्यान आगे की व्याख्या के आधार स्वरूप तथ्यरूप में आता है। यथा

- तथ्य— (१) मुरली विषयक उक्तियों में प्रेम की सजीवता ।  
 व्याख्या — यह सजीवता ईर्ष्या प्रकट करती है ।  
 तथ्य— (२) इस व्याख्या में निहित तथ्य है— कृष्ण मुरली सबंध भावना ।  
 व्याख्या— उद्धरण के आधार पर— "हृदय के पारसी सूर ने बदन की हो ।"  
 तथ्य— (३) 'दो मानसिक तथ्य उमग के स्वरूप ।

व्याख्या— “मुरली सम्बन्धिनी-उक्तियो म ठकेस देतो है।”

तथ्य और तथ्याख्यान का यह अभिन्न स्वरूप निहित तथ्या के विषय में जसा सत्य प्रमाणित हुआ है वैसे विहित तथ्यों के विषय में हमारा सम्भव नहीं है। कभी कभी एक विहित तथ्य में स उत्पन्न भ्रय विहित तथ्य का हम व्याख्या के रूप में देख सकते हैं, जैसे लेखक का लौकिक जीवन जो अनेक तथ्यों का संग्रह है, उनमें कोई कोई तथ्य उसकी सजीव प्रतिभा के निमाण में निमित्त होता है और फलस्वरूप रचना की उपलब्धि होती है। तब हम कह सकते हैं कि लेखक के जीवन के इस प्रसंग को समझने के लिए उसकी यह अनुभव रचना पढा भ्रयवा” लेखक की इस रचना की सही व्याख्या के लिए उसके जीवन के अनुभव प्रसंग को भली भाँति जानो। इस प्रकार ये दोनों परस्पर सापक्ष हैं।

हमारे तथ्य की व्याख्यास्वरूप उपलब्ध रचना स्वयं में व्याख्या होने पर भी व्याख्याता उस रचना को लेखक के कृतित्व के एक तथ्यरूप में उसे ग्रहण करता है और वह अपने विवेक के प्रमाण में अनुसंधान के आधार पर व्याख्या करता है, क्योंकि रचना की अनुभव तथ्य की व्याख्या देना उसे स पाठक या अनुसंधाता को हार्थिक सतोप नहीं होता और व्याख्या के अभाव में ऐसी स्थापना पर विश्वास भी नहीं जमता। इस कारण विहित तथ्यों का अनुसंधान और उसकी व्याख्या न की जाय तब तक अनुसंधान काय पूराता की दिशा में आग नहीं बढ़ पाता।

२१ आश्रय—

भा० रामचन्द्र गुक्ल ने सूर के पदों में पाया कि १

तथ्य—‘आलम्बन की रूप प्रतिष्ठा के लिए कृष्ण के अग प्रत्यग का सूर ने जो सङ्को पदों में वणुन किया है वह तो किया ही है, आश्रय पक्ष में नेत्र व्यापार और उसके अदभुत प्रभाव पर एक दूसरी ही पद्धति पर बड़ी ही रम्य उक्तियाँ और बहुत अधिक हैं।

व्याख्या—‘रूप को हृदय तक पहुँचाने वाले नेत्र ही है। इससे हृदय की सारी भावुलता, अभिलाषा और उत्कठा का दोष इन्हीं रूपचारका के सिर मढ़ कर सूर ने इनके प्रभाव प्रदर्शन के लिए बड़ अनुठे ढग निवाले हैं। वही इनकी न बुझने वाली प्यास की परैरानी दिखाई है वही इनकी चपलता और निरकुशता पर इन्हें कोसा है। इस प्रकार के नेत्र-व्यापार वणुन आश्रय-पक्ष दोनों में होते हैं। सूर ने आश्रय-पक्ष में ही इस प्रकार के वणुन किये हैं, जस—

१ सूरदास, पृ १८३ १७४

मेरे मना धिरह की घेलि गई ।

सौंघत गार मन के सजनी भूग पातास गई ॥

विगतति सता मुभाय घापने, छाया सघन गई ।

अब कसे निहयारी, सजनी ! सय तन पसइ गई ॥

### २२ रसपरिपाक—

व्याख्याना ने रग के प्रभाव में राग्य पद्य या लेख को काय सगा का अधिकारी नही माना है और रस परिपाक को काव्य की कसौटी में अनिवार्य बताते हुए भूपण की कविता में से तथ्यानुसंधान किया है कि—

भूपण की कविता धीर रस की है ।

सिद्धांत— गद्य के उत्कृष्ट उमकी ललकार, दानों की रंगा धम को दुदगा प्राप्ति में किमी पात्र के हृद्य में उनको मिटान के लिए जा उल्साह उत्पन्न होता है और जिगसे वह नियागीन हो जाता है उन्ही के कारण स धीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता के मन में उमता है । धीर रस प्रकार के माने जाते हैं— युद्धवीर तथावीर दानवीर और धमवीर ।

व्याख्याना ने आगे विस्तार से रस निरूपण किया है और पुन तथ्यनिरूपण करते हैं—

भूपण की कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल जस वीर है जिनमें चारों प्रकार का वीरत्व पाया जाता है । अतः भूपण न चारों प्रकार का वीर का वर्णन किया है । यथा,

### दानवीर—

साहित ने सर जाकी कीरति सो चारो और,  
चादनी बितान छिति छोर छाइयतु है ।  
भूपत मनत ऐसो भूप मोसिला है  
जाके द्वार भिच्छुक सदा ई भाइयतु है ॥  
महादानि शिवाजी खुमान या जहान पर,  
दान के प्रमान जाके यो गनाइयतु है ।  
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु आसों  
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है ॥

1 शिवराज भूपण, टीकाकार प राजनारायण शर्मा, भूमिका

२ वही, पृ० ५६

व्याख्या—इस कविता में शिवाजी के दान का वर्णन है। यहाँ भिक्षुक लोग प्राप्त हैं। दान पात्र की सत्पात्रता, यग और नाम की इच्छा उद्दीपन हैं। यात्रक की इच्छा से भी अधिक दान देना अनुभाव है और यात्रक की सतुष्टि देखकर हृष आदि उत्पन्न होना सचारी भाव है। इस तरह यहाँ रस का बहुत अच्छा परिष्कार है।

(ख) कृतित्व के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व (विषयगत मत्य) की व्याख्या  
१ एक लेखक के संपूर्ण कृतित्व की एक व्यक्तिगत विवेचिता—

### [प्रचलित मत व विरुद्ध अभिप्राय]

तथ्य— प्रसाद जी के नाटकों की चौथी विशेषता उनकी गम्भीरता है जो नाटककार के उद्देश्य प्रकृति और विषय जसित है।'

व्याख्या—'इसी गम्भीरता के कारण प्रसाद जी के नाटकों में हास्य का अभाव है। स्व दगुप्त के मुदगन और मातृगुप्त के वार्तानाप में वे अवश्य कुछ सफल हुए हैं। अथ नाटकों में भी उन्होंने संस्कृत नाटक के समान विदूषण रखे हैं पर आहार्यों का पेट्रूपन आधुनिक रुचि के अनुकूल नहीं। नाटकों की गम्भीरता वरुण रस के प्राधान्य के कारण है। ये नाटक सुगम नहीं कहे जा सकते। ये वास्तव में 'ट्रेंजडी-कमेडी'—वरुण सुगम नाटक हैं और इस रूप में वे संस्कृत नाटकों के अधिक अनुकूल हैं।

देवसना का वरुण उसकी असफलता के ही कारण है भौतिक सुखों के अभाव की वरुण की प्राप्ति पूरी करती है जिसके कारण नाटक की मारी कथा वस्तु में गम्भीरता आ गयी है। पात्र दार्शनिक हो उठते हैं अन्तिम दृश्य तक उन्हें समाज के वेद-बूट भौतिक सुख याधन हाम उपहास से कोई सरोकार नहीं रहता। परन्तु यह दार्शनिकता पात्रों के चरित्र विकास के कारण है। पात्र प्रारम्भ से ही दार्शनिक नहीं रहते और न नाटक ही दार्शनिक कहा जा सकता है।

### अपनी व्याख्या के समर्थन में अथ मत का उद्धरण—

बहुधा प्रसाद जी के चरित्रों पर एक बाल्य दार्शनिकता का आरोप किया जाता है। अपने आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रसाद जी की आलोचना करते हुए पंडित कृष्ण शंकर शुक्ल लिखते हैं 'उनके पात्रों में दोहरा व्यक्तित्व रहता है। वास्तव में उन्हें कम की सामर्थ्य पर अचल विश्वास था।' इसमें एक और तथ्य निहित है—'प्रसाद जी का नियतिवादी होना फिर भी कम की सामर्थ्य पर अचल विश्वास होना।'

१ प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक, राजेश्वर प्रसाद भगल, पृ० ३३ ३७

उपयुक्त मत की लेखक के प्रति व्याप्य बुद्धि से प्रेरित समीक्षा—

व्याख्याता ने उद्धृत मत का सर्वांश म स्वीकार नहीं किया है। प्रसाद जी की अधिक् से अधिक् 'याय देने की चेष्टा की गई है। दुबल जी न उनके पात्रों में 'कृत्रिम व्यक्तित्व' का आरोपण किया है। इसकी काटते हुए समीक्षा की गई है— प्रसाद जी को भयानक जीवन सपना करना पड़ता था और इस कारण अपनी ही अनुभूति को लेकर यदि प्रसाद जी के खरिद जीवन सपना में असफल हो अष्ट म विश्वास करें तो यह 'कृत्रिम व्यक्तित्व' नहीं। यह तो एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति ही समझी जावेगी। साधारण मनुष्य जब अपनी सामाजिक कठिनाइयों में घतपतन हो अष्ट और नियति की पुकार मचाने लगते हैं, तब हम उन पर दार्शनिकता का आरोप नहीं करते। प्रसाद जी के नाटकों को इस रूप में दार्शनिक समझना भ्रम है। यह भ्रम है कि उनके कुछ निज के विचार हैं, परंतु प्रत्येक कलाकार का कुछ न कुछ उद्देश्य रहा करता है—उनके कुछ न कुछ जीवन के सिद्धांत रहा करते हैं। परंतु उनके नाटकों और पात्रों को दार्शनिक बहाना भ्रम है।'

'यायबुद्धि के कारण अथ मर्तों से अप्रभावित और लेखक के प्रति सहानुभूति—

आगे व्याख्याता ने कृष्णकर जी से मेल खान वाले विचारों का उद्धृत किया है परंतु उससे अपनी असहमति और प्रसाद जी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है और निष्कर्ष रूप में बताया है कि 'बाह्य सपना और प्रतिक्रिया स्वरूप अतद्ध के कारण ही नियतिवाद और कम में विश्वास' उनके पात्रों की विशेषता है।

२ स्वयं लेखक द्वारा अपने सम्पूर्ण कृतित्व में घटित होने वाली एक विशेषता—

धनुसघात वैज्ञानिक आवेग की वृत्ति से प्रेरित होकर अपने विवेक क प्रकाश में ही तथ्यसंकलन और उसकी 'याय करे। फलतः हम इस व्याख्या की सहायता से रचनाओं में लेखक के 'यक्तित्व' दर्शन की दृष्टि पाते हैं। प्रत्येक धनुसघात के लिए इस प्रकार की व्याख्याओं का मात्र सफाई समझने के लिए विवक होना और लेखक का अभिमान तथा ईमानदारी का अभाव हमें खटवे परंतु इस विषय में पूर्वाग्रह से प्रेरित न होना अच्छा है।

अम प्रकार के व्याख्या प्रसंगों में लेखक कभी अतद्ध रूप से तथ्यनिरूपण करके उसकी व्याख्या करता है तो कभी-कभी अथ आरोपकों के विचारों में प्रति फलित होने वाले अभिप्राय से तथ्य मचाने का उमका प्रथम उल्लेख करके उसकी व्याख्या करता है। यह 'याय कभी अनुकूल प्रतिकूल सम्मिलित अभिप्राय से मुक्त होती है। इस 'याय का स्वरूप अतद्ध अतद्ध और अतद्ध विवेकण प्रथम होने क कारण यह लेखक के अतद्ध 'यक्तित्व की परिचायक होती है।

तथ्य—“यह कहा जाता है कि मेरी कविताप्राप्ति में सुन्दरम और निवृत्त म भी बड़े नश्य मत्पय का भी बोध नहीं होता है साथ ही उनमें वह अनुभूति की तीव्रता नहीं मिलती जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।”

व्याख्या—यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुःख की सत्य की प्रकृति अपने मानसिक सधप को मने अपनी रचनाप्राप्ति में वाणी नहीं दी है क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है। ‘गुणन म तप रे मधुर मन’ में सीख न पाया अब तक मुझ से दुःख को अपनाता, आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस सचि की छोटक हैं। मुझे लगता है कि सत्य निवृत्त म स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूल में रूप रस है फल में जीवनोपयोगी रस और फूल की परिणति फल में सत्य के नियमों द्वारा ही हो सकती है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (निवृत्त) है तो उसके आधारभूत कारण उस उपयोगिता में सधप रखन वाली सत्य में अवश्य होनी चाहिए नहीं तो वह उपयोगी नहीं हो सकती। इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है और मेरी रचनाप्राप्ति में उसका सम्बन्ध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दोनो रूप हैं शराबी शराब पीता है यह सत्य है उस शराब नहीं पीना चाहिए यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (पेक्चुवल) रूप है दूसरा परिणाम से सम्बन्ध रखने वाला। मेरी रचनाप्राप्ति में सत्य का दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है, वह मेरा सत्कार है, आत्मविकास (मबलिमेगन) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध अन्तमुखी (इंट्रोवर्ट) स्वभाव। क्योंकि दूसरा कारण रूप अतद्धृदय की अभिव्यक्ति न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देना है। मेरे पल्लव बाल की रचनाप्राप्ति में, गुलनात्मक दृष्टि से मानसिक सधप और हार्दिकता अधिक मिलती है और वाद की रचनाप्राप्ति में आत्मोत्पत्ति और सामाजिक अभिव्यक्ति की इच्छा।”

उपरोक्त विस्तृत व्याख्या का अन्त पुनः एक नवीन तथ्य के उल्लेख में हुआ है। सजग लेखक की अपनी रचनाप्राप्ति में निहित प्रत्येक सूक्ष्मानुभव तथ्य का बोध रहता है और अन्तमुखता के कारण वह उसकी व्याख्या करने में भी समय रहता है। लेखक ने इस तथ्य की फिर आगे व्याख्या की है। तथ्य और व्याख्या का यह क्रम इस लेख के अन्त तक फला हुआ है। इसके अनुशीलन से यदि लेखक की दृष्टि हथ मिल जाय तो व्याख्या का मुख्य तात्पर्य लेखक के व्यक्तित्व का दसन सिद्ध हो जाय।

अपनी रचनाप्राप्ति में सधप्रेष्ठ गुणा का दावा तो हर कोई लेखक कर सकता है परन्तु उसकी प्रमलियत की कसौटी है। यदि सधप्रेष्ठ वे गुण लेखक की कृतियों में हैं तो लिखते लिखते समय के साथ और भी उन्नत रूप में वे हमारे सम्मुख

भायेंगे, भयया ये धीरे धीरे गायब हो जायेंगे उस पर कृत्रिमता का प्रायरण रहेगा या विकृत रूप में वे सम्मुख आवेंगे।

पत जी ने अपनी रचनाओं में निहित सत्य की जो बात जिस रूप में प्रस्तुत की उसका विकसित रूप हमें उनकी '४६ से ५६' की कविताओं में भी मिलता है। स्वयं लेखक के शब्दों में—

“यदि मैं सक्षेप में कहूँ तो पिछले दशक की मेरी समस्त रचनाओं में परिस्थितियों के सत्य के ऊपर मानव चेतना के सत्य को प्रतिष्ठित करने का प्राग्रह है। जीवन चेतना प्रणतरीक पशुओं के घरातल पर परिस्थितियों के अनुरूप बन्नी है। किंतु मनुष्य के अर्ध रीढ़ स्तर पर उसने परिस्थितियों को बदल कर उनका अपनी आवश्यकता के अनुरूप निर्माण किया है और उन पर मानव चेतना की छाप लगाई है।”<sup>1</sup>

तुलसीदास जी के पूर्व की घटना की यादों करते हुए अनुसंधान ने उसमें निहित सत्य पर अधिक ध्यान रखा है।<sup>2</sup>

तथ्य— 'पत्नी के मायके चले जाने पर तुलसीदास जी का शव को नाक समझ कर उस पर बैठ कर नदी पार करना तथा समुद्रगृह बंद देस कर लटकते हुए सप को रज्जु समझकर उससे सहारे भकाट में प्रवेश करना।

व्याख्या— 'शव और सप की कथा को प्रक्षरण सत्य मानने के लिए बहुत ही विश्वासी प्रकृति चाहिए। पर यह कथा चाहे सत्य न हो उससे तुलसीदास के स्त्री प्रेम के वेगवान उद्रेक की जो सूचना मिलती है वह अवश्य सत्य है और वही हमारे काम की है।

व्याख्या की सहायता में बाह्यसाक्ष्य और अनुमान—

बाह्यसाक्ष्य— मूलचरित में वैष्णोभाषवदास ने यह सब कथा न लिखकर केवल 'कोनिउ विधि सरि पाग कर' कह कर उन्हें समुद्रान के दरवाजे पर पहुँचा दिया है।

अनुमान—संभवतः उनके कृत गोसाईं चरित में यह कथा दी हो।

४ लेखक का संपूर्ण जीवन और कृतित्व—

यहाँ पर इसका पूरा विस्तार नहीं किया जा सकता यह तो एक पूरे प्रबंध का विषय है। इस लिए मोटी रूपरेखा में संक्षिप्त विवरण ही दिया जाता है जो तथ्यसंकलन और तथ्याख्यान का सार है।

1 गिला और दान, सुमित्रा नदन पत पृ० २६५

2 गोस्वामी तुलसीदास और पीताम्बररत्न बडवाल, पृ० ४०

### ३. लेखक के जीवन की एक घटना—

प० प्रताप नारायण मिश्र के जीवन और साहित्य का अनुसंधान करने पर जो कुछ उपलब्ध हुआ वह इस प्रकार है<sup>१</sup>—

#### प्रथम खण्ड

जीवनी—जन्म नामकरण वगैरह, वरुण गोत्र जन्मभूमि, निवाम-स्थान बाल्यकाल, शिक्षा गृहस्थ जीवन कायस्थेय साहित्यिक जीवन राजनीतिक जीवन, सामाजिक जीवन ।

व्यक्तित्व—स्वाभिमानो स्पष्टवादी सहृदय सत्यप्रती अहिंसा प्रेमी निर्लोभी स्वावपम्बो प्रेमोपासक गुणप्राहृन् वितोन्प्रिय कुशल-वक्ता ।

लेखक का जीवनोद्देश्य, रूग्णावस्था, स्वर्गारोहण और परिवार मित्रमण्डली । तत्कालीन परिस्थितियाँ—राजनीति, समाज धर्म साहित्य और उन सबका मिश्रजी पर प्रभाव ।

कृतियों का विवरण—मौलिक, अनुदित, सदिग्ध ।

#### द्वितीय खण्ड

समीक्षा—मिश्र जी की कविता युगीन पृष्ठभूमि विचारों में स्वच्छन्दता (भाव, भाषा छन्द) ।

मिश्र जी का दृष्टिकोण—

विषय त्रिवेचन—वीर, भक्ति शृंगार । आधुनिक काव्य ढाली दश प्रेम हास्य योग, प्रकृति वस्तुन ।

रस निरूपण—शृंगार के सयोग वियोग दो पक्ष होते हैं । दोनों में मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएँ की हैं । सयोग का उदाहरण,

पाय परों कर छोड़ द ब्रजराज दुलारे ।

ध्रुवत जात लखैगो कोई मारग मे मति लाज लै ब्रजराज दुलारे ॥

हौं तो लाल मदा तेरी हौं होन्हि को कछु नेग रे ब्रजराज दुलारे ।

गारी वक्त कहा रस विकसै सखि न जात इकत पै ब्रजराज दुलारे ॥

परब मनाय मकै सब सो सब दुरिदु सों रग डारि के ब्रजराज दुलारे ।

प्रेमनाम ऐमी क्यो कीज बुरी लगी जो का ह्व ब्रजराज दुलारे ॥<sup>२</sup>

1 प० प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य

2 डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल अक्षर आहारण, खण्ड ७, सख्या ८, होरी



वियोग में एक प्रेमी के हृदयोंगार यहाँ दृश्य हैं—

कल पावे न प्रान तुम्हें प्रिन देने इन्हें अघिकी बलपाइये ना ।  
 प्रतापनारायणजू के निहारे विरीति प्रथा विसराइये ना ॥  
 अहो प्यारे बिचारे दुखादिन पै इतनी निठुराईं जताइये ना ॥  
 करि एक ही गाँव में बाग हुआ मुख देखि बै को तरमाइये ना ॥  
 नाटक, निबंध, पत्रकारिता अथ स्पूट साहित्य ।

इस ग्रंथ में तथ्य सफल बड़े परिश्रम के साथ हुआ है । तथ्यारयान में निहित तथ्यो का अनुसंधान और व्याख्या विस्तार से और सूक्ष्मता से जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाया है । समीक्षा का पक्ष इतना विगल है कि उसके लिये एक स्वतंत्र प्रबंध आवश्यक है और यहाँ अनुसंधान आवश्यक है और यहाँ अनुसंधाता ने विहित और निहित सब तथ्यो को अपने प्रबंध में स्थान दिया है ।

५ लेखक द्वारा अपने संपूर्ण कृतित्व की व्याख्या—

श्री सुमित्रानन्दन पंत ने गल्प और दान के द्वितीय खंड में अपने साहित्य के सदर्भ में, अपने व्यक्तित्व का आकलन करने की चेष्टा की है । ये लेख पाठक के लिए उपयोगी हैं । इन लेखों के नाम हैं—

‘मैं और मेरी कला’ आज की कविता और मैं, ‘यदि मैं कामायनी लिखता, पुस्तकें जिनसे मैंने सीखा ‘जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण मेरी पहली कविता’ मेरी सबप्रथम रचना’ मेरी सबसे प्रिय रचना’ मैं और मेरी रचना गुजन’ मैंने कविता लिखना कैसे प्रारम्भ किया’ मेरी कविता का परिचय मेरी दृष्टि में नदी कविता मेरी साहित्यिक मायताएँ मेरी सबप्रथम पुस्तक’ मेरी मनोकामना का भारत’ जीवन के अनुभव और उपलक्ष्य का क्या भूलूँ क्या याद करूँ ।

इन लेखों में लेखक का भाव जगत साहित्य विषयक मायनाएँ और साहित्य का प्रेरणा स्रोत तथा कृतित्व विषयक अनेक तथ्य बिचरे पड़े हैं । इनका सफल और व्याख्या किसी भी अनुसंधाता के लिए अत्यन्त सरल कार्य है क्योंकि वे सीधे सत्य को प्राप्त करते हैं । इनमें अनुमान के लिए कम अवकाश है और घट साध्य का स्वरूप होने के कारण प्रामाणिकता में सदेह को गायद ही स्थान देना पड़े ।

६ लेखक का दृष्टिकोण

जीवन प्रसंग को तथ्य रूप में ग्रहण कर उसके आधार पर लेखक के उपयाम में व्यक्त दृष्टिकोण का अनुसंधाता ने परिचय किया है— बाजपेयी जी के उपयाम

गर को विशिष्ट मानव चरित्रों से प्रेरणा मिली है। इस प्रसंग में गांधी जी का नाम लिया जा सकता है। जीवन का दृष्टिकोण आदर्शवादी होने के कारण आदर्शवादी व्यक्तियों का प्रभाव लेखनी पर पड़ता स्वभाविक है। इस दिशा में असाधारण मानते हुए प्रवृत्ति के माध्यम से पात्रों की भी रचना की गयी है। जीवन सौख्य के समस्त साधना से परिपूर्ण व्यक्ति का जीवन बाजपेयी जी की दृष्टि से साधक है। जो व्यक्ति अपने गृहस्थ जीवन के संचालन में कुशल सिद्धहस्त नहीं होता उस वे आदर्शहीन मानते हैं। इसी कारण उनके उपन्यासों में आदर्शों का अनुसंधान है।<sup>1</sup>

### ७ लेखक का आकषक व्यक्तित्व

अनुसंधाता ने प्रबंध में अपनी बात लिखते हुए लेखक के व्यक्तित्व को समझने में उपयोगी सामाजिक सिद्धांत की ओर भी संकेत किया है— 'वस्तु, शिल्प, चरित्र आदि का विवेचन करने में कृतिकार के कथनों का सहारा लिया गया है। यथाथ और आदर्श के साथ जीवन दान देना भी मैंने उचित समझा है क्योंकि इससे लेखक के व्यक्तित्व का पता चलता है और जिस लेखक का जीवन समय की शिला पर सघपण द्वारा माँजा गया हो उसके व्यक्तित्व का आकषण आग्रहपूर्वक अपनी व्याख्या करवा लेता है। यही बात बाजपेयी जी के पात्रों के सम्बन्धों में हुई है।'<sup>2</sup>

### ८ लेखक का बहिर्मुखी व्यक्तित्व—

साहित्य के इतिहास के एक प्रबंध में तथ्य द्वारा प्रतापनारायण मिश्र के बहिर्मुखी व्यक्तित्व का अनुसंधाता ने परिषय देते हुए लिखा है— 'मिश्र जी के निबंधों से हमें उनके सामाजिक धार्मिक राजनीतिक, विचारों का परिषय भी प्राप्त होता है। उनके विचारों में भट्ट जी के विचारों की भाँति धर्मशान्तिता और शिथिलता नहीं मिलती। वे सामाजिक ऋणों की परवाह नहीं करते थे और विधि निषेध के बाधल नहीं थे। मनातनधर्मों हाने हुए भी वे धर्मांध नहीं थे। वे विरोधी धर्मों से घणा नहीं करते थे यहाँ तक कि वे आर्यसमाज, ब्रह्म समाज धर्मसमाज देव समाज आदि सब समाजों में चले जाते थे। अंगरेजी गिनितों की उच्छलता देखकर उन्हें धार्मिक पीडा होती थी।'<sup>3</sup>

1 उपन्यासकार भगवतीप्रसाद बाजपेयी शिल्प और चिंतन, डॉ० ललित गुबल पृ० ६

2 वही, पृ० ९

3 आधुनिक हिन्दी साहित्य (सम १८५०-१९०० ई०) लक्ष्मी चाल वासुदेव, पृ० १५६-१६०

६ अन्तरंग चरित्र प्रधान उपन्यास के आधार पर अज्ञेय के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का परिचय—

यहाँ पर अन्तरंग चरित्र प्रधान उपन्यास की धारणा प्रस्तुत की जाती है जो तथ्य रूप में आगे लेखक के व्यक्तित्व में सहायक हो सकती है। नियम यह है कि लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचना के चरित्रों में प्रतिबिम्बित होता है। अन्तर्लौकिक सूक्ष्म रेखाओं का अकन वहिमुख्य व्यक्तित्व वाला लेखक उतनी सफलता से नहीं कर पाता। जितनी सफलता से अन्तर्मुख्य व्यक्तित्ववाला करता है। यथा

‘जिन उपन्यासों में पात्रों के व्यक्त भाचरणा की कारण भूत मूल प्रेरणाओं की खोज बाह्य परिस्थिति में नहीं उनके अन्तर्जीवन में की जाती है उसे अन्तरंग चरित्र प्रधान उपन्यास कहा जाता है। यहाँ पात्रों के बाह्य क्रिया प्रतिक्रिया के व्यक्त यथाथ के स्थान पर उनके अन्तर्लौकिक के अत्यन्त यथाथ को महत्त्व दिया जाना है। उनके दृष्टिगोचर वास्तविक जीवन का नहीं उस जीवन की संचालक मानसिक शक्तियों का उदघाटन किया जाता है। यहाँ ‘यक्ति और ‘यक्ति के माध्यम या ‘यक्ति और समाज के मध्य सघष की अपेक्षा व्यक्ति का अपने आप से अपने भीतर के बहु मुखी व्यक्तित्वों में सघष मिलना है—ये बाह्य सघष प्रधान नहीं अन्तर् सघष प्रधान उपन्यास होते हैं। जस शेखर एक जीवनी।’<sup>1</sup>

१० लेखक का व्यक्तित्व विश्लेषण—

इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में लेखक की कृतियों के आधार पर गुण लोप का विवेचन ऐसी गती में किया जाना है कि उसके द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का विश्लेषण हो जाता है। यथा

अनुसंधाना न अयं धारणायां से तथ्य सकलन किया<sup>2</sup> और निष्कप रूप में संस्कृत गुलाबराय के व्यक्तित्व की याग्या की—व अपनी समीक्षा से युग को गति दे सके हैं युग विधान की शक्ति उनमें नहीं तत्वा वश की योग्यता उनमें भरपूर है किन्तु ममस्पर्शी समीक्षक की दिव्य दृष्टि का अभाव खटकता है। प्रतिपाद्य वस्तु का विशाल विवेचन मटीक वगुन और सोपानहरण अकलन वे कर सकते हैं किन्तु मौलिक चिन्तन का गाम्भीर्य उनमें नहीं मिलता। स्वच्छता सुबोधता और स्पष्टता उनकी

1 अज्ञेय उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुग द० २५

2 समीक्षात्मक निबंध गुलाबराय की समीक्षा पद्धति के विधायक तत्त्व डा० स्नातक १०६ और द्वि १ भाहित्य का इतिहास भा० रामचंद्र शुक्ल स० २००६ दि० पृ० ५०६

अभिध्यजना के विधायक तत्त्व हैं, किंतु दीप्ति, कांति प्रसरता प्रभायोत्पादकता उसमें रही आती।<sup>1</sup>

### ११ सामञ्जस्यप्रेमी व्यक्तिरत्न —

स्वस्य व्यक्तिरत्न इतना व्यापक और मन्त्रधरेमी होता है कि उसकी रचना में बाहर भीतर का भेद नहीं रहना मन्थता और सस्कृति चरित्र और व्यक्तिरत्न में एकत्व का दशन होता है। जगत्कर प्रसाद इस विषय में उल्लेखनीय हैं —

भावप्रवीण प्रसाद ने प्रकृति के विराट् पक्ष में जिस सौन्दर्य की अनुभूति की वह न तो बाह्य या घस्तुगत था और न केवल आंतरिक या भावात्मक। प्रसाद की रागात्मक प्रवृत्ति ने बाह्यभ्यांतर सौन्दर्य का साममञ्जस्य करके मानव और प्रकृति के मध्य उपस्थित व्यवधानों का निवारण कर दिया।<sup>2</sup>

### १२ विषय और विषयी की एकता —

साहित्य रसास्वादन की अतिम परिणति लेखक और पाठक-उभय पक्ष में विषय और विषयी की एकता है। म एक्यानुभव में निहित आनन्द को ब्रह्मानन्द महोत्सव का व्यानन्द कहा गया है। पाठक यह आनन्दानुभूति करता है कि नहीं करता है इस पर विवाद हो सकता है परन्तु लेखक के लिए प्रश्न नहीं हो सकता। बौद्धिक चमत्कृति और कल्पनाजय आनन्द की स्थिति में भी रसास्वादन पर प्रश्नचिह्न लग सकता है परन्तु जहाँ रसनिष्पत्ति मागोपाग होती है वहाँ लेखक के साथ पाठक भी रसानुभूति करता है। उदाहरणस्वरूप मीरा की कविता में विषय विषयी की एकता के पर्याय रूप में हम रसानुभूति की अत्यन्त उत्कट अवस्था मिलती है। अनुसंधान में इस तथ्य को उपलब्ध किया और उद्धरण सहित व्याख्या की—<sup>3</sup>

तथ्य— मीरा के पदों में भगवान् श्री कृष्ण की अनन्य भक्त व्रजगोपिया की भगवान् के प्रति प्रणय लीलाया का बहुत सुन्दर वरण मिलता है।"

व्याख्या मीरा की भाँति व्रजगोपियों भी भगवान् के जादू कर देने वाले सुन्दर रूप पर अतिशय मुग्ध हैं। इसीलिए तो दधि देवने जाकर गोपियाँ दधि का नाम भी भूल जाती हैं और श्यामसुन्दर की ही रट लगाती जाती हैं

1 निबन्धकार गुणावराय, देवेन्द्रकुमार जन, पृ० ६६

2 प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डा० अरुणती, पृ० ६२७

3 मीराबाई, डा० श्री कृष्णलाल पृ० १४१ १४२

या भ्रज में बधु बेश्यो री टोना (टेक)

ले मटुकी तिर थलो गुजरिया, भाये निलो म'द जो को छोता ।

बधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, से से री बोई स्वाम सलोना ॥

वि'द्रायन की कुज गलिन मे, भ्राँल लगाई गयो मोहना ॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सु'दर स्वाम सुधर रम सोता ॥<sup>1</sup>

उन गोपियों के लिए पूर भ्रजमडल म कवल एक ही पुरुष, मीराँ का गिरधर नागर, था और वं सभी उसके अप्रूप मोहन रूप पर मुग्ध थी और वह मनमोहन भी इन गोपियों से सभी प्रकार की लीलाएँ किया करता था । व गोपियाँ कभी तो अपने सहज नारी प्रवृत्ति के कारण उस मनमोहन से लज्जा करती है —

भावत मीरो गलियन मे गिरधारी, में तो छुप गई लाज की मारी ।

और कभी धूँट मनमोहन से प्रायना करती हूँ—

छाँडो लगर मीरी बहियाँ गहो ना ।

मे तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुफाल रहो ना ।

जो सुन मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मीरे प्राण हरो ना ।

ब'दावन की कुज गलिन मे, रात छोड अनरीत करो ना ॥<sup>2</sup>

और कभी अपनी प्रणय लालसा के कारण प्रतिगय घण्ट हो कर कह उठती है—

बन्तीबारे हो काहा मीरी रे गगरी उतार,

गगरी उतार मेरो तिलक समार ।

धमुना के तीरे नीरे धरसी लो मेह ।

छोटे से ब'हेया जो सो लागो म्हारो नह ॥

ब'दावन मे गउए चरावे तारे लियो गरवा को हार ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तोरे गई बलिहार ॥<sup>3</sup>

अथवा हात्ती के उच्छ्रखल और दिलज्ज वातावरण में स्वाभाविक स्पर्श से कहती है —

मारी खुनर भीजे, में रे मिजोऊगी पाग ।

नद महराज को कुँवर ब'हेया, जान न देऊँगी धाज

1 मीराँ पदावली पद सरया १७८

2 वही, पद १७३

निहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या

इस प्रकार ये गोपियाँ यमुना नदी के किनारे, पनघट पर गलियों में बन उपवन में बूम और कछार पर भगवान से प्रेमलीलाएँ करती रहती हैं। मीरा भी अपनी कल्पना में इन गोपियों में मिलकर अपने गिरघर नागर से सभी प्रकार की क्रीडाएँ करती है और भगवान को मयुरा गमन के पश्चात् गोपियों के विरह निवेदन में जैसे मीरा का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

भगवान के अगणित भक्तों में मधुर भाव की भक्ति करने वाली ब्रजगोपियाँ ही मीरा का आत्मा थी। लगभग सभी बातों में मीरा का उन गोपियों से साम्य था और बहुत संभव है कि ब्रजगोपियों के नाम से वे अपनी ही सुपुत्र प्रणयवासना और प्रेमलीलाओं का कल्पित चित्र उपस्थित कर रही हो भक्ति संप्रदायकी साक्षात्कारी में कहा जायगा कि मीरा की श्री कृष्ण गोपी की दिव्य सीमा में प्रवेग का अधिकार प्राप्त हो चुका था और वह अपने दिव्य पक्षियों से उनका साक्षात्कार कर चुकी थी। इन मधुर पदा में इतनी समयना और हादिकता भरी है कि जान पड़ता है कि मीरा स्वयं ब्रजगोपी हो कर भी ये सब प्रेम लीलाएँ कर चुकी हैं। एक एक पद में मीरा की प्रेम भक्ति साकार हो उठती है।

१३ साहित्य में एक लेखक वर्ग की एक सामान्य विशेषता—

तथ्य—<sup>१</sup> प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीति युक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उदगार सुनाते हैं ”

इस तथ्यकी व्याख्या के लिए व्याख्याता न उसके मूलकी खोज के सिलसिले में सम प्रेम की भी सोदाहरण चर्चा की है।

व्याख्या— प्रेम की यह विषमता उनमें कहा से आई? भारतीय काव्य-परम्परा में दश्य और श्रव्य काव्य को प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में एक सा दिखाया गया है। बाल्मीकि ने राम और सीता में कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला में, वाण ने चन्द्रापीड और वादम्बरी में सम प्रेम की प्रतिष्ठा की है। हिन्दी में विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा है पर सूरदास तक आते आते प्रेम में अपम्य का आरम्भ हो गया। सूरदास आदि कृष्ण भक्ति शाखा के आदिम कवियों में इस विषमता की विवक्ति अधिक नहीं हुई। श्रीकृष्ण को भी गोपियों के प्रेम में विफल दिखता नर समता की सुरक्षा बहुत कुछ नर ली गई। पर आगे के कवियों ने श्रीकृष्ण का मानस पक्ष उतना दिखलाया भी नहीं। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबन लगा। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में, जहाँ तक हृदय का सम्बन्ध है शृंगार काल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीति-

१ रत्नरत्नानि स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रस्तावना, पृ० १३

बद्ध रचना में विपन्नता का बड़ा बड़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छ धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा की पहुँच हुआ है। निदग्ध ही यह सूफ़ी कवियों का प्रभाव है। फारसी साहित्य में प्रेम का वयम्य स्वीकृत है और उद्भूत म उद्य परम्परा का निर्वाह आज तक हुआ रहा है। पिछले कठिने कृष्णभक्त कवि और स्वच्छ धारा के रीति युक्त कवि सूफ़ी सती और फारसी साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है।'

इस व्याख्या का परिणामन फिर एक तथ्य रूप में हुआ जिसकी व्याख्या भाग के पृष्ठों में की गई है। इस अनन्त उदाहरणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक तथ्य और व्याख्या भागों के बीच का क्रमिक साधन है और मत्स्योपलब्धि के बिंदु पर पहुँचने पर यह रूप स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो सकता है।

इसी प्रकार के सामान्य लक्षण को घटित करने वाली एक व्याख्या छायावाद और रहस्यवाद में दृष्टव्य है—

तथ्य—<sup>1</sup> कबीर तथा अन्य भक्त कवियों ने राम की बहुरिया बन कर अपने प्रेम भाव की यजना की है पर माधुर्यभाव की जमीन व्यजना प्राचीन काल में आज तक स्त्री भक्तों के द्वारा हुई है वैसे पुरुषों द्वारा नहीं।

उपयुक्त तथ्य का निरूपण एक अन्य तथ्य की व्याख्या है यह तथ्य है— हम स्पष्टतया यह सक्त है कि वर्तमान कवियों में संपूर्ण रहस्यवाद की भावना की व्यजना शुभ श्री महादेव जी में मिलती है। इसका कारण भी है।

पुनः हम देखते हैं कि यह भी पूर्व तथ्य की व्याख्या है और परवात् व्याख्या के लिए तथ्य है— इन कवियों के अतिरिक्त आज हम ऐसे भी रहस्यवादी कवियों का पता मिलता है जो रहस्यवाद की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों को अपनी साधना के स्वरूप अपने में सजाय है।

१४ साहित्य में विनयेय युग की विशेष प्रवृत्ति में उपलब्ध लक्षण—

तथ्य—<sup>2</sup> प्रगतिवादी रचनाओं में उपमान रूप में जो वस्तुएँ पाई जाती हैं उनमें—भी बहुत कुछ नवीनता दिखाई देती है।'

सिद्धांत— श्राव की प्रेपडीयता की दृष्टि से काव्य में अप्रस्तुत विधान का बहुत महत्व है।'

व्याख्या— साधारण बातचीत में भी लोग अप्रस्तुत का प्रयोग करते हैं। बात यह है कि मनुष्य कल्पनाशील प्राणी है अतः भावों को तीव्र करने के

1 श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ० ६३

2 श्री काव्य में प्रगतिवाद, विजयनगर मूल पृ० १३६ १५२

निए बहू अरुनी वपना शक्ति का सहाय प्राय लिया करता है। सच्चे कवि इन सब बातों का ध्यान रख कर ही उपमानों की योजना करता है।”

इसके बाद उल्लेख कर पुनः तथ्य दिया गया है— ‘प्रतिन्या के जास म और प्रयोगशीलता की उमंग म नई रचनाओं म अभी ऐसी अप्रस्तुत योजना कम हो पा रही है जिसम भाव भलीभाँति प्रकाशित हो सके।’

‘पाठ्या—इस विषय म पहली उल्लेखनीय बात यह है कि प्रगतिवाद छायावाद के विरोध म उठा था। अतः छायावादी अप्रस्तुत विधान की जगह उसन स्थान, मासल उपमान भी नाए और मुद्दर, विशेष और कामल की जगह कुरूप सामान्य और पुरूप रूप विधान भी किए। यद्यपि प्रगतिवादी ढंग की रचनाओं म भी यन-तन अप्रस्तुत उपमान मिल जात ह जम इन पवित्रता म—

सिनेमा के गीत-सा यह

वगबद्ध समाज

गूजते हैं शब्द जिनका

अर्थ केवल शब्द।’

पर आधिक्य मूल उपमानों का ही है।

ज्या ज्या नवीन वस्तुओं स हमारा परिचय होता जाता है और सान्निध्य बढ़ता है उनके लिए भी उपमान रूप म गहीत ज्ञान की सम्भावना बढ़ जाती है। काव्य के भीतर अप्रस्तुत रूपयोजना का क्षेत्र क्रमशः विस्तृत जाना ही चाहिए। रत्नगोदी, हवाई-अहाज विजली के लम्प कारखानों की चिमनी जमी न जान कितनी वस्तुएँ हमारे सामने आई हैं। पर अप्रस्तुत रूप म नई वस्तुओं का सामन लाने के पहले इस बात की पूरी परख कर लेनी चाहिए कि ये वस्तुएँ हमारे भावों को कहाँ तक उदबुद्ध करन म सहायक हो सकती ह। प्रगतिवादियों की प्रवृत्ति मुख्यतः वस्तुगत और यथाथवादी होने के कारण अनेक नए उपमानों का काव्य क्षेत्र म आगमन हुआ है। नए उपमान लाने म वहीं ता कविगण नवीनता लाने म ही अधिक दत्तचित्त दिग्गद्ग दत्त है और कही यथाथ भाव विन्यास पर भी दृष्टि रहती है।

#### १५ समसामयिक साहित्य—

अनुसंधान ने आधुनिक कहानी का स्वरूप तथ्य रूप म प्रस्तुत कर उनका आधार पर उनके लयवा के व्यक्तित्व की व्याख्या की है।<sup>१</sup>

सम्प—सबसे बेगी शिकायत यही है कि जाने क्या ओढ़ी हुई मानसिक कुण्ठा प्रस्तुतता प्रकल्पन, सकल और मदिरा के प्रति अतिरिक्त माह (१) और फलस्वरूप



उत्पन्न घुटन, विष्ट खलता और अनास्था का स्वर ही उनकी कहानियाँ में मुखरित होता है और बहुधा उनकी कहानियाँ बहुत ही प्रश्रियावादी बन जाती हैं।

व्याख्या— कहानीकारों ने, ऐसा प्रतीत होता है कि कामुकपन और साथ ही अंधता अज्ञान मान लिया है और उसी अनास्था और बुद्धि को भारतीय जीवन पद्धति के साथ असफल ढंग से सामाजिक विद्या कर विगित करने की चट्टा कर रहे हैं जिसे बहुत गुंभ नहीं कहा जा सकता।

“इन लेखकों में जीवन के प्रति निष्ठा नहीं है और न मानव सम्बन्धों के प्रति कोई मर्यादा का भाव। यह स्मरण रहे कि पीढ़ियों का सघन प्रत्यक्ष युग में होता है पर उसे आकाश, अमर्यादित एवं असंतुलित ढंग तथा अमगन भाषा में अभिव्यक्त करने को साहित्य में कभी चाहनीय नहीं समझा जा सकता। यह समझना होगा और प्रोद्धता को यह माँग भी है कि व्यक्ति और उसके सम्बन्धों का उदघाटन पूर्ण सहानुभूति एवं मानवीय संबन्धशीलता के साथ ही किया जाना चाहिए और यह एक ऐसी चीज है जिस किसी काल की आधुनिकता प्रभावित नहीं कर पाती।”

समसामयिक साहित्य में सदातिक व्याख्या का आधार रचनागत तथ्य है और परिणामतः सिद्धांत की स्थापना होती है जो भावी साहित्य के लिए मार्गदर्शन का काम करता है। साहित्य इसके द्वारा पुरातन जड़ता में छटकाए और नवीन प्रकाश की उपलब्धि पाता है।

### (ग) काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का साक्षात्कार और मौलिक उदभावना

काव्यशास्त्र के सिद्धांत साहित्यिक वृत्तियों में से उपलब्ध तथा क आधार पर विशिष्ट प्रतिभा वाले आचार्यों द्वारा स्थापित होते हैं। पर्याप्त कसौटी के बाद तथ्य सिद्धांत बनता है उस तथ्य की अपनी एक यवस्थित परंपरा होती है। फिर भी सब समय सब के द्वारा वह जो काव्य गहीत नहीं होता। उस पर मतभेद बन रहते हैं और मूल आचार्य द्वारा का गई स्थापना में परिवर्तन परिवर्द्धन भी होता रहता है। जैसे वामन का रीति संप्रदाय।

“साक्षात्कार न वामन के सिद्धांत की व्याख्या में उसके दृष्टिकोण से अपनी दृष्टि मिलाने का जो प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है। इस व्याख्या में पक्षपात या पूर्वाग्रह की छाया भी नहीं मिलती स्वस्थ तटस्थ भाषा का स्वरूप प्रकट होता है। सिद्धांत में अन्तर्हित सत्य की खोज ही अनुसंधान का उद्देश्य होने के कारण अज्ञान मण्डन महिन अनुकूल प्रतिबल मता में संगहीत तथ्य और व्याख्या का संकलन कर अपनी व्याख्या में उन्हें यथाचित स्थान देकर अंत में अपना निष्कर्ष दिया है। इस कारण सिद्धांत की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक विशद होती है।

तथ्य<sup>१</sup>—‘वामन न स्वतन्त्र रूप से काव्य का कोई नमण प्रस्तुत नहा किया, फिर भी उनके रीति विवेचा म काव्य-नक्षण की ध्वनि सुनाइ पडती है। इहान दण्टी के पदचिह्ना पर चलत हुए रीति का विवचन प्रस्तुत किया और कहा कि रीति ही काव्य की आत्मा है।’

व्याख्या—काव्य के स्वरूप पर विचार करत हुए उहान बताया कि ‘काव्य’ अलंकार के ही कारण ग्रहण करने योग्य है और सा दय ही अलंकार है। काव्य का यह सौन्दर्य दापा के त्याग एवं गुणा व ग्रहण करने स आता है। गुण एवं अलंकार स युक्त शब्दाथ को ही काव्य कहत है यद्यपि गौण वृत्ति व कारण मान शब्दाथ का कोई भेद ही काव्य की सत्ता द द।

यथा—

रीतिरात्मनास्य<sup>१</sup>। काव्य ग्रामह्यलंकारात्। सौन्दर्यमलंकार। काव्य गदोऽप्य गुणा लंकारसंस्कृतयो शब्दाथयोवतते भक्त्या तु शब्दाथमात्रवचनोऽत्र गह्यते ॥

—वाव्यालंकार सूत्रवृत्ति वामन (१।१।१, २३)

वामन न इम प्रकार का विवेचन प्रस्तुत कर परवर्ती आचार्यों का मागप्रदर्शन किया है। इहान मात्र शब्द एवं अथ का का य न मान कर दाप त्याग एवं गुण तथा अलंकार ग्रहण को ही का य स्वीकार किया है। इम प्रकार इनकी परिभाषा अग्नि पुराण भाज एवं मम्मट प्रभृति आचार्यों क लिए उपजीव्य सिद्ध हुई। इम परिभाषा के अतिरिक्त वामन ने गुणा एवं अलंकारा म भिन्नता बताया हुए उनके महत्त्व का प्रतिष्ठापित किया है। उनके यह विवचन भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास म एक प्रकाश स्तम्भ है। उनके अनुसार गुण काव्य शोभा के वर्ता धम हैं एवं अलंकार उस शोभा को अतिशयित करनेवाल हैं। वे गुण का काव्य का अनिवाय तत्त्व एवं अलंकार को अनित्य धम मानत ह। काव्य क लिए गुण की उपस्थिति आवश्यक है, वह काव्य का नित्य धम है और अलंकारा का रहना आवश्यक नहीं है।

यथा—

‘वाच्यतोभयस्य वर्तारो धर्मा गुणा।  
तदतिगयहेतवस्त्वलंकारा ॥’

वही, सूत्रवृत्ति (३।१।१ २)

१ भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, प्रा० राजवश सहाम ‘हीरा’, पृ० ७१०

निष्पत्त्य—इस प्रकार के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वामन ने अथ आचार्यों की अपेक्षा अपने मूल को अधिक पकड़ा है। वे सत्य के अधिक निष्पत्त हैं। अलवारों की अपेक्षा गुण तत्त्व को वाच्य म वास्तविक उपादेय ठहराकर उद्धान वाच्य चिन्तन को आमह-दण्डी से बहुत आगे पिसका लिया था (रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २५)।

### उद्धरण—

ये खलु वाच्यशोभा कुर्वति, ते गुणा ने धोज प्रसादादय ।  
न यमकोपमादाय । कबल्यन तेषामवाध्य गोभाकरत्वात् ।  
धोज प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति वाच्यगोभाकरत्वम् ।

—वाच्यमालकार सूत्रवलि वामन (३।१।१)

### भिन्न भिन्न मतों का तुलनात्मक अध्ययन—

आगे अनुसंधान ने हिंदी के गण्यमान्य आचार्य के द्वारा सशोधन तथ्य, व्याख्या और मत दिये हैं—

(१) वामन के वाच्यस्वरूप विवेचन पर अपना मत देते हुए डा० नगेन्द्र ने चार तथ्य उपस्थित किये हैं—

तथ्य—(१) वामन शब्द और अथ दोनों का समान महत्त्व देते हैं। 'सहित' शब्द का प्रयोग न करते हुए भी वे दोनों के साहित्य को ही वाच्य का मूल अंग मानते हैं।

तथ्य—(२) दाप को व वाच्य के लिए अमह्य मानते हैं इसीलिए सौंदर्य का समावेश वरुण के लिए दोष का बहिष्कार पहला प्रतिबन्ध है।

तथ्य—(३) गुण वाच्य का नित्य धर्म है अशुद्ध उसकी स्थिति वाच्य के लिए अनिवार्य है।

तथ्य—(४) अलवार वाच्य का अनित्य धर्म है उसकी स्थिति वाच्य के लिए अनिवार्य नहीं है।

डा० नगेन्द्र द्वारा व्याख्या—वामन के वाच्य लक्षण पर अपना विचार प्रकट करते हुए पुनः डा० नगेन्द्र ने कहा है—वामन का वाच्य लक्षण उपयुक्त लक्षणा की अपेक्षा स्थूल है। गुण और अलवार म सुवन तथा दोष से रहित' शब्दावली तत्त्व

को शब्दबद्ध नहीं करती, क्याकि गुण और अक्षरकार के अतगत वामन ने काव्यगत सौंदर्य के विभिन्न रूपा का अन्तर्भूत कर, उन्हें एक प्रकार से सौंदर्य के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त किया है, अन्तर्भावकार ।

डा० मनेन्द्र का निष्कर्ष—अनएव वामन व लक्षण का गणित रूप यह हुआ—  
 'सुंदर (सौंदर्यमय) अन्तर्भाव काव्य है ।' और यह लक्षण गुरा नहीं है । परन्तु वामन ने कल्पित गुण और अक्षरकार का जान-बूझकर प्रयोग दर्शाया किया है कि उनका रीति सिद्धान्त मूलतः गुण और सामान्य अक्षरकार पर ही आधारित है । अनएव अपने विशिष्टय को व्यक्त करने के लिए उनका प्रयोग वामन के लिए अनिवाय हो गया है । फिर भी, कारण चाह कुछ भी रहा हो, यह लक्षण तात्त्विक न रह कर वणनात्मक हो गया है, अनएव लक्षण की दृष्टि से यह संवधा श्लाघ्य नहीं है ।'

वामन ने रीति का काव्य की आत्मा स्वीकार किया है—

'रीतिरात्मा काव्यस्य'—रीति से उनका तात्पर्य है, विशिष्ट पद रचना । 'विशिष्ट पद रचना रीति — विशिष्ट का अर्थ होता है गुणयुक्त— विशेषो गुणात्मा' । अतः रीति का अर्थ हुआ गुण से युक्त पद रचना ।

अतः वामन के मतानुसार गुणयुक्त पद रचना ही काव्य की आत्मा है ।

(२) साहित्यदपणकार विश्वनाथ ने वामन के रीतिवाद का खण्डन किया है ।

(३) इनके पूर्व अतिकार मान-द्वयधन भी रीत्यात्मवाद का खण्डन कर चुके थे । उनके अनुसार रीति का काव्य की आत्मा स्वीकार करना काव्य के आत्म-तत्त्व के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करना है ।

विश्वनाथ ने बतलाया कि रीति तो सघटना विशेष का ही नाम है । यह काव्य की आत्मा कभी भी नहीं हो सकता । उसका महत्त्व केवल काव्य पुरुष के अवयव संस्थान के रूप में ही है । इससे अधिक कुछ नहीं । यथा—

'यत्, धामननोश्तम— रीतिरात्मा काव्यस्य इति, तन्न रीते सघटना विशयत्वात् । सघटनायाश्चावयवसंस्थान रूपत्वात् आत्मनश्च तद्विभक्तत्वात् ।''

साहित्यदपणकार ने काव्य-पुरुष का वणन करते हुए रीति सिद्धान्त को गौण सिद्ध कर दिया या या कह कि उसकी जड़ ही काट दी । अतः वामन का रीतिवाद

परस्परों कापार्थ के लिए धानपन का विषय नहीं रह गया । यथा—

वाग्यस्य शरणापों शरीरस्य रसादिष्वप्यात्मा गुणः शीर्षादिषु बोधा  
वाग्यत्वादिषु रीतयोऽप्यवगमस्यापन धनशरणा वटकुन्दसादिषु १

(४) यामन की प्रशंसा क्या हुआ उ० व्याख्या । क्या है कि यामन के साथ ग्याय नहीं किया गया है । ये कहा है— यामन का नाम मां शी शीतिगामा वाध्यस्य—इस शब्द का स्मरण हो जाता है । यामन ग्यतिगामी है एसा कहकर धानुर्मन्था धन्यागवा । त्रिम प्रकाश भामह म धान्याय किया है उगी प्रकार यामन की शीति गत्यापों की गाण रचना मान है एसा कहकर उगात यामन से भी धान्याय किया है । यामन म वाध्य चर्चा व विभाग म यामन का ग्याय यदु ऊरा है शीत्य प्रीति ही वाण्य वा रहस्य है एसा यामन न कहा है । गुण तथा धनशरणा का स्पष्ट विवरण क्या हुआ उगात वाध्य चर्चा का यदु ही धान्य बढ़ाया । यामन का विवरण वाध्यशास्त्र म प्रतिम तदा यदु ता सत्य है । किन्तु य उगाये बहुत ही समीपवर्ती है इगम भी कोई म देत नहीं । वाग्य का सवात हल करने म ध धेवन धानिरी का म कुण्डिन हुआ है । १

इस प्रकार तथ्यानुमन्थात धीर तथ्याग्यात की सम्पूर्ण प्रतिया का सम्पान करने के बाद व्याख्याता का समधनयुक्त अभिप्राय है—‘ धान्यापों की परस्पर विरोधी धारणा के बीच भी यामन का स्यात वाध्यचितन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।’

विराधी मता व रहत भी व्याख्याता यामन विषयक अपने मन म दृढ है क्याकि विराधी मता की तरह समधन मन भी उपनय है । मानो अपने समधन को पुष्ट करने के लिए ही व्याख्याता ने पहले विराधी मता का उद्धरण दिया है और अत म मण्णनप्रधान अनुकूल मत लिया है । सिद्धांत व गण्णन मण्णन की यह शली है कि परस्पर विरोध की स्थिति म अनुम पाता दाता पक्षा के तथ्या का सवलन कर, अनुम धानपुनक उताम निहित सत्य की कसौटा करके अपना मत स्थिर कर । यदि वह स्थापित सिद्धांत व विरुद्ध अपना निणय घोषित करना चाहता है तो प्रथम अनुकूल समधन मता की चर्चा कर । बाद म विरोधी मता की चर्चा करके, उसके दल पर अपने मत की स्थापना कर जा अक्वाटम प्रतीत हाती हा । कभी परस्पर विराधी मता म सम वय स्थापित करना भी उसका कर्तव्य हो जाता है । तब वह तथ्य रूप म गुण लोपा का विभाग करके उनका यथाथ रूप म स्वीकार करे और रचनात्मक शली म अपना अतिम निणय निरूपित करे ।

१ साहित्यदपण, प्रथम परिच्छेद, चौखम्भा, पृ० २६

२ भारतीय साहित्यशास्त्र हिंदी अनुवाद, पृ० १०६

शास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना—मौलिक उद्भावना साहित्यिक आलाचना के दीर्घकालीन अनुभव का परिणाम है। साहित्य के बदलते प्रवाहों में मूलभूत तत्त्व की उपलब्धि प्राचीन सिद्धांतों का संशोधन कर लिये रूप में सिद्धांत की स्थापना में लक्षित होती है। 'उद्वेग रस' की स्थापना इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। सामान्य रूप से उद्वेग एक संचारी भाव है, परन्तु किन कारणों से उसे शास्त्रीय मायनानुसार स्थायी भाव-विज्ञान की परिपक्वता से 'रस-संज्ञा' प्राप्त होती है इसकी सद्धान्तिक एवं व्यावहारिक, उदाहरणों के साथ की गई मीमांसा से यह बात स्पष्ट हो जायगी।'

निहित तथ्यों के अनुसंधान की कोई सीमा नहीं। इस प्रकरण में इस विज्ञान में मात्र निर्देश ही किया गया है। ये विषय सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हात जाते हैं और मात्र कवि ही नहीं, आलोचक का भी अनुभव हो सकता है कि 'काव्यान्तर्गत ब्रह्मानन्द सहोदर' है।

## साहित्य में स्रोत | ४

### स्रोत का स्वरूप

साहित्य जीवन के अनुभवों की गरम अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति का मूल स्रोत जीवन और जगत माना है। सारा व्यक्तित्व रूप से इन विविध प्रभाव और प्रेरणा के स्रोत से मुक्त होता ही नहीं। इन स्रोतों का व्यवस्थित रूप में लिया हुआ गवेषणात्मक अध्ययन करने मात्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उत्तम विषय है। मुख्यतः लेखक की रचना का मूल आधार, प्रेरणा, गृह्यतत्त्व सामग्री अनुभव के रूप में पढ़नेवाला प्रभाव, उसकी प्रतिभा का निर्माण में क्रियाशील विभिन्न शक्तियाँ—इन सबकी सज्ज होकर ही अध्ययन में नितांत अनिवार्य है।

इन लेखकों की सामूहिक देना साहित्य के इतिहास को एक विशिष्ट रूप देती है। इस सामूहिक शक्ति का प्रभाव से समय की दृष्टि से उत्तम प्राचीन परम्पराओं का ग्रहण और त्याग तथा नई परम्पराओं का उदय भी लक्षित होता है। जीवन चतुर से प्रभावित होने के कारण अमुक भाषा साहित्य तक यह स्थिति सीमित नहीं रह सकती है और उससे प्रभावित होकर अपने स्वरूप का भी निर्माण करती है। सभी प्रभाव में गुणांतरकारी परिवर्तन लाती है तथा कवि या लेखक के व्यक्तित्व में नया मोड़ लाने की शक्ति भी देती गई है।

अमुक साहित्य पर पूर्व से प्रचलित बुद्धि मायताएँ बहावत मुहावर शब्द प्रयोग, विचार, नीति विषय, अभिव्यक्ति शैली छन्द आदि का काफी प्रभाव रहता है। अत्यन्त प्रचलित होने के कारण विद्वान् तो मूल स्रोतों का पता लगा लेते हैं,

परन्तु शिक्षित या अधशिक्षित भी लोक साहित्य की वक्ष्मा की रचनाओं के मूल स्रोतों का पता लगा लते हैं ।

हिन्दी साहित्य में युग की प्रधान प्रवृत्तियों तथा व्यक्तिगत रूप से लेखकों की रचनाओं में स्रोत विषयक एसे अनेक लक्षणाओं को हम देख सकते हैं । प्रथम हिन्दी साहित्य का इतिहास और बाद में व्यक्ति का लेकर ज्ञान की चर्चा की जायगी ।

## [१] हिन्दी साहित्य का इतिहास

भाषा तथा साहित्य का इतिहास बताता है कि हिन्दी भाषा तथा साहित्य का उद्भव अपभ्रंश भाषा तथा साहित्य से हुआ है ।

(क) अपभ्रंश साहित्य—पाँच दृष्टियों से अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन करने पर स्रोत विषयक तथ्या का अनुसंधान हिन्दी साहित्य के उद्भव पर प्रकाश डालना है—

- १ विषय ।
- २ पद रचनात्मक संघटना और ध्वनियाँ ।
- ३ वाक्य धारा ।
- ४ अभिव्यञ्जना शली
- ५ छन्द ।

### १ विषय—

विषय की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य में तीन परम्पराएँ मिलती हैं—

- १ जन पौराणिक विषय ।
- २ शृंगार तथा वीर रस के भावार्थक चित्र ।
- ३ आध्यात्मिक या रहस्यवादी परम्परा ।

परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये सारी परम्पराएँ ज्या-जी-त्या नहीं आ पाई हैं । इतिहास का अनुसंधानात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्या की उपलब्धि हुई—

१ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य की पीठिका—  
—काशी भा० प्र०, ग०, म० २०१३ वि०, पृ० ३५७



प्रथम परम्परा हिन्दी साहित्य में नहीं मिलती, अन्य दो बहुत पुष्ट रूप में उपलब्ध होती हैं। जन पौराणिक विषय हिन्दी साहित्य में गहीत न हो सकने के पक्ष में तीन तथ्यों का आविष्कार हुआ—

(१) बाद के जन कवियों ने परिनिष्ठित अथभ्रम में ही काव्य रचना करत रहना अपना आदर्श समझा, क्योंकि अथभ्रम उनके लिए धार्मिक और पूज्य भाषा थी और हिन्दी में पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की रचना करना उन्होंने ठीक नहीं समझा।

(२) हिन्दी का विकास भविष्यकालीन आन्दोलन से अधिक प्रभावित रहा है, जो ब्राह्मण धर्म का आन्दोलन था और जिसका जन कवियों पर प्रभाव नहीं पडा।

(३) हिन्दी के राज कवियों, सूफ़ी और सगुण भक्ता न भी इस परम्परा को नहीं अपनाया।

## २. पद रचनात्मक सघटना और ध्वनियाँ—

हिन्दी की पद रचनात्मक सघटना और ध्वनियाँ अथभ्रम का साक्षात् विकास हैं।<sup>१</sup>

## ३. काव्य धारा—

अथभ्रम की दो धाराएँ हिन्दी में पाईं—

(१) राजमूर्ति ऐहिकतामूलक शृंगारी काव्य, नीतिनिषेधक पुष्टकर काव्य और लोक प्रचलित कथानक पश्चिमी अथभ्रम में हिन्दी में आये।

(२) पूर्वी अथभ्रम में निर्गणियाँ शान्ति की शास्त्र निरपेक्ष उग्र विचारधारा का पुष्टकर अन्तर्गत महज मूल्य की माधना माग पद्धति और भक्तिमूलक रचनाएँ आये।

## ४. अभिव्यक्तता शैली—

हिन्दी में अथभ्रम की अभिव्यक्तता शैली आई।<sup>२</sup> भूमि साहज-वधाया में

१ हिन्दी साहित्य का बहुरूप निहाय प्रथम भाग हिन्दी साहित्य की परिभाषा—

बागी ना० २० म० म० २०१७ दि० प० ३६३

२ वही प० ६११

३ वही प० ३२८

‘नेमिपाहचरित’, ‘करकडुचरित’ तथा ‘भविसयत्तवहा’ में व्यवहृत कथानक रुढ़ियाँ, यथा—चित्रदणन या गुणध्वज से प्रणयोत्पाद तथा सुवधु की वासवदत्ता और बाण की कादम्बरी से सुखवाली कथानक रूढ़ि उत्तर आईं। पथ्वीराज रासो और जायसी में इन रुढ़ियाँ का प्रयोग मिलता है।

## ५ छंद—

अपभ्रंश का निजी छंद दोहा है। उसमें चौपाय का कडवक बनाकर दाहे का घंटा दिया जाता था। हिंदी के दोना मारुंग दूहा, ‘रामचरित मानस तथा अन्य सूफी प्रबंधों में इसका प्रयोग मिलता है। साहित्य में पदा का प्रयोग सर्वप्रथम बौद्ध भिक्षु द्वारा हुआ। जयदेव के ‘गीतगोविंद’ पर हिंदी बंगला के भक्तकवि विश्वामित्र, चंडीदास और सूर पर इसका प्रभाव पड़ा। नाथ सिद्धों के माध्यम से कबीर पर यह प्रभाव पड़ा परंतु अपभ्रंश का पद्धत अदिवाली में है भक्तिकाल में नहीं है।<sup>१</sup>

(ख) रीति-काव्य—रीति काव्य के विषय और शैलीविषयक प्रेरणा स्रोत का प्रकाश में आता हुआ बताया गया है कि “रीतिकालीन साहित्य अपनी सामयिक परिस्थितियों तथा जीवन मूल्यों से अनुप्राणित होता हुआ भी वह अन्य परम्पराओं से प्रभावित हुआ है। जहाँ तक इसके साहित्यिक स्रोत का सम्बन्ध है, वह काफी प्राचीन और विकासमान रहा है।<sup>२</sup> इसकी काव्यशास्त्रीय परम्पराओं में लेखकों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्यशास्त्र तथा भक्ति के विविध सम्प्रदाय और कामशास्त्र की दीर्घ परम्परा को प्रमाणित कर दिखाया है।

(ग) आधुनिक युग विदेशी प्रभाव—हिंदी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का अनुसंधान करने पर जो महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश पाए, उनके आधार पर स्रोत की दृष्टि से तीन प्रकार के निम्ने गए—

१ अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिंदी भाषा और साहित्य।

२ अंग्रेजी प्रभाव का आगमन।

१ हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग, हिंदी साहित्य की पीठिका—  
काशी ना० प्र० सं० सं० २०१७ वि०, प० २५६

२ रीतिकालीन कविता की प्रेमध्वजा, डा० बच्चनसिंह, प० १८

३ हिंदी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव, डा० विश्वनाथ मिश्र

१ धधरी प्रभाव की विभिन्न धाराएँ—तीन मण्डल, मुराणीय पुत्रांतरण और उड़ीस गणराज्य । मुराणीय गणराज्य का कारण रूप में धनेक खोला का विचार किया गया । मुराणीय मण्डल कोट विधायक बनिज का काम ईसाई प्रचारक सामाजिक सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन, प्रेम, पत्र परिवारों और सामाजिक तथा साहित्यिक मण्डलों ।

भारत-दुसरीय साहित्य में साहित्य शोधकर्ता तबीनशाहा का मूल आता का पता मगर जात पर लक्ष्य त यथासा— आन्ध्रप्रदेश में पश्चिमी मण्डल के साथ मण्डल स्थापित है। म विभिन्न मुधारणाएँ तथा ध्यानात्मिक आन्दोलन शक्तिता की कठिनाई म धधुमधुन आदि रत्न आदि और सामाजिक रूप सामाजिक परिवर्तन रूप विचार पत्रमण्डल मुराणीय साहित्य और भाषा की विविधता भी परंपरा आदिक नवविचारमय हूँ ।<sup>१</sup>

भारत-दुसरीय उपयामा के कथा-रस का सम्यक् भी पारचाय सम्यक्ता म रहा । तत्कालीन उपयामा में उभय रूप इन विचार न धरयस धनुमधान का ध्यान आच्छिन्न किया है और उपयामा तथ्य का विवरण देत हुए उसने सिखा है— हनुमन्त सिंह के उपयामा में भी सामाजिक विवरण दिए गए हैं । गोपालराम महमरी न अपन उपयामा में भारतीय सांस्कृतिक जीवन और पारचाय सम्यक्ता के धानक प्रभावों की और पाठन का ध्यान किया है ।<sup>२</sup>

उपयामकार समाज के जीवन पर प्रभावा की राज करता है और उससे यथातथ्य रूप का चिन्तित करत के लिए उन प्रभावा को पात्र सवाद घटना, भाषा आदि द्वारा मूर्तिमान करता है । अनुसंधाना ऐसे उपयामा का अध्ययन करने पर उपलब्ध तथ्य का प्रकाश म लाता है और उपयामकार के दृष्टिकोण की ध्याख्या भी करता है । जस— ये उपयामकार जातीय गौरव का धन मान करत हैं । उह उच्च कुनादभव पात्रा की सम्बन्धिता और हिन्दू उतनामा के शक्ति पर गव है । लकिन साथ की सामाजिक कुसव्याग की तरफ म ये ध्यात धन कर सता जही चाहत । अपन और दूसरा के गुण-दाया पर उहोने समान रूप से दृष्टि डाली है । उनक पात्र मुगल कालीन शक्तिम मुराणीय के हैं । कल्पना के सम्मिश्रण के साथ साथ ऐतिहासिक तथ्य पर भी उहान ध्यान रता है ।<sup>३</sup>

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००), लक्ष्मीसागर वाण्येय, पृ० १०८

२ वही, पृ० २०६

३ वही, पृ० २०७

## समानान्तरता—

जब कोई प्रवृत्ति संपूर्ण युग या क्षेत्र को व्याप्त कर लेती है तब साहित्य के इतिहास में भी उसके समानांतर अन्य प्रवृत्ति का विकास हो जाता है। भारत-दुयुगीन नाटक और उपन्यास में इस प्रकार की समानान्तरता देखने में आती है। 'हिन्दी के नाटक और उपन्यास इसी नवोत्थान काल की हैं। यद्यपि नाटक का जन्म उपन्यास से पहले हुआ, तो भी दोनों की विचार धाराओं का प्रवाह लगभग समानान्तर है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की समस्याएँ विषय-परिस्थितियों द्वारा ही उनके स्वरूप का निर्माण हुआ।'<sup>१</sup>

हिन्दी लघुकथा और वृजभाषा का अनुसंधान प्रमाणित करता है कि दोनों भाषाएँ समान रूप में प्राचीन हैं— लघु वृज जितनी ही प्राचीन है। अमीर खुसरो के पद्य लघुकथा में प्रथम रचनाएँ हैं। लघु गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ। 'बदलते बदलते की महिमा कवि गद्य की गद्य की पुस्तक लघुकथा की पहली पुस्तक है। रामप्रसाद, निरजनी जो तत्कालीन सवासठ वर्ष पूर्व स० १७८८ में हुए, उन्होंने लघुकथा की गद्य में योगदान किया था।'<sup>२</sup>

इस प्रसंग में भाषा की प्राचीनता में समानान्तरता रहते हुए भी विकास की स्थितियों में भेद देखने में आता है। भाषा, विचार, प्रवृत्ति या अन्य किसी भी विषय में समानान्तरता के लक्षण कभी स्थायी नहीं हो सकते वे सामाजिक प्रभावों से सांस्कृतिक स्वरूप के होते हैं।

अतः के अध्ययन से भविष्य में साहित्य का क्या रूप होगा तथा प्राचीन में क्या छूटेगा और नवीन रूप किम प्रकार का होगा इसका अनुमान भी वर्तमान रूप से लगाया जाता है। अनुमान की पना तत्कालीन साहित्यी दृष्टि उन मशकत सवातक गति बीजा का प्रकाश में ले आती है। यथा—'प्राचीन काव्य व आदर्शों और भाषा की गतिविधियों का परिचय सर्वत्र अधिक आभ्यासक गीतियों में मिलता है। उनमें काव्य की पूर्वप्रवृत्ति मन्त्री का तनिक भी आभास नहीं मिलता वरन् उनमें भाषा काव्यादर्शों की पूर्वछाया-भी मिलती है। वे काव्य के नूतन युग की शुरुआत हैं। जैसे लाला जगदानन्द का 'बीर प्रताप रीतिबानी काव्य परम्परा और आदर्श,

१ प्राथमिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) लक्ष्मीनारायण वाण्येय, पृ० २०१

२ हिन्दी गद्य के निर्माता, प० बालकृष्ण भट्ट (जीवन और साहित्य), राजेंद्रप्रसाद शर्मा, पृ० ३

भाषा और छन्द रूप और गीती से बिलकुल विपरीत है फिर भी उसका साहित्यिक गौरव कम नहीं है।”

## [२] व्यक्ति

व्यक्तिगत रूप से साहित्यकार की रूढ़िवादी मूल मान्यता का पता लगाने पर विवक्षित होता है कि वह साधना प्रकार का है। उस जातकारों के लिए उसका पूरवर्ती और समकालीन साहित्यकारों का परिचय अपेक्षित है। कभी कभी लेखक स्वयं अपने साहित्य योना का उत्पन्न या व्याख्या द्वारा निर्देश कर देता है। एमी स्थिति में अनुगमना का काम करना आ जाता है अथवा अनुमान का अधिक उपयोग करना पड़ता है। फिर भी उक्त द्वारा निर्दिष्ट मान का सम्मीलनापूर्वक अध्ययन करके उस पर अंतिम निर्णय देने का उत्तरदायित्व अनुगमना पर है। उक्त की बात बिना सम्मेलन विचार और पर्याप्त प्रमाण के बिना “या की त्या मान देना अनुगमना के विपरीत है। कभी लेखक की भावना में सत्यता का महत्त्व हीन हुए भी उसकी रचना में उसका प्रभाव लक्षित न जाता है तो उस रचना के साथ उस योना का सम्बन्ध न जाटना चाहिए। सम्भव है, उसकी एक रचना का उस विशिष्ट स्रोत से सम्बन्ध ही सबका न हो। एमी सम्भावना भी रहती है। किसी किसी लेखक का प्रभाव ग्रहण करना पसन्द हो, परन्तु उसकी प्रणया में बाधा आने के डर से प्रभाव ग्रहण नहीं करता या प्रभाव आ गया हो तो उसे स्वीकार नहीं करता। कभी कभी प्रभाव परोक्ष होता है या गीधा प्रभाव होने पर भी याना में आश्चर्यजनक मात्र आ जाता है।

एमी स्थिति में इसका अध्ययन करने वाले अनुगमना के पास पर्याप्त जातकारी होना आवश्यक है जिससे वह एक के बदन दूसरे की स्थापना न करे। वह खुले मन का हो तो सत्य तक पहुँच सकता है। उसे जहाँ कुछ न हो वहाँ यथ ही बताने का लोभ न करना चाहिए। यदि उसे स्रोत के बारे में शक हो तो अपने कारणों को दर्शाते हुए उसकी सदिग्धता मिट्ट करनी चाहिए परन्तु जहाँ उस पूर्ण विश्वास के साथ उसका निश्चय हो जाय वहाँ जोरदार प्रमाणा के सहारे वह अपने पक्ष का समर्थन अवश्य करे।

समानता और समानता तरता के कारण अनेक प्रकार के दिक्कतों का उत्पन्न होता है। सादृश्यता के अर्थ में रूपान्तर चारी अपहर्ण अनुकरण और दोषारोपण की प्रवृत्ति बन्ती है।

### समानान्तरता और समानता

स्रोत का अनुमोचन करने पर कभी कभी समानान्तरता या समानता की प्रधानता लक्षित होती है। एक लेखक द्वारा किसी अन्य लेखक की कृति में संचारी या अपहरण की प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है। इस मौक़े पर सामान्यतः मन्वने 'नायक' मान यह है कि साहित्यिक अनुमोचन का विषय कोई भी कृति या लेखक नहीं होना। विशेष प्रतिभासम्पन्न कृति या कृतिकार में ही अनुमोचन का अवकाश रहता है। उस महान कृतिकार का अपहरण या चारी पग़द ही न होगी। प्रभाव या प्रेरणा के रूप में अध्ययन या अनुभव के रूप में किसी भी छोटे बड़े खात में उगवा सम्बन्ध हो सकता है।

इसलिए स्रोतानुमोचन में मात्र अपहरण या ग्रहण की प्रवृत्ति मुख्य नहीं है, लेखक की मौक्तिकता और उसका व्यक्तित्व का आबलन मुख्य है। जानकारी का अभाव में हम समानता या समानान्तरता के तथ्यात्मक स्वरूप का अनिश्चित महत्त्व देकर बुद्धिअनय भी कर बैठते हैं, जैसा कि—

(१) एक के बदल दूसरे का श्रेय देना।

(२) एक कृति की समानान्तर अन्य लेखक की कृतियों को उसकी सिद्ध कराना।

(३) लेखक की विशेष प्रतिभा से अज्ञात रहने का कारण उसे पूरा 'नायक' नहीं देना। वह तयार कथावस्तु का उपयोग करना है तब उसमें निहित विकास की सारी सम्भावनाओं को अपनी मम दृष्टि में देख लेता है और अपनी बुद्धि शक्ति का आधार पर उसे अनुमोचन बना देता है। किसी गद्य रचना को अद्भुत काव्य रचना में परिवर्तित करने की सामर्थ्य का न देख कर उसे अपहरण बताना उसके प्रति बहुत बड़ा अन्याय है।

इन बातों का पूरा महत्त्व रहते हुए भी प्रथम लेखक के कथा निर्माण और शिल्पावेशन तथा मूल्य और कल्पना मृष्टि का श्रेय दूसरे को नहीं उसी को मिलना। आगे दूसरे के द्वारा उमम जितना और जुड़ेगा उतने श्रेय का ही वह अधिकारी माना जायगा। जैसे—प्रमादजी ने 'कामायनी' में कथा और दार्शनिक सिद्धांतों की पुराण और दशन से ग्रहण किया, फिर भी उसमें चरित्र चित्रण रचनाकौशल, कल्पना और दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या तथा मानव के विकास का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

उनकी अपनी स्तन है जिसमें यह महाकाव्य विस्मयित्वात् हा गया और मौलिक हो  
बहनायगा ।

सादृश्यता —

रूपांतर — लगभग अथ लगभग न विचार भाव या कल्पना को अपनी वृत्ति  
के लिए उपयोगी समझकर उनका अपनाता है परन्तु उगरी तथा अपनी बन्धुता  
है । यदि रूपांतरकार गिद्धहस्त न हा ता भूत मौल्य की धति होती है और उसमें  
विवृति आ जाती है । चारी और अपहरण में मिनता जुनता हात पर भी उमम स्पष्ट  
ही मूल्य भेद होता है । जस अठार विषय के गिद्धहस्त कवि बिहारी और भवन  
शिरामणि मुरदास के खण्डिता के विषय में हम सादृश्यता उचित हाती है

तहद जाहू जह रनि यसे ।

अरगज गध मरगजी माता बसन सुगध भने से हैं ।

बाजर अघर कपोलनि चदन लोचन अरन ढरे से हैं ।

— मुरदास

पलक पीक, अजन अघर लसत महाघर भाल ।

भानु मिले सु भली बरी भले धने हो लाल ॥

— बिहारी

अनुमघाता का कथन — बिहारी ने मूर की रचना में थोड़ा परिवर्तन कर  
दिया है ।<sup>१</sup> अर्थात् यह अपहरण का प्रमाण है । मूर उनका पूर्ववर्ती होने से इस  
स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इतना प्रमाण से नहीं कल्पना या अनुमान से  
अपहरण मान लिया गया है । हम इसे रूपांतरण या भाष्य के रूप में भी देख  
सकते हैं ।

चोरी अपहरण — सादृश्यता की भाँति के साथ अपहरण और चोरी का प्रश्न  
अनुमघाता के लिए विचारणीय है, परन्तु मात्र द्वेषवश या अनान के कारण कभी  
कभी लेखक पर उनका आक्षेप किया जाता है । कविदर भिंगारादाम ने अपने समय  
के एक प्रमुख कवि श्रीपति के नाम का उल्लेख अपनी सूची में क्यों नहीं किया ?  
इसी एक बात के कारण हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान प्रय 'मिश्रज्युष्मा न दामजी

१ हिन्दी साहित्य का बहू इतिहास, पृष्ठभाग रीतिनाल, रीतिवृद्ध का, य,  
(सं० १७००—१६०० वि०) ना० प्र० सं० वाणी

पर श्रीपति के काव्य की चोरी का गम्भीर दापारापण किया था जो पूर्णतः निराधार तथा अमत्य था।<sup>१</sup> इस प्रकार की वस्तु स्थिति का उल्लंघन करने हुए अनुसंधान ने निम्नलिखित पत्रिका में इस गम्भीर आरोप की विमर्शापूर्वक जांच की है—

१ मिश्रत्रयु वितोद (पृ० ६३६) से उद्धरण— दाम यह भी एक बड़ा दाप है कि यह अथ कविया की उक्तियों का अपनी कविता में यथार्थ रूप लन है। इस कथन का उदाहरणस्वरूप इनकी रचना में द्युत स उ० मौजूद है। यहाँ तक कि श्रीपति कवि पर यह अपना एक विशेष रूप से ममभन थे। यहाँ तक कि 'श्रीपति मरोज' के अथय के अध्याय उठाकर आपन जगत्-तने अपन काव्यनिणय में रूप दिया है और इस बात का स्वीकार करता है दूर रहा अपनी कविया की नामावली में श्रीपतिजी का नाम तक नहीं लिया, माना यह उनका जानते ही न।<sup>२</sup>

प्रमाणित हुए बिना एसा आरोप निराधार मित्र जाना है। अनुसंधान ने इस विषय में प्रमाणा की जांच की और बताया—

२ "किमी भा इतिहासकार ने स्वयं मिश्रत्रयुषा ने भी इतने गम्भीर आरोप का सिद्ध करने के लिए एक पत्रिका भी उद्यन नहीं की। हमने श्रीपति मरोज' का एसा और 'काव्यनिणय' की उसने तुलना की। जाना कि प्रथम अथय—दाना में मगनाचरण सबधी अथय में बुद्ध भाव गाम्य का समावेश हो गया है।<sup>३</sup> इस कथन का उदाहरण से प्रमाणित करके व लिखते हैं कि इस भाव साम्य का मुख्य कारण है चन्द्रालोक और काव्यप्रकाश। एसा अथवा श्रीपति किसी ने भी उसमें मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया है। यह तो मान अनुवाद है।<sup>४</sup>

३ इसकी स्पष्टता के लिए अनुसंधान करके बताया गया कि—“प्रथम अथय ही में श्रीपति ने उत्तम मध्यम और अधम काव्य का वर्णन किया है। ठीक यही क्रम हम 'काव्यप्रकाश' में मिलता है और क्याकि दासजी के 'काव्यनिणय' का आधार, जसा उन्होंने ईमानदारी के साथ स्वीकार किया है, 'काव्यप्रकाश' और 'चन्द्रालोक' है, अतः यदि दास में यही क्रम पाया जाय तो दासजी को इस बात का दापी कौन ठहरा सकेगा कि इस अध्याय का क्रम उन्होंने 'श्रीपति मरोज' से लिया है। दास के

१ आचार्य गिबारीदास, पं० नारायणदास खन्ना, पृष्ठ ३३६

२ वही, पृ० ३३५

३ वही, पृ० ३३५ ३३७

४ वही, पृ० ३३६



इससे अन्वय और श्रीपति के तीसरे अन्वय में भी इसी प्रकार का अन्वय है ।<sup>१</sup>

४ आगे सोनाहरण अनुमानता १ अथवा इस कथन का प्रमाणित किया है ।<sup>२</sup>

### श्रीपतिसरोज—

मो पर जो बर सामु रिताइहै व घर व जत हौं ही निरारतिये ।  
मोठ बढोही करगो कहा हित की यह सीय कथा उर धारिये ।  
हू है रतौंधी मे सोभरो राति जो सोत ही धापनो पठो निरारिये ।  
सेन या मेरी चँबेरे महा भग बिलगाई बहू सिर मारिये ।

### दास—

एहि सज्जा अरजा रहै एहि हौं चाहत सन ।  
हे रतौंधि हे बात मह सेन समय जूते न ।

परन्तु यह ता कायप्रवाण के निम्ननिमित्त प्राकृत श्लोक का ही अनुवाद है—

अज्ञा एष्य निमज्जति अह दिग्भ्रष्ट प्रतोए ।  
मा पहिन्न रदि अथम सेज्जाए मह निमज्जति ।

—छाया

इयन्नूरत्त निमज्जति अह दिवसके प्रतोष्य ।  
मा पयिक राश्वभक् गम्यापामावयोनिमड क्ष्यति ।

५ अज्ञ के अनुमान से रचनाकाल की तुलना करते हैं ।<sup>३</sup>—' दास का प्रथम ग्रन्थ अनुमानत स० १७८१ वि० और अंतिम ग्रन्थ स० १८०७ वि० में लिखा गया, श्रीपतिसरोज स० १७७७ वि० सावन कृष्ण पक्षमी को लिखा गया । इससे यह तथ्य निकला कि सरोज की रचना भिलारीदास की रचना से पहले ही चुनी थी । इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि उन्होंने नामसरोज को देखा भी था । दास ने श्रीपति के सराज का नाम भी उदाहित न सुना था ।

१ आचार्य भिलारीदास डा० नारामणदास खन्ना प० ३३६

२ वही, पृ० ३३७

३ वही, पृ० ३३८-३३९

अनुमघाता न इमं प्रतिपादनं म निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किये हैं—

(१) उन गिना मुद्रण के अभाव में उसका प्रकाशित रूप नहीं था और हस्त-  
लिखित ग्रंथ दास के हाथ लगना असंभव था ।

(२) दास के काल तक काव्य सराज का काइ उल्लेखनीय स्तान नहीं मिला  
था ।

(३) श्रीपति कालपी के और दास टयींगा के निवासी थे । बीच में सबड़ा  
मील का अंतर था । यदि मुना देखा हो तो भी दास की आचायबुद्धि न मूनी में नाम  
दना ठीक न ममभा हागा ।

साहित्य में भावसाम्य होना कोई दोष नहीं है इम अभिप्राय से प्रेरित हा  
कर अनुमघाता लिखत हैं— 'दास की रचनाआ में हम यत्र तत्र उनके पूर्ववर्ती कविया  
के भावा की छाप मिलता है । यह भावसाम्यता वने में वडे कविया की रचनाआ में  
भी मिलता है और साहित्य में दाप नहीं माना जाता ।'<sup>१</sup>

अपनी इम स्थापना के समर्थन में समानाचरन न प० वृष्णविहारी मिश्र के  
मन्तव्य का उद्धरण दिया है ।<sup>२</sup>

'यदि किसी कवि की कविता में भावसादृश्य आ जाय तो समानाचना करते  
समय एकाएक उसे तुक्कट या चार न बड़े बठेना चाहिए, वरन उस प्रसंग पर इमसन  
और ध्वंसाताककार की सम्मति दखकर कुछ निरपना अधिन उपयुक्त होगा—

इमसन— साहित्य में यह एक नियम माना गया है कि यदि एक कवि यह  
दिखला सके कि उसमें मौलिक रचना करने की प्रतिभा है तो उस अधिकार है कि  
वह आरा की रचनाआ को डच्छानुसार अपने व्यवहार में लाव । विचार उमी की सपनि  
है जो उसका आदर कर सक टीक तीर से उसकी स्थापना कर सके । अन्य के लिए  
निये हुए विचारा का व्यवहार कुछ भद्दा माना जाता है परन्तु यदि हम वह भद्दापन दूर  
कर लें तो फिर व विचार हमारा हा जात है ।'

'व्यंग्याताककार— 'जिस कविता में महदय भावुक का यह सूक्त पडे कि इममें  
कुछ नूतन चमत्कार है, फिर चाहे उममें पूव कविया की आया ही क्या न दिखलाई

१ आचाय भित्वागीनास डॉ० नारायणनास खना, प० ३४०

२ वही, प० ३४१

पडे, भाव अपनाने में कोई हानि नहीं है। उस कविता का निर्माता मुकवि, अपनी वध छाया से पुराने भाव को नूतन रूप देने के कारण निर्दयी नहीं समझा जा सकता।'

दाम के काव्य में मात्र सरोजका व स भावमाप्यता मिलती हो, सा बात नहीं है। इसके प्रमाणस्वरूप अनुसंधान ने सिद्ध कर दिया है कि दास में देव बिहारी रमलाल, बंशव, रहीम मनापति और मतिराम के भावा का चित्रण भी मिलता है। स्पष्ट है कि इस साक्ष्यता का कारण श्रीपति और दास का एक मामा व द्योत स सम्बद्ध रहना है।

कवि दव पर भी अपहरण का आशय प० गोकुलचंद्र दीक्षित द्वारा किया गया है और डा० नगेंद्र ने उसका युक्तियुक्त ढंग से निवारण किया है।<sup>१</sup> प० गोकुलचंद्र दीक्षित—

१ काव्यरसायन' और मुख सागर-तरंग में कृतिसादृश्य है।

२ रागरत्नावर' के अनेक पद ज्या-के-यो माधवगीत में आ गये हैं।

डा० नगेंद्र द्वारा इस तथ्य की स्पष्टता — माधवगीत में देला नहीं है परंतु स्वयं दीक्षितजी ने उगावा वणन करत हुए जा उदाहरण दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि वह प्रथम पदों में लिखा गया है, जब कि हमने विपरीत रागरत्नावर पूरा देव के प्रिय छंद, कवित्त सबया, दोहा और छप्पय में ममाप्त हुआ है।

चोरी—

किसी की पूर्ण रचना को अपने नाम पर प्रसिद्ध कर देना चोरी है। मधिली शरण गुप्त और मुंशी अजमेरीजी में गाढ़ मिश्रता थी। इसी को आधार बना कर मुंशी अजमेरीजी से पक्षपात और प्रेमचंदजी में द्वेष करनेवालों ने चांगी का अपवाद कहा—'लियता सब अजमेरी है और छपता सब मधिलीशरण के नाम में है।'<sup>२</sup> बाद में मुंशी अजमेरीजी ने गुप्तजी का और मेरा सम्बन्ध लख में इस अपवाद का निवारण किया।

अपहरण—

जब किसी की रचना की आशिक रूप में चोरी या अनुकरण अनुवाद या रूपांतर की शली में किया जाय तब उस अपहरण कहते हैं। कवि मूयका त त्रिपाठी 'निराला की कविताओं पर वगना-काव्य से अपहरण का आशय लगाया गया था। हम तथ्य का उल्लेख करत हुए रामविलास शर्मा ने इस प्रसंग पर प्राप्त तथ्या का

१ आषाढ त्रिपाठीनाम डा० नारायणदाम खन्ना, पृ० ३४१ ३४३

२ दव और उनकी कविता डा० नगेंद्र, पृ० १०

३ मधिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, डॉ० कमलाकांत पाठक पृ० ३३

विवरण और समाधान प्रस्तुत करते हुए प्रमाणित किया है कि अपहरण का आक्षेप निराधार था।<sup>१</sup> उन्हे उद्धाने प्रभाव, प्रेरणा या रूपान्तर के अन्तर्गत माना है।

एक लेखक की दो रचनाओं में सादृश्यता—

एक लेखक की दो रचनाओं में सादृश्यता के कारण स्रोत का सम्बन्ध माना जाता है परन्तु इसमें अपवाद भी होता है। गुप्तजी की 'स्वदेश संगीत' मूल भावना की दृष्टि से 'भारत भारती की परम्परा में हान पत्र' भी अनुसंधान न दाना के अन्तर्गत सम्बन्धित किया है—“स्वदेश संगीत (न० १६८२) तत्कालीन आन्दोलन से प्रभावित है। उसका उद्देश्य प्रचारार्थ था। वह निरप्रभावक नहीं है, नीरम गुप्त और उपश्रवण है। भारत भारती युवक कवि का आत्मस्वी पीरूप उग्र तारण्य और अग्रजों के निष्ठासत की भावना से युक्त है, जबकि 'स्वदेश संगीत' प्रौढिका विचार गाम्भीर्य, गुचिसाहित्य और अग्रजों से सम-सम्बन्ध की कामना लिए हुए है। उसमें नवीन प्राचीन समन्वय की भावना है अग्रजों के प्रति विद्वेष का अभाव और आदर्श जीवन की कल्पना है। यह भाषा विचारधारा के विकास की सूचना देने वाली रचना हान के कारण गुप्त साहित्य में इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।”<sup>२</sup>

समकालीन लेखकों में सादृश्यता—

समकालीन लेखकों में सादृश्यता के रहने भी परस्पर के सम्पर्क के अभाव में स्रोत का सम्बन्ध न हो यह पूर्णतया सम्भव है। रूमी गार्गी और प्रेमचन्दजी के बीच तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा यह स्थापित करने की चट्टा की गई है कि उन दोनों के साहित्य में 'मानवता का एक नया क्षितिज नजरो के सामने उभरने लगता है नये अधनग, बूटे जवार, बच्चे-बच्चियाँ तरणी बढाएँ और य भी किसान जमींदार, मालिक मजदूर, धनी निधन, छूत अछत शिक्षित अशिक्षित सभी वर्ग के—इन चित्रों में जादूई आकषण है जिसकी मुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है फिर भी दोनों के चित्रों में अन्तर है।<sup>३</sup>

इस अनुसंधान की प्रक्रिया में प्रेमचन्द के 'गालन और गार्गी की 'मा' में साम्यता विचार गद्—' दाना उप-याथा की वे द्वीय आत्मा एक है उनमें एक ही प्रति-वर्ति गूज रही है—हम कमजोर मानव जा ब्यव का भार अपने ऊपर लादे रुदिया, अ धविश्वासा और मिथ्या मान मयादाओं के मलय के नीचे दवे पड़े हैं—यह

१ निराना की साहित्य माधना प० ६६ १०६

२ मधिनिसरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आर्याना, उमाकांत, प० २४

३ प्रेमचन्द और गार्गी, स० शचीरानी गुट्ट, भूमिका, प० १

हमारी अधोगति और पराजय का सातक है। जीवन की सहज चाह, उमकी शक्ति और स्फूर्ति को कुचल दिया गया है। पूजीवाद रूपी बान्हू म मानवता का पीस डाला है, इसीलिए वह निष्प्राण और निर्जीव हा रही है।<sup>१</sup>

परोक्ष प्रभाव के कारण साव्यता—

● शिवदानसिंह चाहान न इस विषय म साम्यता स अधिक् वषम्य पर बल दकर युक्तियुक्त शली म अपन विचारा का समवन किया है और गोर्की के साथ साम्यता के स्थान पर टानस्टाय का पराग प्रभाव गिद्ध किया है। प्रारम्भ म उहोन इस प्रकार की भारतीय और विदेशी की तुलना म भारतीय प्रजा की हीनता अधि और प्रतिवात् की भावना का कारण बनान हुए दम प्रवृत्ति के मूल म राष्ट्रीय जागरण की परिस्थितियाँ बतायी हैं तथा प्रेमचन्ड क जीवन राज म गार्की स नहा, चातस टिकन्ड या विलियम श्वेकर स रचना प्रवृत्ति म साम्य का तत्रर तुलना की जानी थी इसका उल्लेख किया है।<sup>२</sup> फिर व बनान हैं कि प्रेमचन्ड और गार्की म साम्य स वषम्य अधिक् है इहा बता को ध्यान म रखकर शायन् सावियत आलोचक ब्रस्वावनी ने प्रेमचन्ड पर लिखत समय गार्की का नहा, टालस्टाय का उल्लेख किया है। प्रमचन्ड अनेक दृष्टिया स अपथया टानस्टाय क अधिक् निवट हैं यद्यपि इसका अर्थ यह कदापि नही कि व टानस्टाय म बड ऽ या उनकी बराबरी के तसक है। टानस्टाय स प्रेमचन्ड बहुत अधिक् प्रभावित थ इसका बवल इतना ही अर्थ है। स्वय महारमा गाधी टालस्टाय स प्रभावित थ और प्रमचन्ड मूलत गाधीजी क ही अनुयायी थ।<sup>३</sup> कहा जा सकता है कि गोर्की स साम्यता का कारण परिस्थितिया की और विषय वस्तु की समानता है तथा टानस्टाय साम्यता का कारण गाधीजी क माध्यम स टानस्टाय साहित्य स प्रेमचन्ड साहित्य का पराग खान का सम्बन्ध है।

साव्यता के सही मूल्यांकन म तुलनात्मक अध्ययन—

अनुमधाता का कतव्य है कि वह साम्यता की राज करत समय कति और कतिकार का गवाँग अध्ययन करक वषम्य का भी समझ ल जिसम साम्य क स्तर और स्वरूप का सही मूल्यांकन और यान्या हा गव। प० हजारिप्रसाद द्विवेदी का उपयाम बाणभट्ट की आत्मकथा और बाण की बाल्म्बरी की तुलना करत हुए बताया गया है— उपयाम की शती आर बाल्म्बरी की शली म बहुत साम्य िगनाई पन्ता है बयाकि अतर एम म्यत्र आए हैं जिस आँगा का लुभा लनवान मनोरम दृश्या का वणन तगर न बना ही गचिपूर्वक किया है जत्रकि आँगा का

१ प्रेमचन्ड और गार्की जकीगनी गुरू भूमिका प० ११ १४

२ वही, प० ५७६

३ वही प० १८२

बचाकर भीतर चलनेवाले अतद्बद्धा के चित्रण में उसने अपनी उस सुष्ठु का परिषय नहीं लिया है।" अनुसंधान ने इस साम्य का कारण सम्बन्ध काव्य शैली का प्रभाव माना है।

एक साथ दो या दो से अधिक सभ्यता में कतिया या कतिकारों में साम्यता का दर्शन होता है तब अध्ययन पूरा गम्भीरता के साथ अत्यन्त रसप्रद भी होना है। इस सादृश्यता का सम्बन्ध स्थूल शब्दा तक सीमित न रह कर रचना के सूक्ष्म-तत्त्वा को ध्यात्त किय रहता है। 'प्रेमचन्द (स० १९३७-१९७३ वि०), बन्दावनलाल वर्मा (स० १८८६ में जन्म) और राजा राधिकारमण प्रसादसिंह (स० १८७१ में जन्म)'' में यद्यपि अनेक साम्य ध्यात्तका को दृष्टिगत हाग परन्तु इसके विपरीत स्वतंत्र और मौलिक क्षेत्रों का समादर साहित्यिक मूल्यांकन निमित्त नातय हागा—

साम्य—

- १ सामाजिक चित्रण की प्रवणता अभूतपूर्व है।
- २ चरित्र का जीवन दर्शन।
- ३ कथानक की रोचकता।
- ४ ध्यादर्शों-मुख यथाथ।
- ५ मनोवैज्ञानिक परीक्षण।
- ६ प्रेमसत्त्व के विस्तार की आकांक्षा।
- ७ भाषा के परिमाणन का अभाव।<sup>१</sup>
- ८ मूकिया का प्रबल आग्रह।
- ९ शिल्प से अधिक भावपक्ष पर दृष्टि।
- १० सवेदनाप्रा की उन्नयन का अभाव।
- ११ भारतीय जीवन में मास्वतिक प्रतिष्ठान।
- १२ नारी के सात्त्विक प्रेम तथा उनके उचित सम्मान की भावना।

आग इन तीनों सखका के वषम्य पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार सादृश्यता का विचार अधि-विकसित होकर तुलनात्मक अध्ययन का प्रेरणा स्रोत बन जाना है। तुलनात्मक अध्ययन अनुसंधान के क्षेत्र में एक स्वतंत्र विषय है और इसमें अय विचारणा का विशेष महत्त्व नहीं दिया जाना। दानबहादुर पाठक के

- १ ऐतिहासिक उपास की सीमा और वाणभट्ट की 'भारतकथा', डॉ० त्रिभुवनसिंह, प० २४
- २ बन्दावनलाल वर्मा साहित्य और मनोभा, गियारामशरण गुप्त, प० २०२

संयुक्त स्रोत के अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रकरण सादृश्यता के विचार के विकासस्वरूप जाना है। इसके अन्तर्गत २ दान निम्न विधियों की चर्चा की है—

युग और परिस्थितियाँ ।

काव्य और जीवन ।

चरित्र चित्रण ।

भाव पक्ष ।

कला पक्ष ।

सीमांकन ।

जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं — 'भारत-दु युग के प्रौढ व्यक्तित्व में प० बालकृष्ण भट्ट में आकार पाया ।<sup>१</sup> प० प्रतापनारायण मिश्र और भट्टजी में यह बात विशेष रूप से थी । उनके शौचको और भाषा की भाव भंगी से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह उन्हीं की लेखनी है । भट्टजी की भाषा में मिश्रजी की भाषा की अपेक्षा नागरिकता की मात्रा कहीं अधिक पाई जाती है ।<sup>२</sup> इस अन्तर्गत में तुलनात्मक शैली में समानता और विषमता का निर्देश मूल स्रोत को ध्यान में रख कर किया गया है । हिन्दी के सब प्रथम निबंधकार भट्टजी हैं । उनका हिन्दी प्रीप का सम्पादन उनके व्यक्तित्व और कर्तित्व के परिचय का मुख्य और प्रत्यक्ष सात है । इसमें प्रभाव और अनुकरण या चारों के बीच क्या अंतर है यह स्पष्ट हो जाता है ।

दो प्राचीन भाषाओं के नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन—

हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन में दाना के आदिनाटक क्रमशः शकुन्तला (सन १८६३) हिन्दी में और लक्ष्मी (सन १८५१) गुजराती में—का विवचन करने के बाद अनुसंधानता उनके स्रोत पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं— उपर्युक्त दोनों भाषाओं के आदि नाटकों के विवचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजराती नाटक का जन्म हिन्दी नाटक से लगभग बारह वर्ष पूर्व हुआ । इस दृष्टि में वह अग्रज है । नाट्योत्पत्ति के समय दोनों भाषाओं की एतिहासिक साम्प्रतिक सामाजिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि समान थी दाना का उदयमन्वान अग्रज का नामन-नाम १६वाँ शती का उत्तरार्द्ध है ।

१ मयिरीशरण गुप्त और उनका साहित्य दान-महाट्टर पाठ्य 'वर प० ३३५

२ हिन्दी निबंधकार प० ६६

३ हिन्दी गद्य शैली का विकास, टी० जयनाथप्रसाद त्रिपाठी, पृ० ४५

प्राचीनतम दो महान नाट्य परम्पराएँ— यूनानी और भारतीय—मैं से हमारी घालोच्य भाषा गुजराती के आदि नाट्य का यूनानी नाटक में और हिन्दी के आदि नाटक का संस्कृत नाटक से संबंध हो, यह एक अत्यन्त रोचक घटना है। भिन्न भिन्न परम्पराएँ से उद्भव होने के कारण दोनों भाषाएँ के आदि नाट्य में साम्य कम और विपश्य ज्यादा है। फिर भी यहाँ यह निष्पत्ति आवश्यक है कि दोनों भाषाएँ के इन आदि-नाट्य के क्या-कौन पौराणिक हैं। हिन्दी के आदि-नाटक शकुन्तला का हिन्दी के भावी नाटककारों पर काफी प्रभाव पड़ा है जबकि गुजराती उच्च नाटक में किसी भी परवर्ती गुजराती नाटककार का प्रभावित नहीं किया और किसी परम्परा का आरम्भ भी नहीं किया।<sup>१</sup>

**स्रोतों की एकता तथा समान सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रभाव—**

उपरोक्त प्रबंध में प्राप्त सादृश्यता की उर्चा करने हुए बताया गया है कि—  
 ' ऐतिहासिक नाट्य में ऐतिहासिक वातावरण की सम्यक् सृष्टि के लिए रीति रिवाज, वेश भूषा, वार्तालाप, भाषा शैली आदि का ऐतिहासिक इतिहास और चरित्रों के अनुरूप होना आवश्यक है। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाएँ के इन सभी नाट्य में समान रूप से ऐतिहासिक वातावरण का निर्वाह हुआ है।'<sup>२</sup>

**विदेशी साहित्य का प्रभाव सादृश्यता के अर्थ में—**

अनेक के साहित्य और विदेशी साहित्य में प्रतीत होने वाली सादृश्यता की व्याख्या करते हुए अनुसंधान लिखता है— उन मशकत-यत्नरत की निशिष्टता में इन प्रभावों का यौ आत्मसात किया कि अपनी आवश्यकतानुसार इन प्रविधियों के सशाधन, अनुकूलन एवं परिष्कार में वह अपने विषयों के प्रभावी सम्प्रेषण में समर्थ हो सकी और यह प्रतीति दे सकी कि ये बाहर में लार्ड चुराई नहीं गयी बल्कि इनके विषयों की अपनी मांग है—इनकी मूल संरचना की अपनी उपज। तत्पुत्र विषय और शिल्प की अनुपाय्यता अन्वय के उपयोगों की महत् विशेषता घन गई है। यही कारण है कि विदेशी साहित्य का अध्ययन पाठक इनके उपयोगों में विदेशी प्रभावों का गधान चाह कर लें किन्तु न तो इनमें किसी बाह्यांगिन साधनों के उपयोग से जनित्र विकृतात्मकता का शिवा मकता है न ही इन पर नरतचा हानि का दाया रापण कर सकता है। यह अवश्य है कि एक पाठक के लिए अज्ञय के उपयोग उनमें मौलिक न रहग जितने केवल भारतीय साहित्य के अध्ययन पाठक के लिए हो सकन हैं।

१ हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० रणधीर उपाध्याय प०६० ६१

२ यहाँ, प० १७६



स्वयं अज्ञेय ने अपने को सारेंस घोर आर्जनिंग के निकट बनाया है। डॉ० राधा ने लोरेंस के उपयास लेडी चेटर्लैज लवर' घोर नदी के द्वीप' के किन्हीं स्थलों की तुलना की है। इस चर्चा का तात्पर्य इतना ही है कि सादृश्यता का प्रथम चारी या अपहरण कदापि नहीं है। हम उसे प्रभाव या प्रत्यक्ष स्रोत के रूप में देखने की दृष्टि यदि प्राप्त करेंगे तो बहुत संभव है कि टेरेक की मौजूबता का हम अधिक सही रूप में जान सकें।

अनुकरण—

अनुकरण रचना के भाव पक्ष की अपेक्षा करना पक्ष से अधिक संबद्ध रहता है। 'विनयपत्रिका घोर रामचरितमानस' में सत तुलसीदास न जिस प्रकार राम के ब्रह्मरूप की अनक स्तोत्रा घोर छदा में बदना की है श्रीधर पाठक न भी उसी प्रकार मातभूमि के देवीरूप की बदना की है। तुलसीदास न श्रीरामचंद्र के लिए रामचरित मानस' में लिखा है—

जय रामरूप अनूप निगुण सगुण गुण प्रेरक मही,  
दगंगीश बाहु प्रचंड खडन घाप हर मडन मही।  
पायोदगत सरोजमुल, राजीव आयत सोचनम  
नित नौमि राम कृपालु बाहु विंगाल भव भय मोचनम ॥  
श्रीधर पाठक भी उही के राग में राग मिलाकर भारतमाता के नौमि भारतम में लिखते हैं—

मुलधाम प्रति अभिराम गुन निधि नौमि नित प्रिय भारतम  
मुठि सकल जग ससेध्य मुभ यन सकल जग सेवार्तम।  
मुचि-मुजन मुफल मुसम्य सकुल सकल मुचि अभिवदितम  
नित-नवल मुशु-मुदय-मुठि छवि प्रवलि प्रवनि प्रनदितम ॥

इन समान उद्धरणों का प्रस्तुत करने अनुसंधाना न यह प्रमाणित किया है कि श्रीधर पाठक न तुलसीदास के पंचचिह्नों का अनुकरण कर किस प्रकार भारतवर्ष का देवरूप प्रदान किया है। उहान गीतगात्रि' व अमर कवि जयशंकर का अनुकरण कर अनेक मुद्दर पत्र रचे। उनका भारत स्तव जयशंकर का अनुकरण कर से प्रभावित हुआ जान पता है। ' उहान भारत माता की पूजा के लिए भारत की लिखी जिस प्रकार तुलसीदास न हनुमाता घोर राम की निगी था।<sup>१</sup>

अनुकरण घोर प्रभाव न अंतर—  
एक प्रसंग का उद्धरण पर यह स्पष्ट हा जायगा— भारतदु के नाटक

१ धाधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९००-१९२५ ई०) श्रीकृष्णनाथ,  
पृ० ८३-८४  
२ वही, पृ० ८५

का अध्ययन करने पर यह तथ्य उपलब्ध हुआ कि उनकी विख्यात नाटिका 'श्रीचंद्रावली' रासलीला के प्रभाव से विशेष प्रभावित है और बीसवीं शताब्दी में 'रियागी हरि' न श्रीप्रेमयागिनी नाटिका लिख कर उसी रामलीला का अनुकरण उपस्थित किया।<sup>१</sup>

इस प्रसंग में प्रभाव और अनुकरण इन दो शब्दों के द्वारा अन्त और साहित्यकार की प्रकृति का भी संकेत किया गया है। प्रभावग्रहण अनिश्चित रूप में और सख्त का अनजान में स्वाभाविक और उसके स्वभाव के अनुरूप होता है जब कि अनुकरण प्रयत्नपूर्वक और जान-बूझकर होता है और अतएव अस्वाभाविक भी हो जाता है।

### [३] प्रभाव

प्रभाव किसी व्यक्ति, रचना, प्रवृत्ति समुदाय और युग का भी हो सकता है। साहित्य की व्याख्या में 'नूतन नूतन पद पद' का रहस्य है, उसका प्रतिक्षण चतुर्धर रह कर प्रभाव को ग्रहण करना। व्यक्ति की प्रतिभा प्रवृत्ति और युगजीवन विविध रूप से उसे प्रभावित कर उसका नवनिर्माण करते रहते हैं।

#### पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव—

विद्यापति पर माघ अमरक, गावधनाचार्य कालिदास, जयदेव आदि पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव लक्षित होता है।<sup>२</sup> वे अपने समकालीन साहित्य से भी प्रभावित रहे। पदावली जिस काल और वातावरण में रची गई, वह घोर शृंगारिक था। साधारण लोगों की तो कौन कहे, भक्ति-संप्रदाय के प्रणेता भी माधुर्य भाव के नाम से भक्ति में शृंगार का अमित समावेश कर चुके थे। जीवन और जगत् का कोई कोना शृंगार रस में अछूना न रह गया था। राधा शिवांसिंह और लक्ष्मिदेवी जिनके आश्रय में कवि ने अपने पदा की रचना की, तो शृंगार रस के आगार ही थे।<sup>३</sup>

#### युग प्रभाव—

भारत-दु की भारतजननी' और भारतरुशा नाटक में अनेक पद्य और गीता में वर्तमान अवधि में प्रति विश्वास की भावना व्यक्त है। मधिलीशरण की 'भारत भारती' और स्वदेश मंगल पर भी इसका प्रभाव है।<sup>४</sup> प० प्रतापनागयण मिश्र जीवन और साहित्य प्रबंध में अनुसंधान में अनेक तथ्यों के संकेत के फल

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९००-१९२५ ई०), श्रीकृष्णनाल, प० २००

२ विद्यापति और उनकी पत्नी, दशराजमिह भानी एवं जीवनप्रकाश जागी, प० ३

३ वही, प० १५७

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९००-१९२५ ई०), श्रीकृष्णनाल प० ८५

स्वरूप उनके साहित्य श्रोता की गवेषणा करने बताया कि "तत्कालीन परिस्थितियाँ, राजनीति समाज धर्म और साहित्य"— इन सब का सम्मिलित प्रभाव मिश्रजी पर था ।<sup>१</sup>

**साहित्यिक वातावरण और राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव—**

भारत-दु युग में पद्य में राजभाषा और गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग होता था । उस प्रकार के भेद में तत्कालीन साहित्यकारों को अस्वाभाविकता नज़र आई और श्रीधर पाटन जैसे कुछ प्रमुख साहित्यकारों ने खड़ी बोली का महत्त्व दन का प्रयास किया । इस विषय पर तीव्र मतभेद प्रकटित था । राजनातिक और सामाजिक परिस्थितियाँ खड़ी के अनुकूल थी । एक हिन्दी<sup>२</sup> के पक्ष में श्रीधर पाटन का प्रयत्न सराहनीय है । इस समय की उनकी रचना का प्रेरणा स्रोत तत्कालीन साहित्यिक वातावरण तथा राजनातिक और सामाजिक परिस्थितियाँ थी । एका तबामा यागी<sup>३</sup> की भूमिका में वे लिखते हैं—

‘हिन्दी के प्रेमी पाटन,

यह एक प्रेम-कहानी आपको भेंट की जाता है । निम्न दह इसमें ऐसा तो कुछ नहीं जिस यह आपको एक ही बार में खपना सके । अथवा आपको इस गल्प नवीन रसावेधी मनामधुप का सहज ही लुभा सक । केवल दो प्रेमियों के प्रेम का निर्वाह माय है, पर हम का और क्या चाहिए ? हम तुम भी तो एक हिन्दी के प्रेमी हैं, कम यही सबध इस भेंट के लिए युक्त युक्त है ।<sup>४</sup>

**विचार धारा का प्रभाव—**

महापुरुष के सवस्व की महान शक्ति उमर विचार को श्रुता प्रभावशाली बना देती है कि उनके अमर्य अनुयायी या जान हैं और जीवन के विविध क्षणों में प्रातिकारी परिवर्तन का शक्ती है । तब यह उम विचार धारा को शक्ति या शक्ति रूप में साक्ष्यता मिल जाती है । गार्गीवाद के सम्भ में यह निदान माय गिद्ध हुआ है— कभी कभी जीवन में एसी भी परिस्थितियाँ आती हैं कि उत्तम चरित्र का जीवन में विराशाया का अधरार छा जाता । । एसी स्थिति में उम शक्ति का अगना पक्ष महासूभता । इस प्रकार का शक्ति वातपयोजी का शक्ति शक्ति है । यह प्रकृति भी गार्गीवाल विचार धारा के सम्भ में है । वातपयोजी का शक्ति शक्ति का शक्ति पर गार्गीवाल का प्रभाव पड़ा है ।<sup>५</sup>

१ डॉ० मुरगाड 'कुत चट्ट' प० १०

२ अजभाषा बनाम खड़ी बोली प० पवित्रक गिट्ट प० ३

३ 'वातपयोजी का शक्ति शक्ति' प० मनिन शक्ति, प० ६१०

**ऐतिहासिक साहित्यिक प्रभाव—**

साहित्य मस्कृति का वाग्दूत है और अपने उदभव तथा विकास के लिए वही से अपने जीवन-नन्त्रा का ग्रहण करता है। मस्कृति का महयागी तत्त्व ऐतिहासिकता अनिवाय रूप से उभर आ जाती है— ऐतिहासिक नाटका में ऐतिहासिक वातावरण की सम्भव मण्डि के लिए गौतम त्रिवाज्य प्रेश भूषा वात्सनाय, भाषा शत्री इत्यादि का ऐतिहासिक इतिवत्ता और चरित्रा के अनुरूप होना आवश्यक है। हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं का इन सभी नाटका में समान रूप में ऐतिहासिक वातावरण का निर्वाह हुआ है।<sup>१</sup>

**वातावरण के कारण व्यक्ति का प्रभाव —**

किसी महापुरुष की विचार धारा से नये वातावरण की मूठि हाती है वम ही प्रवर्तित वातावरण का अनुरूप चिन्तन का शक्तिशाली ढंग में अभिव्यक्त कर सकने की प्रतिभा के प्रभाव से भी साहित्य निर्माण होता है। नये वातावरण पृष्ठभूमि का काम देता है। “प्राय २१० वर्षों तक चली आंग्लो-भारतीय शक्ति का विश्वनाथ नये नये माग पर गाड़ दिया। नाट्य शास्त्र के नियमन को नाट्यकारों ने पूर्णतया स्वीकार किया। यह स्वाभाविक भी था। हिन्दी नाट्यकारों ने १९वीं शताब्दी में १९वीं शताब्दी तक संस्कृत नाट्य शास्त्र की उपेक्षा की थी। १७वीं शताब्दी में महाराज जयवन्तसिंह ने संस्कृत नाट्य शास्त्र के नियमों का उपयोग करना चाहा, किन्तु वह सफल न हो सके। छः सौ वर्षों के बाद देश में एता वातावरण उत्पन्न हो गया कि नाट्यकार विश्वनाथसिंह ने पूर्णतया संस्कृत की नाट्य शैली को अपनाया और इस काम में काम सफल हुए। विश्वनाथ द्वारा प्रचारित नाट्य सूत्रधार और प्रस्तावों का विधि विधान सर्वत्र मान्य हुए। भारत-दुर्गाधीन नाट्यकारों के नाटका स होनी हुईं यह परम्परा प्रमाद का प्रारम्भिक नाटक सज्जन तक चलती रही। यद्यपि यज्ञ-तंत्र आज भी उभर उभरते जाते हैं किन्तु अब उभरती ही नहीं रह गई है।”<sup>२</sup>

**एक लेखक का सम्पूर्ण युग पर प्रभाव—**

भारत-भूमि हिन्दी युग का नमूना तल्लूतानजी के लेखन में इस प्रकार है— ‘कृता कह, महादेवजी गिरिजा को माथ ल गंगा तीर पर जाय नीर में हाथ, हिलाय, अति नाड्यार से तमे पावतीजी को बन्ध्याभूषण पहिराने।’<sup>३</sup> इस और

- १ हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य तुलनात्मक अध्ययन डा० रणधीर उपाध्याय, पृ० १७६
- २ हिन्दी नाट्य उदभव और विकास डा० दशरथ शर्मा, पृ० १८६ १६०
- ३ अजभाषा बनाम मंडी बोनी, पृ० ५० पिनदेव सिंह, पृ० ७

सदभ ४८ के उपयुक्त दो उद्धरणों में जो अंतर लक्षित होता है उसका कारण युग प्रवृत्तक भारतोदु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा है। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने एक दो लेखकों को नहीं, सम्पूर्ण युग को प्रभावित किया। हरिश्चन्द्र हिंदी की परम्परा का बालवृष्ण भट्ट ने श्राग बनाया। परन्तु इस समय के प्रायः सभी लेखकों में एक बात सामान्य रूप में पाई जाती है। वह यह कि सभी शक्तियों में उनके व्यक्तित्व की छाप मिलती है।

उमें प्रभावशाली भारत-दुजी न जिन क्षेत्रों में जस साहित्य का निर्माण चाहा, वहाँ किया और अथ लयना को बहुत हद तक प्रभावित किया। उनके प्रभाव से तत्कालीन साहित्यकार अपने अधिक आतंजित थे कि गद्य पद्य में समान भाषा के प्रयोग की आवश्यकता हात में भी किसी की हिम्मत न पड़ी कि गद्य के अनुकरण में पद्य में भी खिन्नी बोली का प्रयोग और अविषय प्रचार किया जाय। भारते दु पद्य में ब्रजभाषा के पक्षपाती थे।

गद्य पद्य की भाषा व विषय में इस प्रकार के प्रभाव के अन्तर्गत हिंदी साहित्य का अत्यन्त वृद्धि रूप है और युग का प्रभावित करने वाली एक और प्रतिभा का प्रकाश में आता है। उहाँ भारत दुजी के मतों के विरुद्ध गद्य पद्य दोनों के लिए गडा बोली का प्रवृत्तन प्रचलन बड़े अतिशय प्रयत्न और साधना के साथ किया। इसका यही तात्पर्य है कि युग निर्माता करणीय अकरणीय में पूर्ण समर्थ होना है। कुलवत काहनी के शब्दों में द्विवेदीजी का परिचय —

‘साहित्य की सब विधियों के साथ साथ उहाँ इतिहास सम्पत्ति शास्त्र भूगोल हिन्दी भाषा समृद्ध साहित्य जीवन चरित शासन पद्धति यात्रा विवरण तथा चित्रण आदि विभिन्न विषयों पर निरन्तर हिन्दी की अभावपूर्ति का। अतः तत्कालीन युग पर द्विवेदीजी का इनका प्रभाव पडा कि उसका नामकरण ही इनका नाम के आधार पर द्विवेदीजी का इनका प्रभाव पडा कि उसका नामकरण ही इनका नाम के आधार पर द्विवेदीजी की महत्ता में निम्नकाच का अर्थ है — यदि कोई गुणम पूर्व कि द्विवेदीजी न क्या किया तो मैं उन समय आधुनिक हिन्दी साहित्य निम्नकाच का अर्थ है कि यह सब उहाँ की सेवा का फल है। हिन्दी साहित्य-गणन में मूल्य का अर्थ और आगणना का अर्थ है। मूल्यांकन तुलनात्मक पद्याकार आदि कवि साहित्यकारों के ददीप्यमान नभ्र हैं। परन्तु मूल्य की तरह जान की जनराशि देकर साहित्य उपयुक्त का हरा नगा बनाना में द्विवेदीजी का गणना होगी।’

इस प्रयोग में एक और तथ्य प्राप्त होता है कि भारत-दुजी और द्विवेदीजी दोनों का युग निर्माता का विरुद्ध किया गया परन्तु पद्य में गरी बोली का विरोध

१ ब्रजभाषा बनाम गरी बोली — कविन्देव मिह पृ० २६ २३

२ युग निर्माता द्विवेदी पृ० २३

ममय बीतते अयावहारिक सिद्ध होने से भारतेन्दु के इस भाषा विषयक आग्रह का प्रभाव समाप्त हो गया और द्विवेदीजी के खड़ी बोली के व्यवहार का प्रयत्न सफल और साधक हुआ। साहित्य जगत् का बनावरण और उमकी आनश्यकता ही प्रभाव का बनाती बिगाडनी रहती है। इस युग निर्माता का दाप नहीं कहा जायगा।

### विदेशी प्रभाव—

हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। प्रसादजी के कथा-नायक 'प्रेम पथिक' (१८१३) पर अंग्रेजी प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। यह गोलडस्मिथ की रचना 'हरमिट' के आदर्श पर निर्मित है। इसके मविधाम में स्वच्छन्दता की श्रेष्ठ भूलक है और अपन इगी स्वरूप में वह गालडस्मिथ की मीधी सरल रति में चपन वाली कथा से भिन्न है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य दर्शन का अभिव्यक्ति इस काव्य रचना में तीन रूपों में है। एक तो सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोहात्मक उक्तिओं में दूसरे प्रकृति के प्राणों में उल्लाम के अनुभव और तीसरे विश्व प्रेम के आदर्श के मदेश में। सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति अनेक स्थानों पर है। 'एक पुत्र की अपरिचित व्यक्ति के साथ विवाह के प्रति विक्षाभ में दूसरे विवाहिना नारी के दामीरूप चित्रण में एवं तीसरे बधव्य के पीलित एक अभिशप्त जीवन के दिग्दर्शन में। गालडस्मिथ के कथामक को पूणत भारतीय रूप देने के लिए उममें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिए गए हैं।'

अन्य का साहित्य विदेशी साहित्य में बहुत अधिक प्रभावित है। 'केपलर' पर रोरी राली के 'या विस्ताप' का और 'नदी के द्वीप' की कथा पर व्यक्तिमूर्तक उपवासकार मामल प्रुस्त के 'In quest of an island unto himself' में खोजी जा सकती है जिमका दृष्टिकोण समाजपरक है। जान डन के उपयुक्त कथन के विपरीत उनीमवी शती के मध्य के मध्यु आनल्ड की 'The River of Life' कविता में इसी प्रतीक का 'व्यक्तिपरक' अर्थ में प्रयोग हुआ। अज्ञेय ने अपना प्रभाव इसी से ग्रहण किया है। 'नदी के द्वीप' के काम प्रसंगा पर डी० एच० लारेंस का प्रभाव है।

### [४] स्त्रात के प्रकार

इतिहास और व्यक्ति के मन्ध में ग्रहण, ममानातरता, सादश्यता, रूपातर चोरी, अपहरण, अनुकरण और प्रभाव—प्रत्यक्ष और परोक्ष—की कचा के निचाड स्वरूप माटे तोर पर इन आठ प्रकार के स्त्रात की उपरधि होती है—

- (क) प्रत्यक्ष ज्ञान
- (ख) दम्भावली ज्ञान
- (ग) विवर्णात्मक ज्ञान
- (घ) संयुक्त ज्ञान
- (ङ) मौखिक ज्ञान
- (च) प्रणाल्यात्मक ज्ञान
- (छ) मान्य ज्ञान
- (ज) प्राकृतिक ज्ञान

द्वारा ज्ञान का व्यवस्थित और दृढ़ बनाने में मुख्य भूमिका रहता है।

(क) प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञान अपनी स्थिति दृढ़ता का मन ही मन पुनरावृत्ति के द्वारा प्राप्त होता है जब उसे विचार और अभिव्यक्ति में प्रतिष्ठित करने के लिए उचित अवसर मिलता है।

१. ज्ञान द्वारा निर्देश

ज्ञान का निर्देश करते समय प्रयोग में जो स्वयं भक्त ही कर देते हैं। ज्ञान के निर्देश के अभाव में विषय की शक्ति ही समाप्त हो जाती है। परन्तु ज्ञान विधि में उचित विषय की सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। यदि विषय की पूर्णतया समझ न हो तो महत्त्व के अनुसंधान इतिहासकार बताते हैं कि विषय की समझ ही ज्ञान की प्रतीक है। ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है। ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है। ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है।

‘मानवसुखनिर्माणसामग्र्यसम्पन्नं स्व  
 स्वार्थं मुखात् सुखी स्थानावभाषा  
 भाषानिबन्धमिति मनुजामातेति ॥’

निर्माणसामग्र्यसम्पन्नं स्वार्थं मुखात् सुखी स्थानावभाषा भाषानिबन्धमिति मनुजामातेति ॥

ज्ञान पर ध्यानपूर्वक विचार करने से ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है। ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है। ज्ञान ही ज्ञान का निर्देशक है।

विवचन उसमें नहीं आ सका है।<sup>११</sup>

रीति कवि कृपाराम की 'हिततरंगिणी' के स्रोत विषयक कथन में अनुसंधाता लिखता है—“दूसरी कोटि के रीति-काव्य प्रणेता के कवि हैं जो रग, अलंकार आदि काव्यांग-निरूपण में ही प्रवृत्त हुए थे। उनमें कृपाराम का नाम काननमें से सबसे प्रथम आता है। कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' (सन १५६५) नामक प्रथम कविशिक्षा के निमित्त दाहा छंद में लिखा था। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती रीति-काव्य प्रणेताओं का भी संकेत किया है, किंतु अभी तक किसी ऐसे रीति प्रथम का पता नहीं लगा है। अतः कृपाराम का ही सर्वप्रथम रीति-काव्यकार मानना उचित है।<sup>१२</sup> भारत में प्रति इस कवि ने ऋण स्वीकार किया है और भरतमुनि का नाट्य शास्त्र उपलब्ध होना के कारण स्रोत विषयक संगति भी लगती है। इन्होंने स्रोत का संकेत देने हुए इस प्रथम में लिखा है—

धरत कवि सिंगार रस छंद बड़े विस्तारि ।

में बरयो दोहान बिच बातें सुपरि विचारि ॥

भारत भारती' का पुस्तकालय में गुप्तजी ग्रहण के अर्थ में प्रत्यक्ष स्रोत का निर्देश करने हुए लिखते हैं— 'हाली और कफी व मुसद्दमी से मैंने लाभ उठाया।'<sup>१३</sup>

अनुसंधाता ने इस तथ्य के आधार पर और एतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस प्रभाव के अंतर्गत रखा है— 'मुसद्दम हाली, मुसद्दस कफी और भारत भारती—तीनों एक ही प्रकार की रचानें हैं। प्रथम दो प्रकाशित हैं। गुप्तजी दोनों में प्रभावित हैं।'<sup>१४</sup>

मेरे निबंध 'जीवन और जगत्' के लयक गुलाबराय लिखते हैं— 'अपनी मिथ्यात और अध्ययन' शीर्षक पुस्तक के लिए छह वज्र तक पढ़ा। (मैं उन लोगों में हूँ जो अपने विषय निबंधों के लिए त्रिना कुट्ट पढ़े नहीं लिख सकते। वास्तव में मेरे लखन में एक तिहाई दूसरे से पढ़ा होता है, एक बटा छह उमक आधार से स्वयं प्रकाशित और ध्वनित विचार होने हैं, एक बटा उठ सप्रयत्न मांसे हुए विचार रहने हैं और एक तिहाई मलाइ के लड्डू की बर्फी बनाकर चोरी दिपाने वाली अभिव्यक्ति की कला रहती है।'<sup>१५</sup>

इसी पुस्तक में लयन के आधार की इस स्पष्ट स्वीकृति के साथ साथ के अपनी

१ हिंदी साहित्य का बहुत इतिहास पण्ड भाग रीतिकाल, रीतिबद्ध काव्य, (सं० १७००-१६०० वि०), ना० प्र० सं० काशी, प० १६६

२ वही, प० १६६

३ मधिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आधार, उमाकांत, पृ० ३

४ वही, प० ३, सं० १५

५ मरी दलिवी का एक पृष्ठ, पृ० ३



सामग्री के मूल स्रोतों का तथा उगम और स्रोत दोनों जीव-जीव का स्वरूप का भी परिचय दे देते हैं— 'मैं कभी कभी उद्योग का सह-साथी तथा भी मगन सुखिनी गोमा को रक्षक कर सता हूँ किन्तु पारिवारिकता का धन म बाहर रहा था तथा हूँ । पारिवारिक जीवों में सामाजिक जीवों का समावेश करना कभी-कभी बड़ी समस्या हो जाती है । ' उन्हीं विचारों का ही स्रोत प्रथम और प्रथम जीवों और जगत है— "मैं बहुत आनन्दान् म उन्हीं का प्रदर्शन म स्वरूप तथा गिद्धात भरे जीवों का क्रियाशील बसाव रहा म सहायता रहा है । "

## २ धनुषाघात के आधार पर निरूपण—

आचार्य श्री काव्यशास्त्र के सम्पूर्ण साहित्य का किसी-न किसी साहित्यिक स्रोत से सम्बन्ध रहा है । सगल द्वारा लिखित गद्य पर भी साहित्य का काव्यशास्त्र का अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । काव्यशास्त्र की 'रत्नप्रिया म १ से १३ प्रकाश म शृंगार प्रकरण का सतत म तथ्य साधित म निरूपण किया गया है जिसका आधार-स्वरूप भागुमिथ को रमजरी तथा प्रियताप का साहित्यदपण बताया गया है । इसमें तथ्य-नायिकाओं का प्रकाश प्रच्छन्न उपभोग का सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत 'काव्यशास्त्र और भावप्रकाश शृंगार प्रकाश से है । काव्यशास्त्र सम्बन्धी चार प्रकार की नायिकाएँ—पद्मिनी चित्रिणी शशिनी और हस्तिनी का लक्षण का निरूपण प्रकृतप्रणीत शृंगारमजरी और श्रीरूपण कवि का मन्तरमन्द चम्पू का संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रयास बनाया गया है । जहाँ अनुमान करना पड़ता है वहाँ अनुसाधिता न आधार प्रथम शास्त्र का प्रयोग किया है । काव्यशास्त्र के प्रयास का बारे में अनुमान करने का विचार है 'कोका पण्डित का रतिरहस्य बल्याणमल्ल का 'अनगरत, ज्योतिरीशरर रचित 'पञ्चसायक और हरिहर का शृंगारदीपिका शायद आधार प्रथम हैं । "

केशवदास ने मुग्धा नायिकाओं के उपभेदों का निरूपण करते हुए नवलवधू नवलप्रमगा और लज्जा प्रहारिनी के लक्षण शिखरात वृत्त रसाजक सुधाकर म निर्दिष्ट नववधू नवकामा और सत्रीडमुरत प्रमत्ता के आधार पर दिये हैं एसा अनुमान किया है । ' मय प्रमत्ता म दम्पति चट्टा वणन का साहित्यदपण कामसूत्र और अनगरत, प्रथम मिलन स्थान का साहित्यदपण और स्वयम्भूतत्व, बाहर रति, 'अन्तर रति' तथा 'अगम्या वणन का कामसूत्र प्रेरणा स्रोत माना गया है । "

१ मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ, प० २

२ वही, प० ६

३ वही, पृ० ३०४

४ वही पृ० ३०५

५ वही, पृ० ३०६

इसी प्रकार चितामणि के ग्रन्थों के अनेक स्रोतों पर प्रकाश डाला गया है। आघार, सहायता, अनुवाद, रूपांतर, ग्रहण, अनुकरण, प्रभाव आदि शब्दों द्वारा तथा कहीं-कहीं पर तुलना द्वारा इन स्रोतों की प्रकृति में सूक्ष्म भेद भी निर्दिष्ट किया गया है— 'चितामणि काव्य स्वरूप, शब्द शक्ति, ध्वनि, गुण और दोष प्रकरण के लिए मम्मट के ऋणी हैं। रस अलंकार विद्यानाथ प्रणीत प्रतापरद्रयशाभूषण पर आघृत है। रस प्रकरण में मम्मट, विश्वनाथ और धनजय की तथा अलंकार प्रकरण में धनजय दाक्षिण की सहायता ली गई है। परंतु शास्त्रीय विवेचन संस्कृत आचार्यों से नहीं है। अलंकार में शाब्दिक अनुवाद के स्थलों को उद्धृत करके समानता की ओर हमारा ध्यान खींचा गया है। यह समानता अपहरण, चोरी अथवा समा नांतरता नहीं कही जायगी इस बात अनुवाद ही कहना होगा। उदाहरण के रूप में चितामणि के कविकुलकल्पतरु में और काव्यप्रवाश में यमक अलंकार का लक्षण शब्दशः मेल रखता है—

अरथ होत अचारयक बरनन को जहँ होइ  
केर धवन को जनम कहि बरनत यों सब कोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३।२१

अर्थ सत्यथभिप्राना वर्णाना सा पुन श्रुति ।

यमकम

॥

—काव्यप्रवाश, ६।८३

उन्होंने मम्मट का गुण प्रकरण हिन्दी में रूपांतरित किया है।<sup>१</sup>

भारते दु क नाटकों का अध्ययन करने पर तथ्य उपलब्ध हुआ कि उनकी विख्यात नाटिका 'श्री चंद्रावली' रासलीला के प्रभाव से विशेष प्रभावित है और बीसवीं शताब्दी में वियागी हरि ने 'श्री प्रेमयागिनी' नाटिका लिखकर उसी रासलीला का अनुकरण उपस्थित किया।<sup>२</sup>

इस प्रसंग में प्रभाव और 'अनुकरण'— इन दो शब्दों के द्वारा स्रोत और साहित्यकारों की प्रकृति का भी संकेत दिया गया है। प्रभाव ग्रहण अलंकार रूप में और लेखक के अनुज्ञान में स्वाभाविक और उसके स्वभाव के अग्ररूप हाता है जब कि अनुकरण प्रयत्नपूर्वक जान-बूझकर होता है और बहुधा अस्वाभाविक हो जाता है।

निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' में कथा-वस्तु को लेकर दो आधार बताये गये हैं<sup>३</sup>— देवी भागवत और 'शिव महिम्न स्तान' ।

१ मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ पृ० ३१४

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (सन् १९००-१९२५ पृ०) श्रीकृष्णनाल, पृ० २००

३ निराला व्यक्तित्व और कृति, पृ० १५६

हिन्दी के एतिहासिक उपन्यासकार श्री वत्सलनाथ वर्मा पर वाल्टर स्टाट का प्रभाव माना गया है।<sup>१</sup> उनके 'मन्तुण्ड' में मुख्य कथा का सूत्र एतिहासिक है, शेष बसकर अर्थ छोटा स समशीत है। उदा० मुगाहिन्जु का सान स्थानीय इतिहास है।<sup>२</sup>

कभी कभी कथा की एक सान या आधार उमरी ही अर्थ रचना हानी है—'नदी के द्वीप का सान अर्थ की सगी पाग पर सान भर का प्रसिद्ध कविता 'नदी के द्वीप पर ही सान है।<sup>३</sup>

(स) दस्तावेजी स्रोत—एतिहासिक कथों में मुख्य स त यही है। इनके अनुसंधानकर्ता को कथानक पद्धति पर उनी सान अर्थयत और सानोचना के साथ करनी पडती है। वह प्राप्त स्रोतों का अर्थी पाठ सन्धिनी में परिशिष्ट में या अर्थ सूची में सकेत देता है। परन्तु साहित्य और सान का अनुसंधान में सान एतिहासिक प्रणाली काम नहीं देती कथानक सान सान को सनी सूची के साथ अपने कथ निर्माण में सुम्पिन कर सता है जिसे पृथक करनी सुशिक्षित हो जाता है।

पट्टे-परवान शिलालाप सानसत उनी सानगी में किसी रचना या सखक का परिचय सुरक्षित रह सकता है परन्तु इनके सान पर कानि साहित्य सजन की प्रेरणा पावे सता निश्चय नहीं।

एतिहासिक घटनाओं का साथ सखर के 'सकितत्व कृतित्व का सम्बन्ध अनेक रूपों में प्राप्त होता है। इतना ही नहीं इतिहास में सप्रप्त तथ्यों का सन्तलन साहित्य द्वारा सम्भव है। परन्तु इसमें सत यह है कि सखर का जीवन-काल में य घटनाएँ घटिन होनी चाहिए और किसी-न किसी रूप में सखक का सान विचार उनसे प्रभा कित होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में सखक की रचना दस्तावेज स भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है। दस्तावेज क जाली हान का सटका रहता है। साहित्यिक रचना में यदि 'पथ्वीराज रासो की सानि प्रक्षपा की भरमार न हो तो वह इतिहास के अनुसंधान में महान उपकारी हाता है।

साहित्य निर्माण में दस्तावेजी स्रोत का एक उदाहरण जायसी के पद्यावत में मिलता है— टाड ने पद्यिनी (या पद्यावती) के पति का नाम भीमसी लिखा है पर सान्नी अकबरीवार ने रत्नासह ही लिखा है, जायसी न यही नाम अपनी प्रेमकथा के लिए चुना है।<sup>४</sup>

१ उपन्यासकार व दावनलाल वर्मा डा० शशिभूषण सिंहल, प० ५

२ वही, प० १३३

३ अर्थ के उपन्यासों की शिल्पविधि—सत्यपाल चुध प० १७०

४ हिन्दी साहित्य का सानोचनात्मक इतिहास, डा० रामभुमार वर्मा, प० ३१८

भाषा की समझ, प्रायः व्यवहार और लोकप्रियता का परिश्रम इन म दरता वही प्रमाण समया य हाता है । सस्कृत विषय म भ्रुम-धान उल्लसनीय है—“सस्कृत का साहित्य सबसे अधिक सम्पन्न था । इस समय सस्कृत ही राजकीय भाषा थी, राज्यकाय इसी म होता था । शिलालेख ताम्रपत्र आदि भी प्रायः इसी म लिखे जाते थे, इनके अनिश्चित यह सम्पूर्ण भारतवर्ष के विद्वानों की भाषा थी, इस कारण भी सस्कृत का प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारत म था ।”

राजा जयसिंह अपने राज्य काय म ‘नापरमा’ और विनामी था, इस तथ्य को विहारी ने अपने दोहे म विना रगामक त्व स बोध लिया है—

‘नहि पराम नहि मधुर मधु नहि विनास महि बाल  
अली बली ही सों बंधो आपे बोन हवाल !”

कवि भूपण ने ‘शिवराज भूषण म म० १७१३ म १७३० तक की शिवाजी के जीवन की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा विजयों उनके प्रभुत्व, आतंक, यश तथा दान आदि का वर्णन है ।<sup>१</sup> उसमें किसी समय का तारीखवार इतिहास या किसी घटना विशेष का प्रसंग वर्णन नहीं है बल्कि घटनाओं का उल्लेख मात्र है । यद्यपि शिवराज भूषण एक अन्तर्गत प्रथम है पर अन्तर्गत की गूढ़ छानबीन करने के लिए यह नहीं लिखा गया । भूषण का उद्देश्य तो बस शिवाजी के यश का अन्तर्गत करने का और उद्देश्य एतिहासिक घटनाओं तथा अन्तर्गत की उन उज्ज्वल चरित्र का अन्तर्गत करने का साधन-साधन बताया है ।<sup>२</sup>

सन १८२७ ई० का विद्रोह त्व के राजनीतिक क्षेत्र म एक महान् एतिहासिक घटना हुआ तब भी भारत के कवीन कविता उसका प्रभाव स मुक्त है । इस घटना ने देश की राजनीति का वर्णन किया और हिंदी प्रदेश म नवीन साहित्यिक चेतना का जन्म हुआ । विद्रोह के पीछे ‘द्वन्द्व’ और भारत के साहित्यिक राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध का कभी एक शान्ति का इतिहास है । परन्तु इसका कोई स्पष्ट प्रभाव हिन्दी कविता पर नहीं दिखता । भारत के नए पर कुछ नही लिखा, मात्र एक प्रसंग म संकेत किया है । यह म भी जो किया गया वह परिमाण म बहुत कम है । हिन्दी साहित्य म इस घटना के वर्णन का अभाव इन के कारणों पर शायद दस्तावेजी अध्ययन सम्भव प्रभाव टाक सकता है ।

कवि रामक कविरामराज यादू त्रिहारीसह, श्री प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय

- १ चन्द्ररदाद्वार उनका काव्य विपिनविहारी त्रिबदी, पृ० ४३
- २ विहारी सतसई २
- ३ शिवराज भूषण, एक प० राजनारायण शर्मा भूमिका तत्त्व श्री देवराज विशारद, पृ० ४५
- ४ वही, पृ० ४६

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाकृष्णन्नाम कवि दुलारे बजरग ब्रह्मभट्ट, छत्रपति सिंह, ज्वालाराय और लोचन-कविया की वाणी में इन प्रसंग का निवरण कुछ कम रूप में प्राप्त होता है।<sup>१</sup> इनमें कवि सेवक दुलारे बजरग ब्रह्मभट्ट, छत्रपति सिंह तथा ज्वालाराय राज्यकुला से सम्बन्धित होने के कारण इन विषय में कुछ तथ्यात्मक परिचय प्राप्त किया जा सकता है और वह मात्र दस्तावेजी अध्ययन या परीक्षण से सम्भव है।

भूषण तथा इन सब कवियों ने अपनी आँसु देगा हाल लिखा है और लोक काव्य में भी सीधा प्रभाव लक्षित होता है। इस प्रकार के स्रोत का अध्ययन समर्थन की दृष्टि से दस्तावेज की अपेक्षा रख सकता है परन्तु काव्य का प्रेरणा स्रोत तो प्रथम स्रोत के स्वरूप का ही माना जायगा। आश्रित कवियों का जीवन का कुछ परिचय दस्तावेजों से मिलता है जैसे कि विद्यापति केशव बिहारी, देव आदि।

ऐतिहासिक, उपासकार बंदावतलाल वर्मा, नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी और जयशंकर प्रसाद ने इस स्रोत का उपयोग अपनी कथा वस्तु में अवश्य किया है— "शिलालेखो, ताम्रपट्टो, महावश मुद्गराक्षस वायुपुराण और बौद्धिकतत्त्व अधशास्त्र से अपनी कथावस्तु की सामग्री का चयन कर प्रसाद ने चंद्रगुप्त के जीवन पर नवीन प्रकाश डाला।<sup>२</sup>

(ग) विवरणात्मक स्रोत—कवि व्यक्तित्व तथा कर्तित्व के विविध पहलुओं में से किसी एक को लेकर—कथावस्तु चरित्र वातावरण, वणन भाषाशली शिल्प विचार, भाव आदि के विविध स्रोतों का अनुसंधान करने लेखक के व्यक्तित्व तथा कर्तित्व में उनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस स्रोत की विशेषता है जानकारी देनेवाले विवरणों की खोज। यह व्याख्यात्मक की अपेक्षा तथ्यात्मक अधिक होता है और व्याख्या के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर देता है।

'प्रेमचंद के नारी पात्र पर अनुसंधान' में प्रारम्भ में प्रेमचंद के नारी पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया और जैसे कथा सामग्री का स्रोत के अर्थ में ग्रहण होता है वैसे प्रेमचंद द्वारा किया गया प्रयत्न ध्यान में रख कर निष्कर्ष दिया—'स्थूलतः प्रेमचंद युगीन नारी को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—ग्रामीण नारी और नागरिक नारी। यह वर्गीकरण इसलिए आवश्यक हो गया है कि तत्कालीन सुधार आन्दोलन एवं युग की बदलती हुई संरचना के परिणामस्वरूप जो नारी चेतना उदबुद्ध हो रही थी उसका क्षेत्र प्रायः नगरी तक ही सीमित था। एक में बहुत कुछ प्राचीन थी तो दूसरे में बहुत कुछ आधुनिक और इस दृष्टि से

१ आधुनिक हिंदी साहित्य (सन १८५०-१९०० ई०) डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्ण्य पृ० २८०-२८६

२ प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डॉ० चन्द्रवर्ती पृ० ६५७

दानो वर्गों की विशेषताएँ सस्कार, परिस्थितियाँ एव प्रेरणा-स्रोतों के अनुसार पथक पथक थी।<sup>१</sup>

प्रेमचन्दजी के जीवन म इन पाथों क आधार का स्वरूप वास्तविक जीवन की अनेक नारियाँ रही ह्यगी जिन्हन लेखक के चित्त पर अपन चरित्र का प्रभाव छोडा हागा, कुछ निजी सम्बन्ध की स्त्रियाँ के गुण-स्वभाव का प्रभाव भी हागा और यथाय जीवन की घटनाओं से प्रेरित हो कर समस्याओं को अपन साहित्य म स्थान दिया हागा। अनुसंधाना शायद इतनी रूढ़ तक क तथ्या का सक्लन नहीं कर पाया है। यह भूतकालीन बातें हान के कारण ऐमे अध्ययन की इच्छा और प्रयत्न के रहने भी प्राय निराशा और निष्फलता ही हाय लगन हैं और तब अनुसंधाना लेखक की युगौन परिस्थितियों का अध्ययन लेखक के जीवन और साहित्य के मद्दम म करके सतोप मान लेता है। इम प्रवन्ध के अनुसंधाना ने यही किया है—  
“प्रेमचन्द का न म सामाजिक सुधार मन्व की सभी थानोलन स्त्री-सुधार पर विशेष बल दे रहे थ।<sup>२</sup> आग चल कर अनुसंधाना ने प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-पात्रा का विभाजन पाच वर्गों म किया है।<sup>३</sup> इनका सम्बन्ध मानव की दिनचर्या से अधिक है और आशिक रूप में अविद्य तत्कालीन राजनीति म—

१ प्रेमिका—प्रेमा विरजन, साफिया, मनारमा रूबिया नारा लज्जा, लला, चंदा, प्रेमा सिनिया जनी, मालती माधवी।

२ परिणीता—सुमित्रा, सुमन, प्रियावती विलासी, कुलसुम, जालपा रतन, निमला मुन्नी, धनिया गार्विणी देवी, रानी सारध्रा, उमा, लीगी।

३ रानी जाह्नवी, रालानी करणा।

४ सुखला, मदुला।

५ गायत्री, क्लामी ध्यारी।

‘समस्यामूनक उपयामकार प्रेमचन्द म समस्या के मूल स्रोत और उनके स्वरूप का अध्ययन तथा उनके प्रति लेखक के दृष्टिकोण तथा समाधान की खोज करन के लिए अनुसंधाना ने मुख्यत पाँच बातों पर विचार किया।<sup>४</sup>

(१) प्रेमचन्द के समय का भारत

(२) प्रेमचन्द युग म मध्यवर्ग की स्थिति

(३) प्रेमचन्द की साहित्य सम्बन्धी मायनाएँ

१ श्रीम अक्स्थी, प० १६

२ वही, प० २१

३ वही प० ५६

४ डा० महेंद्र भटनागर

(४) प्रेमचंद जीवन तथा

(५) मानवतावादी प्रेमचंद

समस्याओं के क्षेत्र और स्वल्प भारतीय स्वाधीनता रियासत और दशो नरेशा, साम्प्रदायिक शक्तिशाली औद्योगिक ग्रामीण जीवन गद्यत वग वध्या वग, विषया, बर्वाहिक और पारिवारिक जीवन के पहलू ।

प्रेमचंद 'उप-यास और शिल्प' में अनुसंधाना के प्रथम खण्ड में 'हिन्दी उप-यास परम्परा और प्रेमचंद', द्वितीय खण्ड में ग्यारह उप-यासा का अ-ययन तथा तृतीय खण्ड में प्रेमचंद का शिल्प विधान पर विचार किया है । शिल्प विधान के अतगत कथा वस्तु चरित्र चित्रण कथोपकथन, देशकाय भाषा शली और उद्देश्य की चर्चा करके लेखक की श्रुटिया और असावधानियों पर भी आलोचना की है । स्रोत की दृष्टि से अनुसंधाना लिखते हैं कि प्रेमचंद ने कथा वस्तु की सामग्री जीवन से ली थी उनका आधार पारिवारिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन था और अपनी कल्पना तथा अनुभवों से सहायता ली थी । लेखक में पूर्ववर्ती धारा के पभाव से कुछ दोष भी लक्षित होते हैं । उदाहरण उप-यास की कथावस्तु में आकस्मिकता, अलौकिकता और अतिशयाक्ति को जोडना ।<sup>१</sup>

बलदेवकृष्ण शास्त्री ने अपने प्रेमचंद और उनका गोदान ग्रथ के पूव भाग में साहित्यिक व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उसमें समवालीन युग का प्रतिबिम्ब देखा गया है तथा उत्तर भाग में 'गोदान' के अध्ययन के सादभ में यथायवाद और प्रगति शील तत्वों की खोज और चर्चा की गई है । तात्पर्य यह कि प्रेमचंद अपने युग से प्रभावित है । लेखक के उद्देश्य का स्रोत वही है जो उनके यथितत्व निर्माण का कथा, चरित्र और भाषा शली का है ।<sup>२</sup>

ईमानदार साहित्यकार स्वयं लावहिनाथ साहित्य निर्माण करता है और चाहता है यह आदश साहित्य जगत में यावहारिक बने । इस आदश से प्रेरित हो कर वह अपने साहित्य में प्रसंगानुसूल चरित्रों के मा-यम से सिद्धात्ता की स्थापना वास्तविक जीवन में करता है । इसकी वस्तु का स्रोत यावहारिक जीवन और जगत होता है । साहित्य में इसके फलस्वरूप आदश यथाय अथवा आदर्शो-मुख यथाय वाद का अत्रतारण होता है । प्रो० नरेन्द्रकोहली ने इस सत्य का अनुभव करके बताया—  
मजनात्मक साहित्यकार अविन-यावहारिक होता है । वह सरस साहित्य तथा शास्त्र के सवध में नवीन रक्त का सचार करता है तथा नवीन सिद्धात्ता के निर्माण एवं प्राचीन सिद्धात्ता में परिवर्तन के लिए आधार प्रस्तुत करता है ।<sup>३</sup>

१ श्री हरस्वरूप माथुर, प० १७६

२ वही प० ४०५ ४१४

३ प्रेमचंद के साहित्य-सिद्धन्त प्रा० नरेन्द्र काहली

आत्म-आत्मिक जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण से जीना के परस्पर विरोधी पक्षा में सन्तुलन, समन्वय और समादिता आती है। और यही साहित्यकार की वाणी से व्यक्त होता है। परन्तु साहित्यकार आत्मिक अतद्धृद् से पीड़ित हान पर अपने साहित्य में या जीवन दशा में वसा समन्वय लान में असमर्थ रहता है। उनके साहित्य का मूल स्रोत, क्यावस्तु और चरित्र घटना और उद्देश्य भाषा और शैली का—सघनशील जीवन हार जोत दुःख दद आदि से निमित्त अतद्धृद् हो जाता है। यह स्रोत स्वरूप में अत्यंत सूक्ष्म है और सार धारण तथ्या की व्याख्या अतद्धृद् के रूप में ही सगन हानी है। निराला 'व्यक्तित्व और कृतित्व' में बताया गया है—  
 "कवि के क्यावस्तु में चरित्र का निर्माण कवि के 'व्यक्तित्व एवं स्वभाव के अनुमूल ही होता है। निराला का जीवन भी धारणिक और नयवर अतद्धृद् का चन्द्र रहा। किन्तु अपनी पुष्पाचित अक्षिता ही उहोने राम के अतद्धृद् के बाद उनमें प्रशिक्षण की।"<sup>१</sup>

आत्मिकारी कवि निराला के अनुसंधान लिखते हैं— 'इनके सघनशील जीवन की हार जोत दुःख दद आदि की भाँवी इनकी अनेक रचनाओं में दर्शा जा सकती है। इनकी तीन प्रौढ रचनाओं में विपत्त और पराजय का स्वर ध्वज्य सुनाई पड़ता है किन्तु उनमें भी कवि युद्ध से विमुक्त नहीं हुआ है। धय न उसका साय दिया।'<sup>२</sup>

साहित्य में व्यक्तिवाद की अवतारणा से क्यावस्तु चरित्र घटना और कभी कभी उद्देश्य भी विविधता और विवरण से विशेष समृद्ध होता है। 'हिन्दी के समझा नाटक के अनुसंधान का' मन् म— ममस्या नाटका का पात्र किसी भी परिस्थिति में सामाजिक और बौद्धिक शूयक के प्राणी नहीं होते—व सम सामयिक जीवन के अति शय प्रबुद्ध मजीव और गभीर सामाजिक हाने है। वे अपने चरित्र और प्रारब्ध पर सामाजिक और आर्थिक परिवेश के दबाव के प्रति अत्यधिक सचेष्ट भी हाने हैं, यही कारण है कि उनके द्वारा अभियन्त विचार उधार लाय हुए म नहीं बल्कि व्यक्तिगत अनुभव और धारणाओं से उमज्जित हुए म लगते हैं।<sup>३</sup>

(घ) सयुक्त स्रोत—एक रचना का तथा एक कवि का 'व्यक्तित्व और सपूर्ण कृतित्व का संबंध अनेक स्रोतों से होता है। इस का अनुमान विलष्ट हाते हुए भी अत्यंत रसप्रद हाता है। मुख्य स्रोत को साजने में अनुसंधान के निगम का और रचना तथा व्यक्तित्व का उम स्रोत से संबंध का विग्रह महत्व है। जिस प्रकार एक मनोविज्ञान वसा तटस्थता का भाव मानव मन की क्रिया का अध्ययन करता है वैसे ही अनुसंधान का अर्थ और लेखक के व्यक्तित्व का बीच तथा अपने और रचना के बीच काफी अंतर

१ स० डा० प्रमनारायण टडन, प० १५६

२ डॉ० धरुचनमिह पृ० २०२

३ डा० विनयकुमार प० १३१



रखना आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन से रचनात्मक कल्पना के रहस्यों का उदघाटन संभव होता है और अच्छे लेखकों को मार्गदर्शन मिलता है। वास्तव में लेखकों की रचना क्रिया आंतरिक है और अनुभव ही उसकी जड़ संपत्ति और मानस प्रक्रिया का रूप धारण करता है। फिर भी साहित्य सृजन में एक मार्गदर्शन से गलतियों और सुधार परिवर्तन के लिए कम अवकाश रहता है। आलोचकों को भी इस अध्ययन से बड़ी मदद मिलती है और अभिप्रायों का वाय प्रशस्त हो जाता है। अतः रचना से संबंधित समग्र स्रोतों की जानकारी प्राप्त होने पर स्वतंत्र रूप से रचना का अध्ययन हो पाता है और उसकी मजबूती योग्यता तथा लेखकों की महानता का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

एक लेखक की एक रचना तथा उसके व्यक्तित्व और संपूर्ण कृतित्व के प्रत्येक तत्त्व का श्रोत एक दूसरे में भिन्न होता है तब एक साथ अनेक स्रोतों का अध्ययन करना पड़ता है। इसके अभाव में एक कृति का भी सम्यक् और सांगोपाग आकलन नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व में विषय में तो यह अध्ययन अनिर्वाह हो जाता है। यथा मथुरीशरण गुप्त के मातंग का यदि अध्ययन करना हो तो उसकी कथा मनु का मूल अंतर्गत वाल्मीकि रामायण मानना होगा। परंतु उम पर आध्यात्म रामायण और गच्छितमानस का प्रभाव भी है। उमिता का चरित्र चित्रण करने में उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र की रचना काव्य की उपात्ता और मनावीर प्रसाद द्विवेदी की कविया की उमिता विषय उपात्ता म प्रेरणा प्राप्त की है। कवेयी का चरित्र चित्रण मनाविचार के आधार पर मौलिक है। मीना का चरित्र आधुनिकता का अंगीकार किया हुआ है। इसमें दश की राजनीति परिस्थितियां तथा आजादी के आन्दोलन का प्रभाव लक्षित होता है। महाकाव्य की प्रचीन शरी का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने नरम सग में विविध छद्म में नवीन गीति-वाक्या की मृत्ति की है। भाव भाषा अत्रंग और रंग में कवि का प्रयत्न प्राचीन-नवीन का समन्वय किया है। उनके 'जयद्रथ वध' में गुणजीन परंपरागत प्रचलित काव्यरूप में अपनी मौखिक प्रतिभा का सम्मिश्रण कर अर्थात् अनेक विधि गानों का उपयुक्त तत्त्व का एका समन्वय किया गया कि एक प्रमुख काव्य की मृत्ति का गर्द। उपात्त समचरित मानस में प्रयुक्त दृष्टिगोचिका छद्म का मन्द गात्रिय और आरूपण मदीयानी में संपन्नतापूर्वक गान दिया। कथानक के लिए उपात्त महाभारत का एक बल ही प्रागट्ट और महत्त्वपूर्ण प्रसंग किया। फिर मुद्गभूमि का चित्रमय चित्रण कारण रंग का अवाध प्रचार और भक्तिभावना का सुन्दर व्यञ्जना नपात्ता का हृदय मां किया और पद्म वध के भीतर ही उमत्त चौत्त मन्वर्ण प्रकट हुए। परंतु दशता गवग महत्त्वपूर्ण अंग इस की भाषा या जा साहित्यिक भाषा हुईं भा अद्भुत गतिपूर्ण और नयनयुक्त थी।<sup>१</sup>

१ आधुनिक साहित्य का विकास (भा १६०० १९२२ ई०) भा० श्रीराम साहू प० १०२ १०३

मथिलीशरण गुप्त के 'यवित्त्व और कवित्व' विषयक अनुमानान में सयुक्त स्रोत के अध्ययन के फलस्वरूप टा० बमलावान पाठक न अनक तथा पर प्रकाश डाला है—“गुप्तजी की नाट्य रचनाएँ द्विवेदी युगीन नाट्य शिल्प को उदाहृत करती हैं। 'लीला' पद-नाट्य पर रामलीला आदि लोक-नाट्य का प्रभाव है। तिलोत्तमा और 'चंद्रहास' संस्कृत की नाट्य-पद्धति में रची गई नाट्य कृतियाँ हैं और हैं पाठ्य-नाटक ही। 'अनघ' में चरित्र चित्रण को लक्ष्य बनाया गया था और संस्कृत के नाट्य शिल्प से स्वतंत्रता ली गई थी, पर वह पद्य-नाट्य है और अभिनय भी। आशय यह है कि गुप्तजी का नाट्य साहित्य साहस्य पाठ्य एव वस्तुनिष्ठ है चरित्र प्रघात अथवा भाव-व्यंजना प्रधान नहीं। इस प्रवृत्ति का गुप्तजी के काव्य पर यह प्रभाव पड़ा कि उनके प्रबंध-काव्यों में भी नाट्य गुणा का प्रवेश हो सका चरित्र चित्रण तथा सवाय-याचना में अभिनय-आत्मक शरीर अपनार्ई जा सकी और वस्तु विषय में प्रसंगा का चयन दर्शाकर शरीर के अनुसार किया जा सका।<sup>१</sup>

साकेत के निर्माण में प्रयुक्त आना का लक्षण न व्यवस्थित रूप में वर्णन किया है। कथा-वस्तु और कवि के जीवन दान का स्रोत का विवरण करते हुए वे लिखते हैं—'सुप्रसिद्ध कथावस्तु का कवि ने ग्रहण तो किया ही पर ऊर्मिला को नायिका बनाकर उसने कथा के स्वरूप का रूपांतरित कर लिया। कवि ने मानस की कथा को अपना मूल-आधार मानकर उसमें ऊर्मिला को प्रधानता प्रदान की है।'<sup>२</sup> आगे साकेत के आधार प्रथा के दो विभाग हैं<sup>३</sup> (१) कथा-वस्तु के मूल स्रोत और (२) जीवन दशा के आधार प्रथ।

साकेत की कथा-वस्तु के आधार प्रथ—

साकेत	संग	४	वाल्मीकि रामायण (आदि-काव्य)
	'	६	तुलसीदास—रामचरितमानस
"	"	१०	भास—स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिभा (नाटक)
'	"	६	भवभूति—उत्तररामचरित'
'	"	१०	कालिदास—रघुवंश
'	"	११	व्यास—महाभारत

इनमें से भास भवभूति और व्यास के प्रथा में कवि के जीवन दशा को आधार प्राप्त हुआ है, प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है। कवि को कालिदास का काव्य तथा तुलसी की काव्य-कला और भक्ति भावना प्रिय है। गुप्तजी के शब्दा में—

१ मथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, प० १६७

२ वही, प० ४०४

३ वही, प० ४०५-४१०

'तुलसी के चरणों पर मैं गिर रगता हूँ और रातिदास वा गिर पर रगता हूँ। इस रचना में 'मानस और अध्यात्म रामायण' भी प्रत्यक्ष आधार है। वशि ने महाभारत का प्रभूत प्रभाव प्रष्टण किया है, पर वाचना और उदाहरण सहित अनुमथात प्रस्तावित करे हैं—

कारण—

(१) एकादश सप्त वषणारमा है और उगम गुदादि का वषण प्रथा है, अतएव महाभारत का प्रथम व्यास की स्तुति की गई है।

(२) वशिष्ठा म तपि वा द्वारा हनुमान का संकेत भी है जो राम-वचन के मुख्य वचन हैं।

(३) पास वेद-पुराण के विधाना हैं और घम नीति तथा इतिहास के प्रवृत्ता।

किर तथ्य, तथ्यावधान और प्रमाण वा बाद विष्णु देवर स्थापित किया गया है—'गुप्तजा न 'याम वा ग्रथ से वाच्य विषय लिए अपने जीवन दशन का निर्माण किया तथा भावुकतामयी नतिवता का काव्य प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया।'

वाच्य में मत्र सान परम्परा से भूलनाल स और प्रथा स ही नहीं लिए गये युग और वातावरण के प्राप्ति नतीन साना का उनसे सम-वम भी किया गया जो मात्र वशि की प्रतिभा का परिचायक है— नवम गम के प्रगीन वस्तुमयी गीत पद्धति में नहीं रचे गये उनमें तनीन प्रगीतिया का शिल्प व्यवहृत हुआ। प्राय सभी गीत आत्मभिन्निकेशमयी रसा के उदाहरण है। पर उगम दो भाव वाग्राभा का समम हुआ है। त्रियागिनी नादिया वा मर्कानमम्पूण चित्र रीतिवाच्य का श्रुगारी कवियों के तयार किया था। ऊर्मिता का चित्र वही नहीं है पर साना वही है। साना पुराना है और कानना द्वय गया। ऊर्मिता का त्रिभ नये युग की दन है। उसमें अन्तत त्तिया का प्राधाप विरह तान प्रथवा वृशना सम्बन्धी ऊहाया की 'यूनता, म्यून सौदय भावना का परिस्थान तथा सूम्म आत्मानुभूतिमयी 'यजना आरि नतीन का त युग सति नहिंत है।'<sup>२</sup>

साकल की भाव 'याना का मूत्र सौन कवि के जीवत और 'यकित्व से सम्बन्धित है—'साकेत विचार प्रदान या दासनिन रचना नहीं है वह भावनाशील काव्य है। कवि की भावुकता मासिक स्थाना का चयन तथा उसके 'सापार शाधन में परीणित जाती है। गुप्तजीन अतिरिक्त भावुकता प्रकट की है जो उनकी पारिवारिक क्षेत्र-नीमा का परिणाम है, पर उसका एक कारण और है। स्वय गुप्तजा का कथा

१ मधिलीशरण गुप्त 'यक्ति और काव्य प० ४१३

२ वही, 'नतीन और प्राचीन उपकरण, प० ५६१

है कि व उत्तेजना अथवा आनन्द की स्थिति में ही प्रायः काव्य रचना करते हैं।<sup>१</sup>

साकेत के चरित्र चित्रण में एक महत्त्वपूर्ण आत कवि के आदर्शों का अनुसंधान न बताया है।<sup>२</sup> यह प्रसारान्तर स प्रेरणा के आत में भी गिनाया जा सकता है और हमका सम्बन्ध कवि के आंतरिक जगत से होने के कारण मौलिकता में भी इस स्थान दिया जा सकता है। कवि की भाषा के मूल प्रोन पर प्रकाश डालते हुए डा० उमाकांत लिखते हैं— 'हमारे कवि ने भारत-दुःखानु हृदिचन्द्र द्वारा प्रवर्तित श्रीधर पाठक द्वारा अनुमोदित तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा परिष्कृत खड़ीवाली का काव्य भाषा के रूप में ग्रहण किया जिसका वाश मुद्रयन सस्कृत प्रकाश ही है। अक्षरानुमूल व्रज उद्गू और अगजी शब्द भी गहीत हुए हैं।'<sup>३</sup>

इस अनुसंधान ने भी डा० कमलाकांत के प्राचीन नवीन समकाल की स्थापना का स्वीकार किया है।<sup>४</sup> इसको साम्प्रतिक ज्ञान भी कहा जायगा क्योंकि परम्पराओं में सस्कृति अभियन्त हाती है। नवीनता का समकालात्मक दृष्टि से प्रयाग मौलिकता के अतगत रखन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

इन दो अनुसंधानों का तरह दानवहादुर पाठक 'वर' ने भी मधिलीशरण गुप्त के सम्पूर्ण साहित्य का अनुसंधानात्मक अध्ययन कर उसके समग्र ज्ञान पर प्रकाश डाला है। गुप्तजी के प्राचीन-नवीन समकालात्मक दृष्टिकोण को वे भी मानते हैं। उन्होंने अलंकार विधान, छन्द योजना, रस योजना प्रकृति चित्रण चरित्र चित्रण प्रवचन शिल्प के अतिरिक्त तुलसीदासजी और गुप्तजी की तुलनात्मक चर्चा भी की है।

अलंकार विधान—साकेत में गुप्तजी के कवि जीवन का पूरा वभव मिलता है। अतः उसका क्लेश अलंकृत है—उसका काव्य श्रीमदित। साकेत की रचना दीर्घ काल में हुई है, अतएव इस बीच हिंदी काव्य में अनेकानेक का जितनी विविधता एवं नव नतनता का माय ग्रहण किया गया उन सबका किसी न किसी अंश में साकेत पर प्रभाव अवश्य पड़ा है।<sup>५</sup>

छन्द-योजना—साकेत की छन्द योजना प्रौढ़ है। उसका चयन प्रसंग के अनुसंधान किया गया है। मानिक और वर्णिक दाना प्रकार के छन्द का व्यवहार हुआ है। साकेत में कवि ने हिंदी में साधारणतः प्रचलित लगभग सभी छन्दों को अपनाया है। विरह की कोमल भावनाओं के लिए गीता का प्रयाग किया है।<sup>६</sup>

१ मधिलीशरण गुप्त 'नवीन और प्राचीन उपकरण', पृ० ८६४

२ वही, पृ० ४४३-४४४

३ मधिलीशरण गुप्त 'कवि और भारतीय सस्कृति के आर्याता', पृ० २६८-२६९

४ वही पृ० ४६४

५ मधिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दानवहादुर पाठक 'वर', पृ० २६१

६ वही, पृ० २६६-२७१

रस-योजना— वह उच्चात्युच्च कोटि का भावुक है। काव्य में रस की स्थिति और महत्त्व का उस पूरा परिज्ञान है। इसलिये साकेत में उसने यथासम्भव सभी रसों की अवतारणा बड़ी सावधानी से की है। उस जीवन के ममरयलो की पहचान है और मानव मन की गहराई में उतरने की क्षमता भी।<sup>१</sup>

प्रकृति चित्रण— साकेत मानवीय चरित्र प्रधान काव्य है, इसलिए प्रकृति चित्रण की दृष्टि से समृद्ध नहीं। प्रकृति के कतिपय रूपों का जो कुछ भी अंकन हुआ है वह कवि के प्रकृति प्रेम का परिचायक न होकर मानव प्रवृत्तियों का उदघाटक अधिक है।<sup>२</sup>

चरित्र चित्रण— साकेत चरित्र प्रधान रचना है इसीलिए उसका कथा पक्ष दुबल हो गया है। साकेत की रचना भक्ति भावना के पाय साथ कुछ पात्रों के चरित्र का विशेष रूप से प्रकाश में लाने के उद्देश्य से हुई है। इन पात्रों में ऊर्मिला और ककेयी का नाम शीघ्र पर है।<sup>३</sup>

प्रबंध शिल्प—अनुसंधाता ने संस्कृत के शास्त्रीय लक्षणों तथा आधुनिकयुगीन महाकाव्य के लक्षणा की बसोटी पर साकेत को परतल पर अनुभव किया कि वह पूणतया किसी एक या समन्वित रूप से इन दोनों का आधार ग्रहण नहीं कर पाया है। प्राचीन नवीन स्रोतों की सहायता लत हुए भी कवि ने अपनी निजी धारणाओं के आधार पर इसकी रचना की है। फलस्वरूप साकेत महाकाव्य न होकर महान काव्य बन गया है।<sup>४</sup>

सयुक्त स्रोतों के आधार पर हिंदी में अनेक प्रबंध लिखे गये हैं— गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य,<sup>५</sup> प० प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य,<sup>६</sup> समीपक प्रवर श्री रामचंद्र गुप्त<sup>७</sup> आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व एवं साहित्य<sup>८</sup> आचार्य नन्ददुर्गराज वाजपेयी व्यक्ति और साहित्य<sup>९</sup> हिंदी साहित्य का नया इतिहास (प्रमनारायण टंडन)<sup>१०</sup> निराना व्यक्तित्व और

१ मधुलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दादरहादुर पाटक वर प० २७६

२ वही, प० २८३

३ वही, प० २८४

४ वही प० ३२२

५ डा० नरयणसिंह

६ डा० सुरेशचंद्र गुप्त

७ श्री गिरिजान्त गुप्त गिरिग

८ डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त

९ स० डॉ० रामाधार शर्मा

१०: श्री राजेन्द्रमोहन धर्मदास

वृत्तित्व<sup>१</sup> आदि ।

इस स्रोत का अध्ययन में निम्ननिम्न बातों से अनुसंधान का परिचित होना आवश्यक है—

१ लेखक का पुस्तक-संग्रह—य पुस्तकें लेखक ने खरीपी हैं, किमी से मांगी हैं या उपहार में प्राप्त हुई हैं। लेखक की डायरी पत्र डॉक्यूमेंट पुस्तकालय का खरीद की सूचना या विवरण, लेखक के पुस्तकालय का केंद्रनाम ।

२ पत्र-पत्रिकाएँ जिन्हें लेखक पढ़ने के लिए प्राप्त करता है अथवा अलग-अलग पढ़ता है उनकी व्यवस्थित सूची न हो तो अनुसंधान को जटिल कर देता है।

३ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़ी गई हैं चाहे वे किसी भी व्यक्ति या संस्था की हों ।

४ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़ी जाननी सम्भावना है ।

५ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़ी जाने का अनुमान है ।

६ लेखक ने कौन सी पुस्तकें पढ़ी हैं और बाद में कौन सी रचना लिखी, इस जानने की दृष्टि से लेखक के जीवन का अध्ययन ।

७ लेखक द्वारा प्रभाव-स्वीकृति या तत्-विषयक संकेत ।

८ लेखक के परिवार, मित्र-मंडल आदिने शाब्दिक और वातावरण का परिचय ।

९ जिस युग में लेखक का जीवन बीता है उसका और पूर्वकालीन तथा समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं का परिचय ।

१० लेखक के समय में प्रचलित परम्पराओं का सांस्कृतिक अध्ययन तथा युगीन परिस्थितियों की जानकारी । उदाहरण—धार्मिक सामाजिक आर्थिक राजनैतिक आदि ।

११ विदेशी साहित्य से लेखक का सम्पर्क है तो उसका परिचय ।

१२ लेखक वर्तमान में जीवित न हो तो उसका समकालीन तथा परवर्ती साहित्य और साहित्यकारों पर उसका प्रभाव । यह लेखक के स्रोत का अध्ययन होगा परन्तु अमुक लेखक आगे किस रूप में स्रोत का रूप धारण करता है इसकी सप्रति जानकारी अवश्य देना और स्रोत की अविरोध परम्परा प्रमाणित होगी ।

ऊपर निर्दिष्ट प्रश्नों में भूल ही इन सबका निर्वाह न मिले पर महत्त्वपूर्ण अनेक तथ्यों का इनमें संकलित कर उनकी व्याख्या की गई है जिससे लेखक के व्यक्तित्व और वृत्तित्व का मूल्यांकन करने में और समग्रता के दशन में अनुसंधान को सरलता का अनुभव किया है । यथा अनुसंधान राजेन्द्रमोहन अग्रवाल ने लेखक

प्रतापनारायण टंडन का अध्ययन करके बताया—'लेखक का साहित्य में बाल्यकाल से ही रचि थी। शन शन इसका विकास हुआ। समय बीतते बीतते देशी विदेशी साहित्यकारों की रचनाओं से उनका परिचय हुआ। थोड़ा साहित्यिक कृतियां उनका मन में एक विचित्र अनुभूति जागृत करती थी। साहित्य सज्जना की प्रेरणा में लेखक का कोई एक विदुषः ही जीवन के बहुलकी पक्ष में। सामाजिक विडम्बना ने उस भ्रमभोर दिया था, दैनिक सामान्य जीवन में अनेक अप्रत्याशित परिणतियों ने नई प्रेरणा दी और उन पर लिखने की विवश किया।

लेखक की प्रेरणा प्राप्ति दो प्रकार से हुई—क्रियात्मक रूप से और प्रति क्रियात्मक रूप से। क्रियात्मक रूप से प्राप्त होने वाली प्रेरणा लेखक के स्वभाव और विचार रचि संस्कार शिक्षा दीक्षा आदि के अनुकूल थी। लेखक के व्यक्तित्व पर अनुकूल प्रभाव डालने वाला में मुख्यतः भारत में मथिलीशरण गुप्त महाशय वरमा और सुमित्रानन्दन पन्त है तथा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले निराला, अरुण प्रमचद तथा जनार्दन है।<sup>१</sup>

अनुसंधान ने दो प्रेरणा स्रोतों का उल्लेख करके किया है— लेखक का साहित्यिक जीवन गत साधना और कठिन तपश्चर्या का परिणाम है। अनवरत साहित्य-सागर का भ्रमण करके जिन भाव रत्नों का निखाला है उनमें अपनी प्रतापी चमक है निराली आभा है अभी आभा जा ग्लान्ता की प्रकृति है। फिर भी उसी पूर्णतया प्रभावहीन नहीं कहा जा सकता। बाद भी यन्त्रि आगपास का धातावरण पुष्पक प्रणयन से उन्मूलन विचारात् प्रभाव से अत्रुता नहीं बचता 'युनाधिक प्रभाव पट ही जाना है अथवा सम्भवा गिष्ता शब्द ही मिट जायें। डॉ० प्रतापनारायण टंडन भी समान अन्वय नया है। उन्मूलन युग चतता का सम्पादन किया विष्णु भ्रमण किया देशी विदेशी साहित्यकारों ने सम्मान में आय और उनका साहित्य का अध्ययन किया। प्रभात का निष्ठा स्रोत में स्त्रीफन सिद्ध, शर्मपिपर एण्डन चयन अलवर्णों मानविद्या गुम्नाव पनावपर तथा इलियट हैं।<sup>२</sup>

अनुसंधान ने प्रभाव स्वीकृति विषयक सगन का टिप्पणी का अगन प्रबन्ध में उद्धृत कर अपनी स्थापना का समर्थन किया है— य इन कथाकारों की रचनाओं की प्रशंसा करते हैं।<sup>३</sup>— इनकी रचनाओं में गहनता विचार एवं गुच्छक रूप में गुध रहते हैं और भाषा भास तथा शिल्प का आदरव्यजनर सगटन रहता है। निमा बटी बात का कहने के लिए उनका हा बडे धरतल का निमाण करते हैं और अपनी

१ मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—गाननहादुर पाठन वर' प० ५०

२ वही प० ५०

३ वही, प० ५१

विच्छिन्न वात को बहान के त्रिण वातावरण तयार करके ही उसे कहते हैं, फिर यह होना है कि उसका प्रभाव पाठक पर मफल पडना है एव पाठक उस वात पर, बहान के ढग पर मुग्य हो जाता है। इतना होने हुए भी इनकी सूची यह है कि कहीं कोई शिथिलता नहीं आती और पत्न में आकषण पूर्ववत् रहता है—गतिरोध नहीं होता। इस उद्धरण में सस्पश न प्रभाव का जिस रूप में ग्रहण किया उसका यथा-तथ्य वर्णन है। इस लक्ष्य पर भारतीय साहित्य का प्रभाव “आदिकवि वाल्मीकि महर्षि बदायास कालिदास बाणभट्ट तुलसीदास रवीन्द्रनाथ शरतचन्द्र तथा प्रेमचन्द्र द्वारा पडा। आधुनिक भारतीय साहित्यकारों में “जनेन्द्र, अमृतलाल नागर भगवतीचरण वमा यशपाल अनेय तथा डा० देवराज’ का उन पर प्रभाव लभित होता है।<sup>१</sup> इसके अनादा लक्ष्य न स्वयं साम्बन्धिक प्रभाव की प्रक्रिया का निजी अनुभव वर्णित किया है।<sup>२</sup>

इन प्रभावों की चर्चा करते हुए अनुसंधाता न लेखक व साहित्य में उपलब्ध समग्रता को देखकर अनुभव किया कि प्रभाव नृष्टि से दशो विदेशी का आनुपातिक या तुलनात्मक स्तर और स्थान निर्धारण करना कठिन है।<sup>३</sup>

(२) मौखिक और अनिश्चित स्रोत—रचना के सदा में महत्त्वपूर्ण संपूर्ण साहित्य का हम ज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके अतगत पत्र-पत्रिकाओं द्वारा और तत्सम्बन्धी संपूर्ण शास्त्रों द्वारा जानकारी पान का प्रयत्न किया जाता है। इस ज्ञान का कोई निश्चित रूप नहीं हो सकता। अनेक अल्पनीय सदस्य प्रकाश में आना संभव है। अनुसंधाता का रचना से संबंधित युग का सम्यक अध्ययन आवश्यक सदस्यों के आधार पर करना चाहिए जिससे वह निश्चित और सतोपप्रद परिणाम प्राप्त कर सके। परिणाम पहले से निर्णय नहीं हो सकता। प्रारम्भ में अनुसंधाता को व्यक्तिगत अनुभव में उनकी उपलब्धि हो ऐसा भी संभव है। इस स्रोत में लाकमत्त का स्थान महत्त्वपूर्ण है। लेखक अपनी रचना का मूल ज्ञान से विच्छिन्न करके उसकी मूल प्रकृति व विस्तृत उस रूप देता है और उसकी रचना लाकप्रिय हो जाती है एसा भा देवने में आता है।

कभी-कभी रचना का मुख्य ज्ञान तथा उसमें दिया गया विवरण व्यक्तिगत होता है। इस व्यक्तिगत तत्त्व का उमम में अलग कर देन पर प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि हाती है या दस्तावेजी की। उसमें वार्तालाप का तत्त्व मौखिक ज्ञान का रूप है। फिर भी ऐसे प्रसंगा में व्यक्तित्व की प्रधानता से प्रभाव लभित हान के कारण अन्य रूप में उसका वर्गीकरण संभव नहीं है। व्यक्तिगत सस्पश का प्रभाव

१ मथिनीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दानवहादुर पाठक वर प० ५३

२ वही, प० ५१

३ वही, प० ५२



साहित्यिक प्रभाव का गमनागमना बना रहना है यद्यपि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में प्रलक्षित रूप से भी अनेक प्रयोग सात ता पाये जाते हैं। अनुसंधान प्रकार का साहित्यिक के पाठ्य अनुसंधान श्रेणी का हान है। रचना की दिग्गता का मूल मूल उन पर भी आधारित हो सकता है।

रचना में चरित्र पात्रों के मूल में भी वास्तविक जीवन का व्यक्तिगत सात का रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। उदाहरण के लिये म. मा. नी. या रास्ते चलता कोई भी आदमी चलनायक हो सकता है जहां कि जीवन में स्वाभाविक होता है। हत्या के गंभीर काम में किसी निम्न स्तर का सामान्य आदमी को नियुक्त न करने की सूझ से प्रेरित हो कर किसी त्रिगिण्ट चरित्र की मान्यता में प्रचलन हो तो आश्चर्य नहीं। किसी कामकी दृष्टि में या सात में व्यक्त त्रिगिण्ट भाव या विचार से लक्ष्य की अदम्य आत्मानुभूति की एवता हो। पर तत्काल रचना का स्तरे रूप में स्वीकार करना चाहिए। य सात सात मौलिक या अनिश्चित हान हुए भी सात के भावना मय जीवों का अनिश्चित अग्ररूप में अमिड बन रहते हैं। इन स्रोतों का पता सीधे स्पष्ट रूप में न मिलता पर लक्ष्य की रचना प्रशिक्षण और उमकी भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा का मनाविज्ञापन करना आवश्यक है।

महान से महान लक्ष्य को भी अपने साहित्यिक निर्माण में लोच रचि का ध्यान स्वेच्छा से या अनिच्छा से भी रहना पड़ता है। प्रायः साहित्यकार की महानता का कारण अनायास लोक जीवों से उगा साहित्यिकी सुमंगति है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के लिए अनन्य ध्याता से सामग्री ग्रहण की परंतु उनका समन्वय करते समय उन्होंने बहुत कुछ परिवर्तन अपने समय की लाव रचि और साहित्यिकी रुढ़ि के अनुसार किया।<sup>१</sup>

‘प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक’ के अनुसंधान ने लेखक की रचनाओं के अनन्य स्रोतों में लोक विश्वास को एक महत्त्वपूर्ण सात बताया है। उन्होंने किसी भी काल की सभ्यता के इतिहास के लिए शिला लयादि प्रमाणों का अर्थार्थ बताया है— इतिहास किस मध्य प्रमाण कहता है वह इतना कम है कि केवल उसके आधार पर इतिहास की रूप रखाए भी नहीं बन सकती विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से भारत, मिस्र, यूनान, रोम और चीन के इतिहास का आधार केवल शिला लेख नहीं हैं बल्कि प्राचीन साहित्य और पौराणिक कथाएँ और किंवदंतियाँ लोक विश्वास एवं रीति रिवाज भी हैं। यदि इन्हीं कथनों को और स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो ‘सिंधु की घाटी की सभ्यता’ का अतिरिक्त अथ सभी प्राचीनतम सभ्यताओं का ऐतिहासिक आधार प्राचीन अप्रामाणिक ग्रंथ और ऐसी लाव कथाएँ ही हैं, जिनको कालान्तर में लिपिबद्ध कर ऐतिहासिक मान लिया गया।<sup>२</sup>

१ गोस्वामी तुलसीदास, रामचंद्र गुप्त, पृ० ७४

२ डा० जगदीशचंद्र जोशी, पृ० २

इस उद्धरण में उल्लिखित सौन का स्वरूप अनिश्चित और मौखिक है, फिर भी सांस्कृतिक साहित्य का आधार है—'पुराण महापुराणों के धार्मिक दार्शनिक प्रवचन, समाज के नियामकों के आदेश दक्ष एवं प्रतिभाशाली राजनीतियों के राजनीति-सम्बन्धी विचार तथा प्राचीन कविताएँ एवं नाटककारों की रचनाओं के रूप में अथवा सहायक उपकरण उपलब्ध हैं। ये उपकरण सांस्कृतिक इतिहास के आधार हैं।'<sup>१</sup>

यह सौन अनिश्चित प्रकार का हो चुका भी लोक जीवन का सत्य है—“इस सत्य के दर्शन एक ओर तो हम काँच पाय में हात हैं और दूसरी ओर अथवा लोक विश्वासों में। काँच पाय नाटकीय पाय भी कहा गया है। नाटक, महाकाव्य अथवा उपन्यास सभी में शिव और अशिव, सत और असत के संघर्ष में सदा शिव की ओर सत की ही विजय होना चाहिए जिससे अच्छे व्यक्ति शिव और सत की ओर प्रेरित हो बुरे व्यक्ति भयभीत हों। भारत का सांस्कृतिक दृष्टिकोण सदा ही मानवाचिन गुणों के विकास के लिए ही प्रवर्तमान रहा है। काँच पाय का सम्बन्ध नाटककार से न जोड़कर लोक जीवन या दर्शन से जोड़ना चाहिए। यदि नाटक में यह काव्य पाय नहीं मिला, चाहे प्रच्युत रूप में ही क्यों न हो तो नाटक के प्रसिद्ध होने पर भी उसमें कुछ काँच भरा ही रहेगा। वस्तुतः नाटककार को अनजान भी लोक जीवन का यह सत्य स्वीकार करना ही पड़ता है।”<sup>२</sup>

आञ्चलिक साहित्य का मुख्य सौत लोक जीवन है—जिन उपन्यासों में किसी विशिष्ट प्रदेश के जन जीवन का समग्र विभ्रान्तक चित्रण हो उन्हें आञ्चलिक उपन्यास कहा जाता है। धर्म विशेष की संस्कृति सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक आर्थिक तथा भौगोलिक स्थिति का चित्रण आञ्चलिक उपन्यासों की विशेषता होती है।<sup>३</sup>

धुमकड लख के साहित्य में इस सौन का इतना अधिक प्रभाव रहता है कि सत्य द्वारा विशेष चलेख के अभाव में हम निश्चित रूप से किसी भी उत्स से उसका संबंध नहीं जोड़ सकते। पं० राहुल साठुत्यायन धुमकडों के शीर्षकों में और विश्व के अनेक देशों की यात्रा उद्घाटन की थी। इस के अतिरिक्त राजनीति, धर्म, और इतिहास से उनका प्रेम था तथा वे कद भाषाओं के जाता थे। उद्घाटन दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषाशास्त्र, विज्ञान, समाज शास्त्र, राजनीति, साम्यवाद, उपन्यास, एकांकी, यात्रा-वर्णन, संस्मरण, जीवनी और विवेचन—इन सब क्षेत्रों में

१ डा० जगदीशचंद्र जाशी, प० ६

२ वही, प० ४८-४९

३ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, राधेश्याम कौशिक 'अवीर', प० १३



शक्ति प्रवृत्त होती है।

ग्रथ— गुप्तजी ने 'भारत भारती' के प्रणयन में प्रेरणा स्रोत को स्पष्ट स्वीकार किया है— 'मुझसे टाली' के ही ढंग पर गुप्तजी के मित्र कुरी सुदौली के अधिपति ने एक कविता-गुप्तक हिन्दुआ के लिए लिखन का अनुरोध किया था।"

यक्ति गुप्तजी की मुख्य प्रेरणा मूर्ति आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी थे जिन्होंने गुप्तजी की काव्य प्रतिभा के बीज का मारी रखभान और विकास की संपूर्ण प्रक्रिया के साथ उस पल्लवित-पुष्पित और फलित किया— काव्य के क्षेत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का सबसे बड़ा काम मधिलीशरण गुप्त का निर्माण था। गुप्तजी की सारी कविता उनकी जीवन-व्यापिनी साधना द्विवेदीजी के आदर्शों पर अवलंबित है और इन साधना ने हम कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण चीजें दी हैं।"

महान प्रतिभाशाली लेखक को प्रेरणा देने वाले मन्त्ररूप में हो सकते हैं और छोटे यक्ति या प्रसंग भी ज्ञान हैं। आदिकवि वाल्मीकि को सारंग-मुगल की मार्मिक विरह-वेदना से प्रेरणा मिली। सूरदामजी पहले घिघियाते हुए हीन भाव से ग्रस्त आत्मभाव के पदा की रचना करते थे। महाप्रभु श्री वल्लभाबाय की प्रेरणा ने उनकी भक्त-कविता का शिरोमणि बना दिया और नवधा भक्ति संवितित उत्कृष्ट काव्य का निर्माण हुआ। संपूर्ण पुराणा उपनिषद् और ब्रह्म सूत्र के प्रणेता वेदव्यास ने भागवत की रचना नारद मुनि की प्रेरणा से की। महादेवी वर्मा की कहानियाँ की प्रेरणा मूर्ति उन कहानी के मुख्य पात्र ही रह गे और 'शु खला की कहियाँ की प्रेरणा, भारतीय नारी जीवन। दिनकर ने कुम्भेश्वर की रचना में कुछ हद तक प्रतिनियतात्मक भाव से गांधीजी के अहिंसक जीवन-दशक से प्रेरणा पाई। भारत पर चीन के आक्रमण के प्रसंग ने व्यापक रूप से भारत के कविता को वीरता और देश भक्ति में ओत प्रोत रचनाएँ लिखने को प्रेरित किया। निरानाजी ने तन की पकौड़ी लिखने में महादेवी वर्मा के यहाँ पकौड़ी खाते खाते प्रेरणा पाई और 'कुकुरमुत्ता लिखने में राजमहल की मालिन के बानक की 'कुकुरमुत्ता विषयक तीव्र लालमा में हरिजीधजी के 'ठठ हिन्दी का ठठ' में उनका हिन्दी प्रेम प्रेरणा बना था।

आज्ञा मधिल कवि विद्यापति ठाकुर की अनेक रचनाएँ राजाना से प्रेरित थी— 'भू-पत्रिमा महाराज दर्वासिंह की आज्ञा से पुरुष परीक्षा महाराज शिवसिंह की आज्ञा से 'नियन्तावली' राजपनीजी के राजा पुराणित्य की आज्ञा से, शशसवस्वमार और 'गयावापवाकनी' महाराज पदमसिंह की स्त्री दिश्यागदवी की आज्ञा से तथा 'दुर्गाभक्तिरगिणी महाराज भर्गवांग' की आज्ञा से निम्नी गई थी।'

१ मधिलीशरण गुप्त रचित और भारतीय मस्कृति के आध्याना,

डा० उमाकांत पाठक पृ० १३

२ वही पृ० १५

३ विद्यापति ठाकुर, महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र पृ० ७२-८८

अनुभव 'वचन का परवर्ती वाच्य' में लिखा गया है—'कविता नियमों की प्रेरणा साधारणतः दो प्रकार से प्राप्त होती है। एक तो धक्के जोर भटके के रूप में और एक धीमी धीमी आँच के रूप में कुछ प्रेरणाएँ ऐसी होती हैं जो बहुत बाह्य तीव्र और वेगमयी होती हैं। उनका प्रभाव इतना तात्कालिक होता है कि कवि उससे ऊपर नहीं सबता उससे प्रभाव के कारण तत्काल ही कुछ लिखता होता है। युद्ध अकाल महामारी आदि ऐसी ही प्रेरणाएँ हैं। लेकिन एक प्रेरणा ऐसी भी होती है जो इतने बाह्य और स्थूल रूप में सम्मुख नहीं आती लेकिन धीरे धीरे कलाकार के मन में रस बस जाती है और इस प्रकार उसकी चेतना को इस कदर जाच्युद्ध कर लेती है कि उससे प्रभाव मडक से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। तब बहुधा उससे कारण सृजन का रूप और स्तर निर्धारित होता है। इस प्रकार की प्रेरणा कवि के व्यक्तित्व का अंग हो जाती है।' 'वचन के अंग का काल' में प्रथम प्रकार की प्रेरणा है।'

बाह्य प्रेरणा प्रेमीजी को ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणा देने वाली उनकी बहुत लज्जावती है। उन्होंने स्वयं लिखा है— पञ्जाब में पान की बसुरी और कम का शरा फूँने वाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य में हिंदी और उर्दू तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के साहित्य में हिंदुओं और मुसलमानों को अलग करनेवाला साहित्य तो बहुत बन रहा है उन्हें मिलाने का प्रयत्न बहुत थोड़े साहित्यकार कर रहे हैं। तुम्हें इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रखकर मैं 'रक्षाबंधन नाटक लिखा। 'शिवा साधना' के रूप में इस दिशा में मेरा यह दूसरा पग है।'

आंतरिक प्रेरणा एक ही व्यक्ति का विषय या प्रसंग भेद से प्रेरणा करने वाले निमित्त अलग अलग हात हैं। यह नियम नहीं है कि जिसे आंतरिक प्रेरणा होती हो वह बाह्य प्रेरणा को स्वीकार न करे या बाह्य प्रेरणा से प्रेरित हो कभी आंतरिक प्रेरणा न होती हो। प्रेमीजी को दोनों प्रकार की प्रेरणाएँ मिलती थीं। प्रेमीजी को अपने ही भीतर से नाटक लिखने की प्रेरणा मिली है उनका व्यक्तिगत जीवन ही उनके नाटकों का प्रेरक है। दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियों से भी उन्हें प्रेरणा मिली। जिस देश भक्ति ने हिंदुत्व का रूप धारण करने भारतेंदु को प्रेरित किया, जो आय सांस्कृतिक चेतना के रूप में प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने 'प्रेमी' को हिंदू मुस्लिम एकता का चोगा पहनकर प्रवाण दिताया।'

१ डा० श्यामसुन्दर घोष, प० १४ १५

२ हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक कुमारी सरला जोहरी प० १६  
( 'शिवा साधना' की भूमिका में उद्धृत )

३ नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व

श्रावण महाकवि 'हरिजीव' के चौपदों का मूल प्रेरणा-स्रोत उनका आदर्श था— 'यदि हिन्दुओं और मुसलमानों का सांस्कृतिक सम्मिलन किसी भी क्षेत्र में सबसे पहले संभव है तो वह साहित्य क्षेत्र ही है। यदि साहित्य में कौरी नकल को प्रोत्साहित न करके हम मूल्यवान् आदान-प्रदान का स्थापना करेंगे तो उभय पारस्परिक सहानुभूति और एक-दूसरे के प्रति आदरभाव की वृद्धि होगी। इस दृष्टि से हरिजीवजी इस दिशा में अग्रसर हो कर साहित्य निर्माण का एक नूतन ही उपयोगी किन्तु अत्यन्त कठिन द्वारा उपलब्ध विभाग की ओर कार्यरत हुए। हरिजीव जी के इन प्रयत्न का राष्ट्रीय मूल्य न भी स्वीकार करें तो हिन्दी साहित्य के भीतर दैनिक जीवन में व्यवहृत बोलचाल के मुहावरों के प्रति उदासीनता का कारण साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा में गड़ी निम्न-वर्णित शैली व्यवहार को रोका तथा खड़ी बोली कविता की आकाश-गणिनी कल्पना-शक्ति को उभयों के घामने और वास्तविकता की याद दिवाने का श्रेय हरिजीवजी को देना ही पड़ेगा।'<sup>१</sup>

इस आदर्श में निहित भावना कई रूपों में हमारे सम्मुख आती है— 'हिन्दु-मुसलमान-सम्मिलन' भाषा के उपलब्ध रूप का प्रकाश 'खड़ी बोली' के व्यावहारिक रूप की सुरक्षा या जनता और साहित्य की भाषा में एकरूपता।

व्यक्तिनिर्माण की भावना इसी प्रकार साहित्य में जीवन-चरित्र-निर्माण का आदर्श कवि का जड़ रटि विरोधी नये प्रतिमानों में पौराणिक पात्रों को ढालने की प्रेरणा देता है— सामाजिक आदर्शों की स्तियाँ जब कथा को निर्माण और चरित्रों को जड़ बनाने योग्य हैं तब उभय नयी चेतना प्रदान करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग की मानवतावादी वास्तव्य प्रवृत्तियाँ न सम-कथा को मानवीय भूमिका पर अंकित किया और उसके उपलब्ध चरित्रों का नवीन प्रकाश दिया। आशय यह है कि साकेत चरित्र प्रदान कथा मूल्य है। कथा विनास तो उसका पृष्ठाधार है। उसके पुष्टपूर्ण धर्मों विद्या का एक कारण यह भी है। उभय सत्य दर्शाकना सत्तापों, आत्मोद्वेगों का रूप चिन्ता और प्राकृतिक वर्णना की सगति चारित्रिक भूमिका पर देखी जानी चाहिए। कवि न कथा-मूल का छाडा नहीं, कयाकि उभयों काव्य-वृद्धि वस्तु-मुखी है, आत्मा-मुखी नहीं।'<sup>२</sup>

सांस्कृतिक आदर-व्यवस्था (मताविधान) इस उद्धरण में गानेश के प्रेरणा स्रोत को हम प्राणवान् चरित्र निर्माण का आदर्श में सम पाते हैं परन्तु कवि न इसका वही दावा नहीं किया है। 'कविक प्रमाणव्यवस्था हम एक पत्रोत्तर का दम सक्त हैं।'<sup>३</sup>

सरस्वती मवाद का महासाय विरोधान् निवृत्त का अक्षर पर पत्रिका के

१ महादगी हरिजीव श्री गिरिनन्दन गुप्त गिरिप ५० २५६

२ मधिनौशरण गुप्त व्यक्ति और वाक्य, टा० उमाकांत पाठक, पृ० ४४३

३ मधिनौशरण गुप्त और उनका साहित्य दानवट्टादुः पाठक वर, ५० १६२

सपादक डॉ० नाथ शंभु पाण्डेय ने गुप्तजी को पत्र लिख कर उनसे यह अनुरोध किया था कि 'साकेत' की प्रेरणा के स्रोत पर कृपया स्वयं प्रकाश डालें। इस पत्र का उत्तर गुप्तजी ने इस प्रकार दिया था—

६ नाथ एवम् नई दिल्ली

२२-४ ५६

प्रिय महाशय !

पत्र मिला। धन्यवाद !

अपने विषय में स्वयं क्या कहें ? इच्छा के विषय में कुछ लिखना ही था। 'साकेत' लिखा गया। कसा लिखा गया इसे आप लोग ही जानें। कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ।

भवदीय

मथिलीशरण

इसमें प्रेरणा स्रोत का कोई संकेत नहीं है परंतु प्रकारांतर से डा० नगेन्द्र ने इसका इशारा 'श्रीरामायण' के टीकाकार जीर महावीरप्रसाद द्विवेदी की उमिला विषयक रचनाओं की आरंभ किया है।<sup>१</sup> पुराने चित्रों को नव-जीवन प्रदान करने के आदेश का प्रमाण साकेत स्वयं है—कैपेयी के पात्र का उज्ज्वल चित्रण और जायबुनिक नारी की प्रतीक स्वरूप उमिला के प्रति अपनी सारी मार्मिक सहानुभूति की अभिव्यक्ति। इसी अभिप्राय की व्यक्त करने हुए अनुसंधान ने विशेषांक में प्रकाशित डा० पाण्डेय के वक्तव्य को उद्धृत किया है— गुप्तजी रामभक्त सत् हैं। जब उनके स्वभाव में वही देवता, वही त्रिरभिमानता और शालीनता है जो सत्ता का सहज स्वभाव है। आपका जन्म एक एम परिवार में हुआ था जो परम्परा में वर्णव था। अतः श्रद्धा और विश्वास उनका बचपन से ही विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था। परंतु यह समझना भूल जाओ कि युग घम ने उनके मातस पर अपना प्रभाव नहीं डाला।<sup>२</sup>

आगे अनुसंधान ने प्रेरणा स्रोत की व्याख्या करते हुए लिखा है— साकेत की प्रेरणा का कोई एक प्रधान स्रोत नहीं प्रत्युत पुजीभूत मार्मिकता है जिससे कवि का महज भावुक हृदय इस अभिनव प्रयोग के लिए अग्रसर हुआ। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, साकेत-निर्माण का मूल प्रेरक बिंदु जयवा लक्ष्य उमिला की वर्णन भाषा मात्र प्रस्तुत करना न होकर उसके माध्यम से कवि का अपनी जनय राम भक्ति का भिन्न रूपामक अभिव्यक्तिकरण है। कवि के इस कथन में ही मैं साकेत की मूल प्रेरणा के दर्शन करता हूँ— "इच्छा के विषय में कुछ लिखना ही था। साकेत लिखा गया।"<sup>३</sup>

१ साकेत एक अध्ययन, डा० नगेन्द्र, प० १

२ मथिलीशरण गुप्त जीर उनका साहित्य, दानवहादुर पाठक 'धर' प० १६२

३ वही प० १६३

इन विभिन्न चर्चाओं में मात्र के प्रेरणा स्रोत का लेकर पूणत एक मत नहीं मिलता उनमें मूल्य भेद है। फिर भी, उमिता मुख्य नहीं तो गीण रूप से ही मही प्रेरणा बनी अवश्य है, एसा घनित हुए बिना नही होता। इसके अलावा मातृ के प्रणयन काल की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और कवि-जीवन की निजी परिस्थितिया का भी इस प्रेरणा के मूल में होता गया है।<sup>१</sup>

मानसिक प्रतिरिया समस्या नाटक के आधुनिक जन्मदाना मिश्रजा मान जाते हैं। इस पद्धति का पहला नाटक सन् १६२७ ई० में लिखा गया। इस नाटक की प्रेरणा के विषय में मिश्रजी कहते हैं—'पन्ने महायुद्ध की समाप्ति पर क्याराइन की 'मदर इण्डिया' लिखन चुकी थी। यूरोप और अमेरिका के बितने ही लेखक काल, भूरे और पीले स गौरा का साक्ष्यान रहने की चेतनी दे रहे थे। रगीन जातिया जो सब ओर से हीन करने की चेष्टा को जा रही थी। हिटमन ब्लाट, 'पुटनमवील' 'नायाम्नोदार' जादि बितने ही गान्तिक संख्य इस बात की घोषणा कर रहे थे कि भविष्य में गौरा का सन्त रगीन जातिया स बड़ेगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में इस तरह का साहित्य जगवर चल रहा था जिसके पढ़ने का मुयाग मुझे विद्यार्थी जीवन में बही मिल गया। इस प्रकार की जो प्रतिरिया हुई उसी ने हिन्दी के प्रथम समस्या-नाटक सन् १९०० ई० में जन्म दिया। जाति के गौरव बोध अपनी सस्कृति और अपन पूर्वजा की विभूति निष्ठा ने अतजगत' के कवि को समस्या-नाटकाय बना दिया। मैंने तभी स० १९०० ई० के आस-पास ही देख लिया था कि छायावादी हिन्दी कविता के रूप में अग्रजों कविया की लीरिक् पार्टी का जो प्रभाव चल रहा है वह व्यक्ति की अतप्त तालसा वासना, परित्याप, एकागी स्वाय के उमाद का फल है। इसमें जातीय जीवन और अपनी सस्कृति का हाम है। इसमें मुक्त कविता का लिलना छोड़कर स सदक के लिए नाटककार बन गया जिसमें जीवन की स्वाभाविक धारणा और उमके चित्रण का अवसर है। कम मणय से छूटकर गीता की रगीनी में डूब मरने को मैंने पाप समझा।<sup>२</sup>

(छ) सांस्कृतिक स्रोत—चित्रकला, शिल्पकला, मानचित्र भवन मन्दिर कला महीन नत्य—ये स्वतंत्र रूप में और सम्मिलित रूप में भी साहित्य का प्रेरित और प्रभावित करते हैं। वेद पुराण, उपनिषद् इतिहास सस्कृति के प्रतिनिधि इन स्रोतों का अपनी भयना और गरिमा से प्राणवान बनाने वाले होने के कारण इसी ने अतगत अपना स्थान रखने में।

अनिश्चित और मौखिक ज्ञान का स्वरूप सांस्कृतिक स्रोतों का हाते हुए भी उमे वेद, ज्ञान, इतिहास, धर्म या परंपरा किसी एक के साथ हम साथ नहीं जोड़ सकते।

१ मथिलीशरण गुप्त और उनके साहित्य दानप्रहादुर पाठक 'वर' प० १५२ १५८  
२ हिन्दी नाटक उन्भव और विकास, प० दशरथ जोषा, प० ५१४



गणेश डॉ० नाम 'भु पाण्ड्य' के गुणग्री का गणेश कर उगम यह अनुसंधान किया था कि गणेश की प्रेरणा का गणेश पर श्रवण स्वयं प्रमाण है। इस गणेश उगम गुणग्री में इस प्रकार किया था -

६ नाम पद्येयू १६ शिली

२०-४ १६

प्रिय महाशय !

पर मिता । गणेश !

अगले विषय में स्वयं क्या कहें ? इच्छेय के विषय में कुछ लिखा ही था । 'गणेश' विगम गया । कसा विगम गया इस आग साग ही जानें । श्रवण के लिए श्रवण है ।

भवनीय

मधिलीशरण

इस प्रेरणा-श्रवण का कोई सन्दर्भ नहीं है परन्तु प्रचारार्थ स डॉ० नगेद्र ने इसका इशारा खीन्द्राय टाकुर और महाशय-प्रमाण शिली की उमिता विषय रचनाओं की ओर किया है । 'पुराण श्रवण का नव जीवन प्राप्ति करके आत्म का प्रमाण साकेत स्वयं है—'नयेयी' का मात्र का उगम विषय और आधुनिक गरी की प्रतीक-स्वरूप उमिता का प्रति अपनी गरी मासिक सदानुभूति की अभिव्यक्ति । 'ग्री अभिप्राय का व्यक्त करते हुए अनुसंधान न विषयों में प्रकाशित डॉ० पाण्ड्य के यक्षय का उद्धृत किया है— गुणग्री रामभक्त सन्त हैं । अतः उनका स्वभाव में वही देवता, वही निरभिमानता और शालीनता है जो गन्ता का सहज स्वभाव है । आपका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो परम्परा में वध्णव था । अतः श्रद्धा और विश्वास उनका वचन स ही विरागत के रूप में प्राप्त हुआ था । परन्तु यह समझना भूल होगी कि युग धर्म ने उनके मानस पर अपना प्रभाव नहीं डाला ।'

आगे अनुसंधान ने प्रेरणा-श्रवण की व्याख्या करते हुए लिखा है— साकेत की प्रेरणा का कोई एक प्रधान स्रोत नहीं प्रत्युत पुजीभूत मासिकता है जिससे कवि का सहज भावव हृदय इस अभिनव पयोग के लिए जगसर हुआ । जहाँ तक मैं समझ सता हूँ साकेत निर्माण का मूल प्रेरक बिन्दु अथवा लक्ष्य उमिता की वरुण-नाथा माय प्रस्तुत करना न होकर उसके माध्यम से कवि का अपनी अनय राम भक्ति का भिन्न रूप-त्मक अभिव्यक्तिकरण है । कवि के इस कथन में ही मैं साकेत की मूल प्रेरणा के दशन करता हूँ— इच्छेय के विषय में कुछ लिखना ही था । साकेत लिख गया ।'

१ साकेत एक अध्वपन, डा० नगेद्र प० १

२ मधिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य, दानवहाडुर पाठक 'वर' प० १६२

३ वही, प० १६३



इतना निश्चित है कि ये दोनों परस्पर को प्रभावित करते हैं और एक-दूसरे की सहायता से परिपूरित और विनमित्त होते रहते हैं। इसका मुख्य कारण है लोक-कथाओं की पृष्ठभूमि के रूप में निहित ऐतिहासिक तथ्य का आधार। सम्भव है कि कथा के आवरण में वह पूणतया प्रच्छन्न ही रहा हो। लोक मानस को कल्पनागत के नव-सृजन के लिए मौलिक के साथ इतिहास का आधार आवश्यक होता है। सिंहासन बत्तीसी जैसी कथाओं का इसमें प्रमाण है।

'संस्कृति' की व्याख्या करते हुए डा० मायाराणी टडन लिखती हैं— 'हिंदी के प्रमुख कौशलों में एक ने संस्कृति को 'रहन सहन की रुढ़ि' कहा है तो दूसरे ने उसे आचारगत परम्परा बताया है और तीसरे ने उसके अंतर्गत मन रधि आचार-विचार का कौशल और सम्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास सूचक बातों की हैं। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार विचार से सम्बंधित उन सभी परम्परागत बातों से 'संस्कृति' का सम्बंध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रधियों के परिष्कार और विविध अर्थान शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। या संस्कृति के दो पक्ष हो जाते हैं पहल का सम्बंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन सृजन आचार विचार आदि से सम्बंधित वातावरण सस्कार सपक आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का सम्बंध परम्परा से अर्थात् उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नीव मानव के जन्मकाल से ही पड़ जाती है और उसके रहन सहन आचार विचार आदि पर जिन बातों का आरम्भ से ही प्रभाव पड़ने लगता है उनमें प्रमुख है प्राकृतिक वातावरण जीवन की सामान्य रूप रेखा, पारिवारिक सामाजिक धार्मिक राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अंतर्गत विभिन्न विषयों के सम्बंध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और भावनाओं के साथ साथ जनेक पर्वोत्सव आदि भी हो जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की सकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है। प्रथम प्रकार की जानकारी का घनिष्ठ सम्बंध इतिहास से सहज है क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थिति के साथ साथ उक्त सभी प्रकार की स्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। द्वितीय प्रकार का परिचय अपधाकृत अधिक महत्त्व का होता है। कारण समाज विशेष के लौकिक जीवन सम्बंधी आदर्शों का निर्माण शताब्दियों में होता है, उन आदर्शों की जड़ ऐतिहासिक भूमि में बहुत गहरी समायी रहती है।'

आगे इस सन्दर्भ में वे बताती हैं काव्य का सम्बंध भी जाति के इतिहास से अधिक उसके सस्कार-जय आदर्शों से रहता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थिति के सम्बंध में जो संज्ञा या विवरण किसी काव्य में मिलते हैं वे प्रायः सामान्य और

असम्बद्ध ही हात हैं। प्रपञ्च-वाच्य में तत्सवधी उल्लेखों के लिए थाडा-बहुत अवकाश हा भी सकता है, परन्तु गीति काव्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता यद्यपि स्वयं कवि उनकी सवधा उपधा नहीं करना चाहता। द्वितीय प्रकार की स्थिति से सम्प्रचित अनक सकेत सभी प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं कारण तत्सवधी उल्लेख कोई भी कवि जनायास ही कर जाता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी उही मस्कारों और आदर्शों से होता है। य सवत कभी तो प्रत्यक्ष रूप से वर्णित विषयों में मिलते हैं और कभी परोक्षत अलंकारों के रूप में इस उद्देश्य से अपनाये जाते हैं कि अवोधावस्था में ही सम्प्रार रूप में परिचित पाठक उन्हें सहज ही हृदयगत कर सके।<sup>१</sup>

संस्कृति के समस्त स्रोत लेखक के लिए महान प्रेरणा रूप हैं यह अनुभव से प्रमाणित हो चुका है। प्रतापनारायण टण्डन अनुभव का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

यूरोप भ्रमण के समय लेखक अपने म नित्य नवीन अनुभूतियों को प्राप्त करता था। एक एतिहासिक नगर में जान पर लगक न देखा कि एक ही ऊपर में एक ओर सात-सज्जा में आधुनिकतम साधन तथा वनानिरता की अनुपम प्रगति तो दूसरी ओर अति प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति अपने उसी रूप में पूर्ण सुरक्षित जिस देख कर लगता है कि अग्रे पाच हजार वर्ष पूर्व के यानावर्णन में, उसी समय की चहल पहल में प्रवेश कर गया। यह देख कर लेखक न नई प्रेरणाएँ प्राप्त की।<sup>२</sup>

सांस्कृतिक स्रोतों में इतिहास और परम्परा के सम्बन्ध का वही रूप है जो लोक साहित्य और इतिहास का है। परन्तु साहित्य में सांस्कृतिक जीवन के आलेखन में क्या एतिहासिक हात हुए भी युग धर्म से वचित नहीं हो सकती। पुरातन को आधुनिकता प्रदान करने में और उनकी जड़ता को भगड कर साकायताओं बनाने में ही संस्कृति के व्याख्याता लेखकों की साधकता है। गुप्तजी का हम इस रूप में देख सकते हैं—'इस दश की भी अपनी परम्पराएँ हैं—परम्परा में कतिपय प्रथाएँ संस्कार और विश्वास प्रचलित हैं। गुप्ती के काव्य में प्रायः व सभी प्रस्थापित हैं। किन्तु युग धर्म की भी व कभी उपक्षा नहीं करत इसीलिए पारस्परिक मूल्यों एक कदिया को रक्षा से ग्रहण करने पर भी उनके साहित्य आधुनिकता के प्रभाव से मुक्त नहीं है। उनकी यहमानिक ग्राहकता और स्थितिसंस्थापकता विलक्षण है।'<sup>३</sup>

डॉ० नगेंद्र मत में सामाजिक जीवन की प्रथाएँ और संस्कार भी संस्कृति के भव्य निदर्शन हैं—उनमें संस्कृति का स्वरूप न जान कब से सुरक्षित चला आता

१ गण्ट्याप काव्य का साम्प्रतिक मूल्यांकन प० ३० ३१

२ हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज प० ५१

३ मधिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के व्याख्याता

है।" समाज अर्थात् लोक जीवन का प्रतिनिधित्व देने वाला लेखक सांस्कृतिक स्तर पर स्वयं को और अपने पात्रों को रख कर ही इतिहास जादि सांस्कृतिक स्तरों के सहारे वर्तमान समस्या का समाधान षोजने में सफलता पाता है। प्रसादजी के साहित्य में पुनर्विवाह की समस्या का समाधान सांस्कृतिक स्तर पर अर्थात् धर्म के सहारे किया गया है। विधवा की पवित्रता में विश्वास रखने वाले प्रसादजी ने 'प्रेमपथिक' की पुतली को अपने प्रिय विशोर के शरीर की अपेक्षा हृदय मात्र में मिलने में ही सन्तुष्ट कर दिया है। परन्तु 'विजया' में विधवा सुत्गी कमल का प्राप्त कर लेती है। चित्तोर उद्धार के माध्यम से प्रसादजी ने पुनर्विवाह को सामाजिक स्तर पर स्वीकृति दिलाने की चष्टा की है। ध्रुवस्वामिनी में इस विचार का और भी विकास हुआ है और धार्मिक स्तर पर इसको स्वीकृति प्राप्त कराई गई है।

जन्म पति पति के वक्तव्या का पूण कर सकन में असमथ हा प्रसादजी ने विवाह विच्छेद और पुनर्विवाह का एक साथ विधा यता दिया है— धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर द्वेष में नहीं टूट सकता पर यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन हैं। यह रामगुप्त मत और प्रभावित तो नहीं पर गौरव से उष्ट आचरण से पतिन और कर्मों से राजकल्पिणी बनीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।<sup>१</sup>

सांस्कृतिक स्तर में इतिहास की प्रधानता के कारण यह परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों स्तरों के रूप में लेखक को सहायता देता है। परोक्ष स्तर के रूप में तत्कालीन साहित्य से सीधी सामग्री ग्रहण करके हुए भी यह सृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाली हो तो इन्हीं स्तरों में उमकी गणना हानी चाहिए। बाणभट्ट की जात्मकथा के लखक हजारीप्रसाद के इस कौशल का परिणाम देने हुए अनुसंधान ने किया है— उपन्यासकार ने इतिहास का केवल सहारा भर लिया है। पर उसने कल्पित घटनाओं को इस तरह से प्रस्तुत किया है कि उनका इतिहास से कहीं विशेष नहीं होने पाया है। उपन्यासकार की कल्पना भी निराधार नहीं है क्योंकि उमके तत्कालीन वायुग्रन्थों एवं नाटकों की साक्षी देखकर उस अत्यन्त तक सगत बना लिया है। क्या का अधिराज भाग हृषिकेश मार और बादमरी' से लिया गया है। कुछ विषय 'रत्नावली पाठिका' कुमारगम्भव मधुदूत नामान्त विष्णुमात्रशेय, महाभारत पञ्चमस्कन्ध गधुवण पाठ्यशास्त्र अभिनेताय चिन्तामणि काममूर्त मानवीमाधन, चतुर्शतक बन्त भट्टिना और मित्रि प्रश्नतायक ग्रन्थों से लिया गया<sup>२</sup>। इन ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त विषयों का उपयोग प्रायः सामाजिक आचार विचार,

१ गाकेन एक अध्यायन प० ११४ ११) पंचम मन्तरण

२ ध्रुवस्वामिनी

आनन्दोत्सव तथा प्राकृतिक चित्रण आदि वर्णित प्रसंगा को सजीव बनाने के लिए किया गया है। उनका ग्रन्थ म भारतीय संस्कृति तथा परम्परा का आदर्श स्वरूप का मित्रता है उसका पूर्ण जीवन्त चित्र हम वाणभट्ट की 'आत्मकथा' में मिल जायगा। 'अनुसंधान न संस्कृति का अर्थ म इस रचना की व्याख्या इस प्रकार की है— 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वृत्त उपयाम 'वाणभट्ट की आत्मकथा लगभग चार-पाँच पृष्ठा म समाप्त हुआ है जबकि अपभ्रंशित मुख्य कथा भाग जल्द ही है।' १ वं भाग निम्न है— अतः म प्राण न कातर कष्ट स कहा— फिर क्या मिलना होगा? इसी स्थान पर अपन समस्त प्रभावा का साथ उपयाम की कथा समाप्त हो जाती है जो अपभ्रंशित उपयाम म प्रायः वायव्यापारा के वर्णन स बहुत छाटी है, पर उपयामकार न अनेक प्रसंगा की सहायता स कथा-वस्तु का निमाण इतने कौशल पूर्वक किया है कि उसने हम तक एसी प्रशस्त भूमि दे दी है जिनम हृषिकेशीन भारत का समस्त सामाजिक आचार विचार राजनयिक उलट फेर धार्मिक आदर्शन जनता म व्याप्त अनेक मत मतान्तर एवं विश्वास तथा कला और संस्कृति आदि मिमिष्टकर जा गयी हैं। १

ऐतिहासिक वातावरण के निमाण म 'राजनीतिक और शासन प्रवृत्त राज्याभिषेक परिषद वय कर्मचारी 'याय-न्यायाधिकरण, रणनीति सय-योजना और युद्ध का अनिश्चित भौगोलिक विवरण भी अपक्षित है। उनके अभाव म प्रदेश या देश-विशेष की संस्कृति का पूरा प्रतिनिधित्व सम्भव नहीं है—इस विवरण म 'दश नदी, पर्वत शहर प्रांत नगर ग्राम, यानायान (रथ शिबिका अथवा नौका), सामाजिक (वर्ण व्यवस्था आश्रम) प्रधान धर्म और देवी देवता स्नान विश्राम (धूमकेतु, उल्काप्रात शिवाह भद्रिष्य वाणी ज्यातिष सात्रिक, मित्र) प्रणय विवाह स्नान पान वस्त्र-आभूषण उत्सव शीत विनाद, द्वन्द्व युद्ध शिक्षा, कला, संगीत साहित्य' गिनाय जात है।

जब तक अनुसंधान का सांस्कृतिक स्नान का अन्तगत आन वाली वस्तु का सम्यक ज्ञान नहीं होता वह अनुसंधान म प्रगति नहीं कर पाता। ऐतिहासिक साहित्य म यह जानकारी विशेष रूप स उपयामी होती है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटका का अनुसंधान इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि— अपन इतिहास के लिए प्रसाद का पास जा भी उत्तम थे, उन मजका उपयाम उचित किया है। नाट इतिहास का दाना कण्ड— ध्रुव और अरुण दाना प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उनके नाटका की घटनाओं का मूल म रही हैं और एक संपन्न इतिहासकार की तरह उन्होंने इन दाना प्रकार का धीरे

१ ऐतिहासिक उपयाम की सीमा और वाणभट्ट की आत्मकथा

डा० त्रिभुवर्णमह पृ० २३ २४

२ वही, पृ० ३२

३ वही पृ० ३६

४ प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक डा० जगन्नीशचन्द्र जाशी

मामजस्य स्थापित किया है। ध्रुव इतिहास का विषय नहीं तो उदात्त ग्रीक इतिहास, बौद्ध इतिहास शिलातरा सामयिक मूर्तियाँ, लाह-स्तम्भ इत्यादि का सहारा लिया है वही बुद्ध, बानिदास विष्णु इत्यादि का सम्बन्ध मन्त्र-विद्या, दत्त-व्याज और पौराणिक उपासना की भी पर्याप्त सहायता ली है।<sup>१</sup>

सम्पूर्ण उत्साह या उपयोग करने पर लगा अनायास ही अपनी रचना में सांस्कृतिक बानाकरण की सज्जि कर देता है। प्रमाण न १६१२ के पट्टन (एतिहासिक रचनाका के निर्माण का पूर्व ही) — गीत अग्रजी और भारतीय इतिहासकारा के मता और भारतीय पुरातत्त्व विभाग के ज्ञापना का आधार पर एक अत्यन्त विशद, विवक्षितत्वक विषय प्रस्तुत किया। शिलातरा सामयिक महावश मुद्राराधन वासुपुराण जोर वीटित्यन्त अथवास्त्र का अपनी पद्या-वस्तु की तामघी का चयन कर प्रमाण ने तद्रूपक का जीवा पर नवीन प्रकाश डाला।<sup>२</sup>

साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष का रूपन हुए कहा जा सकता है कि प्रसाद इसमें सवागीण प्रतिभा का प्राप्त है। धर्म, इतिहास कला कारीगरी समीन जाति के साथ दशन में भी उनकी सुराि और जातारी सराहनीय है। अनुमघाता न बड़े परिश्रम के साथ इन विशिष्ट सोना का पना तगातर प्रमाण के 'कामायनी' महाकाव्य पर अपना अभिप्राय यक्त किया है — प्रमाण ने इच्छा पान और श्रिया का तीना लोको का जो विाण किया उसका सूत्र कतिव गीर लौकिक संस्कृत साहित्य में उन्नत होत हैं। ऋग्वेद में अग्नि का तीन रूपा में अभियका किया गया है गीर उसे त्रिधात कहा गया है (३।२३।७)। यजुर्वेद में उसे सोहमय रजतमय गीर स्वर्णमय धरा में वात करत वाली कटा गया है (५।८)। ततपय ब्राह्मण में कहा गया है कि पराजिन असुरा न प्रजापति की तपस्या करके तीन प्रदेशो का निर्माण किया। पृथ्वी में लाहे का उत्तरिक्ष में रजत का गीर द्युलोक में स्वर्ण का नगर निर्माण किया। परंतु देवताजी ने उससे नामक अग्नि का प्रसन कर उन तीना उपरा का विनाश करा दिया है (२।४।४। ४)। इसी तरह महाभारत (वण पव अ० ३३ ३४) और पुराणो में इसी कथा का पुरातत्त्वन मिलता है केवल अग्नि की जगह शिव का नाम है। शवागमो में त्रिपुर का दाशजिक त्रियचक्र मिलता है (तत्रालोक भा० १ पृ० १०४) इसमें त्रिपुर का जथ इच्छा पान गीर श्रिया शक्ति के रूप में दिया गया है। इन शक्तिनया की अधिष्ठात्री त्रिपुरा देवी मानी जाती हैं जा ब्रह्मा विष्णु और शिव के सदश है। वह त्रिशक्तिनया से समद्ध है। अपने चन्द्रमा रूप से वह सजन करती हैं जग्नि रूप से सहार करती हैं और मूय रूप से सचालन करती हैं (तत्रालोक,

१ प्रसाद के ऐतिहासिक नाट्य, डा० जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० १९

२ प्रसाद की दाशजिक चेतना, डा० चन्द्रवर्ती प० ४५७

३ वही पृ० ५४२ ५४३

भा० २ प० ७८ ७९) जब तक इन तीनों पुराणों में पाथक्य बना रहता है, तब तक उपाधियाँ और बचुका से जायत सत्कार द्वंद्व और वषम्या में रहता है। इनके समरस होने पर आनन्द की प्रतिष्ठा शक्ती है।

तात्रिका ने इन ही निरानावस्थाओं में ताम्र से अभिहित किया, जिस अवस्था में यागी सब बचुका से मुक्त होकर अरण्य आनन्दमय शिव रूप का उपलब्ध करता है (तथानोक, भा० ३, पृ० ११४ ११५)।

‘उक्त सूत्रों के आधार पर प्रसाद ने त्रिपुर की अभिप्रेक्षा की। पुराणों की दृष्टि की कल्पना उन्होंने उदासीनी शवागमों से इच्छा, ताँ और त्रिपा की। दार्शनिक उपपत्तियों का लिया और अतन्त श्रद्धा के द्वारा उन तीनों लक्षणों को वषम्य की दूर किया जिसका आधार उक्त त्रिपुरा रहस्य में मिलता है। इस तरह प्रसाद ने इच्छा, ज्ञान और त्रिपा का त्रिपुर और त्रिकोण के रूप में अभिव्यक्ति कर शब्दों के दार्शनिक रहस्य की समझाने का यत्न किया। तीनों के सामंजस्य से ही आनन्द की जा उपलब्धि तथा म बताई है इसका निरूपण कर प्रसाद ने मनु की आनन्द की उपलब्धि करा है। तदनुसार प्रसाद ने ब्रह्म और लौकिक साहित्य का अवलम्ब लक्ष्य कामाग्र्या की वषा-वस्तु का निर्माण किया जिसमें मनु ने केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों के रूप में अभिव्यक्त हुए, अरुण मन के प्रतीक रूप में भी उपस्थित हुए हैं। एक बार मात्र सृष्टि के इतिहास का निरूपण है ता दूसरी ओर मानव-जीवन का विकास। साथ ही साथ प्रसाद ने स्वकत्व और प्रतीकत्व के द्वारा इतम मन के विकास का भी इतिहास सन्निहित कर दिया है।

(ज) प्राकृतिक स्रोत प्राकृतिक चतन्यमय सानिध्य का अनुभव किये बिना साहित्यिक चेतना का विकास नहीं हो पाता। पथी का कलरव फूल का शोरभ और रंगीनी, उसकी सुपभा और रस, उस पर मडराते भौरो का भुजन और तितलियों का त्रिहार तथा मधु मक्खिया का रस पान, रात्रि बाल्ल चंद्र, बफ सितारे, सूर्य नदी, सागर सरावर विविध ऋतुएँ और भाँति भाँति के वक्ष, पौध लताएँ, घास-पात, पत्थर और बालू आदि असंख्य स्रोत लक्षकों की रचना में प्रेरणा या प्रभाव रूप में अवश्य रहते हैं। लक्षक प्रकृति के इन उपादानों का प्रतीक रूप में ग्रहण करके अपने अमृत भावों का मूर्तिमान और सप्रेषणीय बनाता है या प्रकृति का मानवीकरण करके मानव हृदय के मूढ रहस्यों का उदघाटन करता है।

किसी भी देश, भाषा या जाति का साहित्य बिना प्राकृतिक ज्ञान का प्रयोग किये पूर्ण जीवन और समृद्ध नहीं हो सकता। विश्व स्रष्टा की कविता प्रकृति के रूप में प्रकट होकर अपने रूप सौंदर्य को नित्य नूतन शली में व्यक्त करके निखिल भुवन के प्राणियों का जीवन, ज्ञान और आनन्द दान करती रहती है। सच्चिदानन्दमयी इस प्रकृति का सानिध्य कवि हृदय में अलाविक रस का संचार करता है और अपनी निरास्ती प्रतिभा के साथे उस रस और सौंदर्यानुभूति का ढाल कर कवि पुन पुन



काय-मन्त्रन में प्रयुक्त होता है। आन्तरिक रामायण से लहर जाऊ तब यह परम्परा तली आ रही है। यह मन्त्रों का रस करान में मन्त्र एकीकृत प्रकृति का मन्त्र दशांतर का वाणी दक्षिणी गति। द्वितीय गति मन्त्र प्रकृति चित्रण यज्ञ उत्तम वाणि का भा है। अष्टादश राज्य का गान्धर्व मूल्यांश म श्रीगती मामागती टउन प्राणतिर सात की व्याख्या करत हुए विरतती है—  
अष्टादशी कविया तान प्रकार क जीवता उत्तम उपमान रूप से अथवा प्रकृति प्रणन के साथ स्वतंत्र रूप से किया है। इन सभी प्रकार के वर्णना के आधार पर तीन निष्पन्न निकला है

(१) अष्टादशी कविया न पशु पशिया त मामाय जीवन का लहर उतारी प्रवृत्तिया जीव प्रभावा का ता प्रवृत्तित किया है जम, वनि गुजा की नाद।

(२) मनुष्य जिन प्रकार पशु पशिया का अपन जीवन में उपयोग करत सगा है उसका ध्यान में रग कर अष्टादशी क कविया न अनन उक्तियां वही हैं। जस, तनी के वप में नित भटकता।

(३) अष्टादशी कविया ने पशु पशिया के पारस्परिक संबंधों उन पर आन वाले सक्टा तथा उनकी प्रतिप्रियाओं से संबंधित कुछ बातें वही हैं। जस— एक प्रसिद्ध अजा।

प्रथम दोनो प्रकार की उक्तियो का आधार वे अनेक नावाकिया हैं जा मनुष्य समाज में आन्तरिक कान से प्रवृत्तित रहकर हमारी जनभावा का स्थायी अंग बन गयी हैं। जत इन कवियो ने इनका सग्रह मात्र किया है। इससे विपरीत तृतीय प्रकार की उक्तियो से अष्टादशी कविया की पयवर्णन शक्ति तथा मूकम्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे उनकी प्रतिभा और सूक्ष्म-बुद्धि का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियो मौलिक वही जा सकती हैं।

भक्ति-काय म प्रकृति का तीव्र चित्रण हुआ परन्तु रीतिकव्य में स्थूल शृंगार चित्रण की प्रधानता से प्रकृति भी निष्प्राण हो गयी। उसकी एक परम्परा सी बन गई। भारतेंदु काल में कुछ विशिष्ट कवियो को छोड़कर इसी परिपाटी का निर्वाह किया गया। द्विवेदीयुगीन प्रकृति काय पर अपना अभिप्राय व्यक्त करत हुए अनुसंधाता न लिखा है— द्विवेदी युग में पहली बार स्वतंत्र रूप से काम लिया गया और उनके विभिन्नपूण व्यक्तित्व की स्थापना का य म की गई। प्रयागनारायण मिश्र का 'ऋतुकाय (१९१०) जयो-यासिंह का उपाध्याय 'ऋतुमुकुट (१९१७) श्रीधर पाठक का 'वनाष्टक (१९२२) जग नारायण देव शर्मा का मधुप (१९२३) विद्याभूषण विभु का चित्रकूट चित्रण, श्यामकांत पाठक का उपा (१९२५) और दरबला का 'प्रकृति-सौन्दर्य' जादि रचनाओं में इस प्रवृत्ति के स्पष्ट दर्शन किये जा सकते हैं।

इस युग से पूर्व प्रकृति चित्रण परम्परागत था। कवियो ने मुख्य रूप से

उद्दीपन रूप में ही इसका अरथ किया था, जालबन रूप में बहुत कम। नतिवता का उपदेश दान के निमित्त भी प्रकृति का मन्त्राग किया गया था। इसके साथ प्रकृति के स्वतंत्र अस्तित्व का स्वीकार करने की आवश्यकता जन्म किसी कवि में नहीं अनुभव की थी। अपवाद रूप एक-आ-ब-विया के जालबन चित्र अवश्य मिल जाते हैं।<sup>१</sup>

इस तथ्य का अनुसंधान न अधिक स्पष्ट करने के लिए पांच वर्गों में इस प्रकृति-वाक्य को विभक्त किया है—(i) भाव (भाव रूप चित्रण), (ii) मोक्ष (मधुरता-नामलताप्रधान जोर भयकरता उग्रताप्रधान) (iii) विभाव (उद्दीपन जालबन) (iv) निरूपित और निरुपायित के संघर्ष की दृष्टि में दृष्टि-दशक सम्बंध सूचक जोर तादात्म्यसूचक, (v) विधाता (प्रस्तुत-अप्रस्तुत)।<sup>२</sup>

आप इस तथ्य की अनुसंधानों में विशेष व्याख्या करके निम्न रूप में बताया कि— द्वितीययुगीन प्रकृति चित्रण बहुत मर्मद्व नहीं है। उमम तल्लीनता का अभाव है। प्रकृति के व्यक्तित्व में कविगण अपना व्यक्तित्व नहीं मिला पाये हैं और न उनका तादात्म्य ही स्थापित हो सका है। फनस्वरूप प्रकृति के रहस्या के उद्घाटन में भी उन्हें सफलता नहीं मिल पायी है। इसके अनिर्गुण मानवता को प्रकृति का कोई संदेश देने में भी वे सफल नहीं रहे हैं। अधिकतर रचनाओं में प्रकृति के ऊपरी रूप की ही भनक मिली है।<sup>३</sup>

कवि पत्र के व्यक्तित्व निर्माण का पूरा श्रेय प्रकृति का है। वे स्वयं लिखन है 'मेरे कवि-जीवन के विकास में वा ममभने के लिए पहल आप मेरे साथ हिमालय की प्यारी तलहटी में चलिए। मेरा काव्यरस अभी तक फूटा नहीं था पर प्रकृति मुझे मातृहीन बालक का वधि जीवन के लिए मरे बिना जान ही जस तयार करने लगी थी। मेरे हृदय में वह अप्रतीम मीठी स्वप्ना से भरी हुई चुप्पी अकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे नीचे अस्फुट तुलल स्वरा में बज उठी। मैं छुटपन से ही जननी और शरणीना था। उधर हिम प्रदश की प्राकृतिक सुंदरता मुझे पर अपना जादू बना चुकी थी इधर घर में मुझे मेघदूत शकुंतला और सरस्वती' मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं का मधुर पाठ मुझको मिलता था जा मेरे मन में भर हुए अवाक मोक्ष का जन्म वाणी की अकारण में ममभना उठने के लिए अज्ञात रूप से प्रेरणा देता था। मेरे बड़े भाई साहित्य और वाचक अनुरागी थे। मेरे मन में तभी से निम्नने की ओर जावपण पल हो गया था।

प्रकृति और कवि के संघर्ष की व्याख्या करने हुए डॉ० चन्द्रवर्ती लिखते हैं—

१ मयिलीशरण गुप्त और उवा साहित्य दानवहाटूर पाठक घर, पृ० ४५ ४६

२ वही पृ० ४६ ५०

३ वही, पृ० ५१

४ शिल्प और दशन, श्री सुमित्रानन्दन पत्र पृ० ३२१

"मूटि परम गुण की मो दय मयी अभिव्यक्ति है । 'म निमित्त भुवन म परिग्याप्त इम विरलनन सो दय की अनुभूति प्ररवक व्यक्ति को होती है । किन्तु यदि की अनुभूति अया की अपेक्षा अनिवायन तीव्र हानो है ।' 'विण अमघाता न म मिद्धात का आधार बना कर प्रसाद क व्यक्तिव का विश्लेषण किया है— 'प्रसाद की मत्तना ओर सधदना का आभाग उनकी मो दयानुभूति म ही मितना है । उहान अपन घत गत क आशोश भावद्रव्या का प्रवृति क उपकरण पर आरापिन कर रहम्य का भीना आवरण इम तरह डाल दिया कि सो दय की अभिव्यक्ति दाशनिक यजना म परिगित हो उठी ।

'प्रसाद न प्रवृति-मो दय का अंतरानुभूतिया जीर जीवन सवन्ना की पृष्ठ भूमि म प्रतिष्ठित कर दला । इमोलिल अभिव्यक्ति म स्थून-मूक्षम का अपूण पूण का ओर रूप विरूप का विलक्षण सामजस्य उपस्थित हुआ ।'

प्रसाद क प्रावृति-मो दय विमण पर अग्रेजी प्रभाव भी लक्षित हुआ है । प्रसाद ने बड सवय की भांति प्रवृति स शिक्षा ग्रहण की है । प्रमपथिक म विश्व प्रेम का जो व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है वह कीटम के सो दयवाणी दष्टिकोण स पर्याप्त साम्य रखता है । प्रवृति का रमणीय वातावरण कीटस क निग इम जगत का बडोर वास्तविकताआ से, श्वाति निवेतन के रूप म था, प्रसाद न भी उस उसी रूप म ग्रहण किया है । विशार के माध्यम से अपने विश्व प्रम के दशन की याख्या करत हुए उनके शर है—

जात्मसमपण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर ।

प्रवृति मिला दो विश्वप्रेम म विश्व स्वय ही ईश्वर है ॥

×

×

×

क्षणभगुर सो दय दल कर रीभो मत दखो । देखो ॥

उस सु दरतम की सु दरता विश्वमात्र म छाई है ।

×

×

×

योछावर कर दो उस पर तन मन जीवन सवस्व नही ।

एक कामना रह हृदय म, सब उत्सग करो उस पर ॥

—प्रेमपथिक पृ० २४ २५

चमेली इस जीवन दशन को सहज रूप म स्वीकार कर लेती है और उसी क प्रवाह म कहती है—

१ प्रसाद की दाशनिक चेतना प० ३२१

२ वही, प० ३२२

चना मिलें सौन्दर्य प्रेम निधि में  
जहाँ अगड शान्ति रहती है वहाँ सदा स्वच्छन्दता रहे ।<sup>१</sup>

—वही, पृ० २६

इसके अनन्तर दादा आत्मविभार हाकर अरुणात्म्य देखने लगत है। यह जीवन दर्शन निश्चित रूप से प्राकृतिक शोभा की उपासना का दर्शन है।<sup>१</sup>

साहित्य-भावना में प्रेरक और उद्दीपक रूप में प्रवृत्ति का स्थान अनुपम है। इस स्रोत से कवि-व्यक्तित्व की एकता इस हद तक है कि वह उसके शक्तिशाली स्रोत के स्वरूप से अनजान है परन्तु उम मत्स्य शिव मु दरम की आराधना की नीरव किन्तु प्रशस्त पगडडी वहाँ में मिलती है।

१ हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव

साहित्य के विविध स्रोतों का अध्ययन हम एक रहस्यपूर्ण सचेत करता हुआ साहित्य का महत्त्वपूर्ण और अनिवाय तत्त्व मौलिकता की दिशा में गभीर चिंतन और तत्संबंधी अनुसंधान के लिए अप्रसर करता है। इसके साथ स्रोत और मौलिकता के बीच सूक्ष्म अंतर भी स्पष्ट हो जाता है। स्रोत साहित्यकार को विविध क्षत्रों की सामग्री देता है उसके भाव विचार और कल्पना को उत्तजित करता है अनुकूल प्रति कूल सूचन करता है और प्रतिभाशाली को अपनी मौलिकता प्रकट करने का अवसर देता है, फिर भी स्रोत मौलिकता की व्यंजना में निमित्त मात्र है क्योंकि संपादित समग्र सामग्री मौलिकता के अभाव में जड़ है शब मात्र है प्रदशी या सप्रह है एक बोझ से अधिक कुछ नहीं है। प्रतिभा का अभाव में मौलिकता के उदघाटन में समर्थ महान साहित्य के निर्माण में शक्तिशाली स्रोत भी निरूपयोगी ही नहीं भुलाया वन जाते हैं और अविशेष से अनर्थ की सृष्टि भी कर सकते हैं।

स्रोत और मौलिकता प्रतिभाशाली में निर्जीव अनुकरण का नितात अभाव होता है। जिसका प्रत्यक्षीकरण उस होता है उसमें उसकी सचेत कल्पना और आत्मा नुभूति उस नया रूप देने को लगती है। अपनी कृति में भी समय बीतने पर सशो धन, परिवर्तन परिवर्द्धन जाति की प्रवृत्ति उमम हो तो आश्चर्य नहीं है। जनद्रोही अपनी इस प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए लिखते हैं— भई मुझ जपन से डर रहता है। कुछ सामन आए तो हमेशा बालन का जो हुआ करता है। मन कभी अपने तिमि से भरता नहीं है और तमलनी नहीं पाता। एमे काटने बचन का मिनमिना चले तो उसका अंत कहाँ है।<sup>१</sup>

इस सजन प्रक्रिया में स्यात बाह्य निमित्त के अर्थ में प्रभाव चल कर अंत प्रेरणा को संचालित करता है परंतु वहाँ भी प्रतिभा की शक्त है। कवि वचन इस सजनशीलता की व्याख्या करके बताते हैं— अनुभवा में डूब और अभिव्यक्ति का माध्यम पर यथामभव अधिकार प्राप्त करके मैंने अपने जापका प्रेरणा पर छोड़ दिया है। प्रेरणा के अस्तित्व का मैं मानता हूँ। किसी मन स्थिति में, किसी परिस्थिति में किसी

<sup>१</sup> जनेद्र, व्यक्ति कथाकार और चिन्तक, स० बकिनिहारी भटनागर, पृष्ठ ११२

घटना से, किसी दृश्य से, किसी विचार से, सज्ज्व की यह प्रवृत्ति महत्ता जाग उठनी है जो गजन के लिए निग्न विवज करती है।<sup>१</sup>

प्रगतिशील जीवन में काई भी स्रात नूतनता के अभाव में निरर्थक मिद्ध होता है। जैसे 'नयी पीढ़ी के साहित्यकारों के ऊपर अबके समकालीन साहित्यकारों ने यह आरोप लगाया है कि उनके विचार पिम पिट हैं वे मर्देव जागर और प्राचीन विचारों को गले लगाय रहन हैं। ज्ञाति में उनकी जास्था नहीं है उनके विचार मनातन और चिरन्तन जीवन-मगन पर आधारित रहन के कारण उन तत्वहीन और निरर्थक है। उनस वतमान समाज को एक व्यवस्थित रूप दन के लिए कोर् प्रेरणा नहीं मिल सती कयानि प्राचीन विचार प्रणाली अथ वगुन-कुछ उद्देश्य हीन हो चुकी है।'

जत्र साहित्य में प्रचलित भाषा शरी भाव विचारों आदि में शिथिलता आती है तब उमी में स नव निर्माण की शक्ति प्रस्फुटित होती है और वतमान में आभासित भावी संवत्ता का ग्रहण कर प्रतिभाशाली कवि उन साकार कर देता है। जस, 'प्राचीन काव्य के आदर्शों और भावों की शिथिलता का परिचय सबसे अधिक आख्या नक गीतिया में मिलता है उनमें काव्य की पूव प्रचलित शली का तनिक भी आभाम नहीं मिलता, वरन उनमें भावी काव्यादर्शों की पूव उाया-मी मिलती है। वे काव्य के नूतन युग की अग्रदूत हैं। उदा० लाना भगवान्गीय का वीर प्रताप रीतिनालीन काव्य-परम्परा और आदर्श, भाषा और छन्द रूप और शली स विलकुल विपरीत है फिर भी उसका साहित्यिक गारव कम नहीं है।''

भविष्य का वतमान में मूर्तिमान वरन की क्षमता का प्रमाण अनेक महान कृतिया में उपलब्ध है। यथा 'उमर खयाम को रमादर्या ता आज स छ सात सौ वरस पहले लिखी गई थी पर फिटज्जेरल्ड ने उद्द जिम रूप में अग्नेजी में रक्खा उसमें वे आधुनिक युग के सषप सदेहशील बुद्धि-जीविया की मन स्थिति का दर्पण बन गइ।'

मौलिकता का स्वरूप वास्तव में मौलिकता प्रतिभा की चेतना है, अतःशन है। एक ही वस्तु अथवा घटना या दृश्य का दर्शन सब करत हैं परन्तु कलाकार या कवि की पनी अतःष्ट उससे मम का वेधनवाणी होने से गहर में पठकर अनल में माती निमाल जाती है। कवि और प्रतिभा, प्रतिभा और मौलिकता इतने अभिन्न हैं कि 'कवि' शब्द के साथ उनका ग्रहण अनक्षित रूप से ही सही, अवश्य हो जाता है। कवि प्रतिभा में मौलिकता का कारण है यथाथ युग-दजन का क्षमता चितन की

१ नय-पुराने भगवत, वचन, प० १४६, मेरी रचना प्रविर्षा

२ उपयामकार भगवतीप्रसाद वाजपयी, शिल्प और चितन

डा० ललित गुक्त, प० १२३

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, (१६००-१६२५), प० ६७-७८

४ नए पुरान भरोखे वचन, मैं और मेरी मधुगाना, प० १६५

गभीरता, गमरयात्रा के समाधान की गोज म तत्पर अवधि की युक्ति, सवेननीत हृत्प, निर्भयापूर्वक आत्माभिव्यक्ति अर्थात् तिलम म अर्थात् आत्म विज्ञान, अपने प्रति सचाई परम साध म शिष्टा व्यापहारिक गत्या व मनगान म निहित परम मत्प की उपासना ।

इत विनिष्ट तत्त्वा स उजसित और अनुप्राणित प्रतिभा क कारण ही साहित्य के समस्त स्रोता का अनुसंधान कर लने क बाद भी पूरा उपर्याय का समाप अनुसंधाना को नहीं होता । अनुसंधान की प्रक्रिया म कवि की मौलिकता की जानकारी स ही अनुसंधाना का भी मौलिक चिंतन का कोई राजमाग या कम म कम एकाप पगठड़ी जरूर शिा जाती है जो साहित्य म उपासक क त्रिण परम आनंद का विषय है । हमारे मन्त्रो म यही कारकिर्मी और भावकिर्मी प्रतिभा का सुभग मित्ता है कवि और सहृदय की एकात्मता है । कवि और अनुसंधाना के सुवा सिगी क इस मन्त्र म कवि क असली व्यक्तित्व का धीर, गभीर मधावी चिंतक और मर्मी ही पहचान मकता है और इस पहचान का मुक्त हृदय से आनन्द भोग सक्ता है ।

साहित्य की विभिन्न विधाओं और प्रत्येक विधा के विभिन्न तत्वो म प्राण रूप स प्रतिष्ठित कवि की आत्म चेतता भी नय नय और अनक रूपा म दिशाई देती है । किसी की मौलिकता मूल्यो क नवनिर्माण म ता किसी को परिवर्तन म किसी की प्रतिश्रियात्मक प्रभाव क रूप म तो किसी को सरल आत्माभिव्यजना म श्रियाशील होती है । इसी कारण प्रत्येक कृति के मून म प्रेरणा या प्रहण का कोई-न कोई सात रहत हुए भी उसकी अपनी एक विशिष्टता और नवीनता भी हाती है ।

**मौलिकता अर्थात् प्रतिभा** मौलिकता की एक शक्त है आत्मानुभूति । कवि की मौलिकता का स्रोत अर्थात् रचनाकार के परिपूर्ण व्यक्तित्व का दशन । कवि का मूलम अनुभव ही शब्द रूप म अव्यक्ति होता है जिसे हम रचना की मता नै है ; इस अनुभव की शक्ति एसी जद्भुत हाती है कि प्रतिभाशाली क द्वारा किसी कृति क किय मय अनुवाद म नी उमका प्रभाव लक्षित होता है । वह प्रचलित का नया अर्थ देती है, प्राचीन का नया बनाता है । मौलिकता क जनान म प्रेरणादि स्रोत माय अनुकरण या स्पून अनुवाद रह जात है । प्रतिभाशाली की दष्टि मौलिक ज्ञान का कारण है उमका श्रिकाल दशन । वह बीत नून का वतमान क त्रिण उपमागी बना कर वतमान की समस्याओं का समाधान करने म उमकी सहायता लता है और उस युगसापेक्षता देकर भूत के शत्रु म प्राणा का सत्राग करना है । वतमान तक अपनी दष्टि का निरुद्ध न रख कर भविष्य क मन म भा प्रवेश कर जाता है दूर का निकट लाकर रक्ष देता है और वतमान का मफत पय पशक जनता है ।

**मौलिकता का रहस्य** प्रत्येक अनुसंधाना मौलिकता पर शिचार करने के पहल साता का सम्यक् श्रमयन कर यह बाछनीय है जमका सब कुछ मौलिक ही मानूम पन्ना । साता की उपनष्टि होने पर शिश्तेषण की प्रक्रिया म मून सान और

वृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करके उनमें विद्यमान समान प्रसमान तत्वों का वर्गीकरण करना चाहिए। समान तत्वा में मूल से क्या विशेष है यह जान लेने पर उसकी व्याख्या सत्र हो जायगी। असमान तत्वा का संबंध कवि की रचि, अनुभव, सस्कार, उसकी आस्था, वानावरण आदि अनेक व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियाँ सहाता है। इस अध्ययन में जिनकी अधिक मूर्धता आती है अध्ययन के साथ बाह्य विषय छूट जाते हैं, कवि के व्यक्तित्व का साक्षात्कार होता है। वच्चनजी ने मौलिकता को रचना के अर्थ में परिचित करत हुए लिखा है— रचना यदि सच्चे ज्यों में रचना है, जिसमें रचनाकार का परिपूर्ण व्यक्तित्व तत्पीन है तो वह सजनात्मक प्रक्रिया है। सजन कस हाना है इस जानना या घतनाना विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। और यह सवमाय धारणा है कि सजन के क्षण में विश्लेषण और विश्लेषण के क्षण में सजन नहीं हो सकता। रचना प्रक्रिया जाननी जिनासा हा भी ता उस सम्यक् रूप में शान करन के लिए काइ सजक समय हा सकेगा, इसमें मुझे सद्दह है। केवल रचना के विश्लेषण में भी रचना प्रक्रिया का अनुमान भर किया जा सकता है, जान नहीं। कहने का तात्पर्य है कि रचना प्रक्रिया का रहस्य पूरी तरह में नहीं खुल सकता, और इस रहस्य में किसी भी बड़ी रचना का सौन्दर्य निहित है।<sup>१</sup>

कबीर रवीन्द्र की मौलिकता का रहस्य का उदघाटन करत हुए कवयित्री महादेवी लिखती हैं— अपनी कल्पना का जीवन का सब क्षेत्रा अनन्त अवतार देने की क्षमता रवीन्द्र की एनी विशेषता है जो अन्य महान साहित्यकारों में भी विरल है। भावना जान और कम जब एक सम पर मिलते हैं तभी युग प्रवतक साहित्यकार प्राप्त होता है।<sup>२</sup>

अनुवाद में मौलिकता स्पष्ट है कि प्रभाव और प्रेरणा निमित्त मात्र हैं, मौलिकता व्यक्त की आत्म चेतना है और इन निमित्तों से वह उत्पन्न है। प्रबुद्ध आत्मचिन्ता का अनूदित वृत्ति भी मौलिक-सी जान पड़ेगी और मौलिकता के अभाव में स्तूल और गुल्फ अनुवाद या अनुकरण हा कर रह जायगा। वच्चन ने स्वाइयाते उमर खयाम का अनुवाद किया है, उसकी स्पष्टता करत हुए वे स्वयं उमर खयाम और अपनी दृष्टि का अंतर समझाते हुए लिखते हैं— मधुशाला की स्वाइयाते उमर खयाम का अनुकरण मात्र कहना मैं पसन्द न करूँगा। उमर कुछ अपने-पन की चेतना का आभास में प्रथम संस्करण के संवोधन में ही द दिया था। जहाँ तक मुझे मालूम है किसी ने उमर खयाम और मर दृष्टिकाण में अन्तर दर्शन का प्रयत्न नहीं किया। अंग्रेजी अनुवाद (The House of Cine) की भूमिका में मर मित्र स्वर्गीय श्री नानप्रकाश जीहरी ने इस ओर कुछ सत किया है। उनका कहना है कि उमर खयाम में जीवन का प्रति वितण्णा है और मुमम जीवन के प्रति आसक्ति।<sup>३</sup>

१ नय पुरान भरोध प० १६७ १६८

२ पय क सायी प० ८

३ मधुशाला वच्चन, प० १६६



अनुवाद म मौलिकता के अनुगघान के लिए अत्यन्त सूक्ष्म मनोवचनानिक दृष्टि की ओर तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा है। व्यक्ति को अपनी रचि सस्वार साम्यता अभिलाषा परिस्थितिया का प्रभाव और जीवन दशन कभी कभी मूल कति वा नघा अथ देते है। तब अनुवादक की दृष्टि म जो अनुवाद है वही समीक्षण वा अनुगघाता के लिए मौलिकता की ग्राज वा साधन वा जाता है।

प्रेरणा और मौलिकता मौलिकता के मूल म जब प्रेरणा मोत की उपलब्धि होती है तब भी तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता रहती है। व्यक्तिगत चेतना के अनुरूप ही प्रेरणा वा प्रभाव ग्रहण होता है। अनेय के साहित्य को अनुकरण बहने वाले कई जालोचक हैं परन्तु डा० सत्यपाल की मनाविशनपथ दृष्टि ने उनकी प्रतिभा का दशन कुछ अनोखे रूप म किया है। उनका विश्वास है कि— अनेय न अपनी वैयक्तिक चेतना के अनुकूल फ्रायड के प्रभावा को अधिक ग्रहण किया। फ्रायड के मनो विश्लेषण विज्ञान ने प्रभाव विस्तार से उपयास-रत्ता म आत्मनिष्ठता की प्रवणता वा विशेष विकास हुआ। इससे उपयासकार भी आत्मविश्लेषक हा उठा। तदनुकूल अनेय की वैयक्तिक कला दृष्टि ने अपन आत्म की अभिव्यक्ति म—आत्म निरीक्षण आत्म विश्लेषण नया आत्म समीक्षण करते हुए आत्मा की उपलब्धि म—शिल्प को भी न यता उमुक्तता स्वच्छता तथा परिसत्यता दी है इसम उनका असाधारण व्यक्ति का योगदान भी स्पष्ट है जो पहले श्रातिकारी था—विन्शी सत्ता के विरुद्ध शक्ति कायों मे मलग्न रहा—जोर वाद म साहित्य म भी कति लखर जाया। यस्तुत नये-नये प्रयोगों की प्रवृत्ति उनके विद्रोही स्वभाव तथा व्यक्तिगत सम्पन्नता वा व्यक्तिवादवादिता की बहुत कुछ मौलिक विणपता है जो का प जगन और कथा ससार म एक साथ प्रस्तुटित हुई।<sup>१</sup>

परंपरा और आधुनिकता के समन्वित प्रभाव मे मौलिकता प्रतिभाशाली कवि परंपरा के निर्वाह मे सन्तुष्ट नहा होता। उसकी अतन् दृष्टि नित्य आधुनिक होने के कारण वह प्राचीनता म भी सनातन मूल्या के रूप म उपलब्ध आधुनिकता का दशन करके जड परंपरा से डर कर मूल धन्तु वा सुरक्षित रखकर भी उसके आवरण वा सागापाग धराने म समर्थ होता है। पौराणिक वाच्यो क नवनिर्माण म यह चेष्टा प्राय देरन म जाती है। भागवत के दशनम स्वयं की लखर रचना करने वाले जयदेव, विद्यापति मूरदास आदि कविद्या ने अपनी मौलिक उदमावाताआ वा सम्भव परिणय दिया है। राधा कृष्ण का प्रेम वणन भागवत नहा है। इन कवियों की भगवत प्रेमानुभूति न उस नया अथ दिया परन्तु शैलिकान म मात्र परंपरा निर्वाह ही लक्षित हाता है। हरिऔधजी द्वारा परंपरा जोर आधुनिकता का जसा समन्वय हुआ, उसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है—प्रारम्भ म ता हरिऔधजी कृष्ण त्रिपथक रचनाआ म परंपरा का विरक्षण करने रह विन्नु जाग धरकर अपन चिन्ता एव

युग की पुकार से प्रभावित होकर उन्होंने जपन का नवीन दिशा प्रदान करने का प्रयास किया। 'प्रियप्रवाम तथा 'बदेही वनवास इसी दिशा की ओर बन्द हुए चरण हैं।' हरिजीषजी ने अपनी इन रचनाओं में अवतार का आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत करके ईश्वर विषयक अपने व्यापक दृष्टिकोण का जो परिचय दिया है वही उनकी मौलिकता है।

लेखक आत्मानुभूति की तीव्रता और प्रखरता के कारण प्रेरणा और ग्रहण के रहते भी तथा परम्परा से अभीष्ट ज्ञान प्राप्त भी मूलवृत्ति में उपन्यास नामधेी का शरीर की निम्नत नवीनता से अनुप्राणित कर रहा है — लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि उपन्यास बहुत कुछ 'गयरी शैली' पर निर्भर था। जस-जस घटनाएँ जगमग होनी शुरू हुईं वही तब वह लिखने लगा गया है। जहाँ उसके भावावेग की गति तीव्र होती है, वहाँ वह जमकर लिखता है; परन्तु जहाँ दुःख का आवग बट जाता है वहाँ उसकी लगना गम्भीरता के साथ मम का छूना जाती है। अन्त में उच्छ्वास म तो वह जस अपने म ही घोर गीर डूब रहा है। इस प्रकार की वणन शैली का मरुत माहित्य में निम्नत जभाव है और यही इस उपन्यास के प्रणेता की मौलिक कल्पना है। 'हजारीप्रगाद द्विवेदी रचित वाणभट्ट की आत्मकथा और वाण-रचित 'कादम्बरी' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने हुए इस माहित्य कल्पना का व्याख्या भी दी गई है। वाणभट्ट की आत्मकथा और कादम्बरी की प्रम-व्यजना में यही स्पष्ट अंतर लिखता पढ़ने लग जाता है। 'कादम्बरी' में वर्णित प्रेम अत्यन्त मुदर है। प्रेमोजना के बीच हान वाली सभी शास्त्रीय व्यवस्थाओं का चित्रण कादम्बरी-कार ने कर डाला है जिसमें परम्परित शृंगार का सुन्दर वणन हम कादम्बरी में मिल जाता है। वाणभट्ट की 'आत्मकथा' की प्रेम व्यजना अत्यन्त गूढ एवं अप्रकट भावा के आधार पर हान के कारण कादम्बरी में भिन्न है।'

प्रतिक्रियात्मक प्रभाव और मौलिकता प्रतिभाशाली लेखक मलय का प्रेमी और जाग्रही हान है। मलय के विपरीत परिचय घटता जसा या कथन उसके लिए अमह्य हो जाता है। अमत्य शन श्रृंगार या प्रचार के लक्ष्य होकर वह सत्य का अनुसंधान और प्रकाशन के अमत्य में गमाव करने के लिए जब सन्देह हाता है तब अमर प्रतिविद्यामन प्रभाव में वह प्रेरित हान है। मयानुसंधान के फलस्वरूप उसके द्वारा हान वान मलय का प्रकाशन उसकी मौलिकता का भी प्रकाशित करता है — 'स्वदा प्रेम की प्रवत भाजना के लक्ष्य में उनके अध्ययन के भी प्रभाव स्वीकार किया

१ महाकवि हरिजीष और प्रियप्रवाम, देवद्वर्ग पृ० १५०-१५१

२ ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और वाणभट्ट की 'आत्मकथा' डॉ० विभुवनसिंह, पृ० २५-२६

३ वही, पृ० २५

जायगा, जिनमें सम्प्रति पञ्चाननियों के सम्मुख पत्थर बनकर उठते वेग का प्रचण्ड बहाव था। सामान्य तथा अन्य क्षेत्रों पर विशेषी चेतना द्वारा भारत का अपमान यहाँ की वीरता और महानता पर व्यर्थ रूप उनका मन तिलमिला उठा। वर्माजी ने अपन पुत्रजा जीर समाज से वीरतामाया के प्रति जो यज्ञ और शीघ्रान्त मुता था, विवक्षितिया ने जो उनके हृदय पर एक रोमन् प्रभाव डाल दिया था उसके विपरीत विदेशी लक्षणा कृत पुस्तका ने गहरी प्रतिप्रिया उत्पन्न की और उद्दान सन्धी घटनामा तथामा द्वारा सत्य को लक्ष्मी से समाज के सम्मुख उपस्थित किया।'

मूल्यों का नव निर्माण और मौलिकता निरन्तर-नूतन मोक्ष का प्रेमी परिवर्तन का प्रेमी होता है। वह जानता है कि परिवर्तन ही जीवन है। आवश्यक परिवर्तन के अभाव में चिरन्तन मूल्य भी घिस पिट हो जाने से जलर और प्राचीन विचारा को छोड़ नहीं पाते। प्राति की या परिवर्तन की आवश्यकता के रहने भी उसका अभाव में आयु निव जीवन के लिए कोई व्यवस्था यह नहीं दे सकता। दूसरी ओर नवीनता का प्रेमी उपलब्ध वस्तुओं परिवर्तन किये बिना सतृष्ट और प्रसन्न नहीं होता। यह कष्ट छाँट और परिवर्तन की प्रक्रिया अनन्त काल तक चलती ही रहती। इसी कारण साहित्य में मूल्यों के नव निर्माण की चेष्टा जितनी स्वाभाविक है उतनी मौलिक भी है। नयी कहानी की उपलब्धिया पर अभिप्राय दत्त हुए बताया जाता है— 'यही या पुरानी पीढी केवल आयु और काल क्रम में अनुसार विभाजित नहीं होती जीवन की गति और इतिहास की प्रक्रिया भी ये व्यक्त करती हैं। इनका सघन मूल्य दृष्टि प्रतिमान और भाव बोध के परिवर्तन से कारण होता है। अनि भ्रम उग समय जाता है जब या तो यह मान लिया जाता है कि काल का क्रम रुक गया है और माननी नियति और प्रकृति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। जन परम्परा और पुरातन ही श्रेष्ठ है या जब तम और पुरान में एक नरन्तय के सन्ध का ध्यान में न रग कर केवल उनके विराध की ही समस्या का मूल बिन्दु मान लिया जाता है। अतु प्रत्यक्ष नयी परिस्थिति में सामाजिक सन्ध जोर सन्ध परिवर्तित हाते हैं और नय जीवन मूल्यों की चेतना जाग्रत हानी है। एसा नयी परिस्थिति में रचना के सरकार और प्ररणा भी वर्तन हैं। यदि जीवन की प्रक्रिया अधिग मत्वात्मक दृष्टि जाति है ता कभी कभी पूरा स्वरूप बदल जाता है तब यह परिवर्तन रचना प्रातिकारी हाता है कि 'नया विज्ञान न हाकर एक स्वतंत्र उद्भासना प्रक्रिया लगता है।''

एसी स्थिति में पुराने मूल्यों की उपेक्षा हो जाना भी संभव है। 'जन्म की श्रेष्ठ एक जीवनी उपेक्षा में समाज तथा सरकारी के प्रति उनकी उपेक्षा लिखाई

१ वर्णावनवान वर्मा—साहित्य और समीक्षा मियागमशरण गुप्त, पृ० ३१

२ नई कहानी दगा जिशा सभावना थी सुरद्र प० ६१

देती है। परंतु माय हो माय वे नवीन सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के अवेपण के लिए आतुर भी दिखाई देते हैं। अर्जेंटिनी ने इस 'स्वातंत्र्य की लड़ाई' बनाया है।<sup>१</sup>

'स्वातंत्र्य लोका' की चेतना ने भारतीय आजादी के आंदोलन में सलमन और उमसे प्रभावित साहित्यकारों का ऐतिहासिक मूल्यों का नवनिर्माण करने के लिए उनकी प्रतिभा को उजागर किया। बर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यास इसका प्रमाण हैं—' बर्माजी ने ऐतिहासिक मूल्यों का निवारण किया और नवीन मपी तत्वों का पूर्वाग्रह से विमुक्त नवनिर्माण और नवप्राण प्रतिष्ठा दी चिन्ता का मूर्तिया को। लक्ष्मीप्रसाद ने सधप वयविक स्वतंत्र्य का मिहना' का प्रयोग नहीं था, यरन राष्ट्रीय चेतना की जागृति में पिछनी स्वातंत्र्य भावना का दृक्ता अगार था। मग नयनी भुवन विजय 'माधवजी सिधिया में भी राष्ट्रीय पुनीत भावना का समावेश भारतीय संस्कृति का समुच्चल दिग्दर्शन मुग है। राष्ट्रीयता की पुकार युग की बराहती पुकार के निमित्त भी आवश्यक प्रतीत हुई। भारत परतन्ता की अग्नि में जन रहा था नराश्य और अनास्था से समस्त वायुमंडल आच्छन्न था उम समय उन्हाने साहित्य सष्टिया के माध्यम से आज के नियाजन द्वारा भी उल्माह और स्फूर्ति का निर्माण किया। मानवता के सच्चे पुजारी के नाते सांस्कृतिक उच्चता प्रस्तुत करत हुए बीरस्व का हुका युगानुक्रमन परिजश में समहीत किया। ऐतिहासिक छविया का नय गिरे से नद स्वतंत्र दृष्टि से विचारणीय बना दिया और ऐतिहासिक साहित्य का मापदंड और स्तर गहन ऊपर उठा लिया मौलिकता के समावेश द्वारा उचित प्राण प्रतिष्ठा दी।'<sup>२</sup>

अनुभवाना किसी एक लेखन एक लेखक वग या किसी युग विशेष की पवृत्ति में मौलिकता की लोका का प्रयत्न कर और स्वयं किसी निष्पक्ष के आधार पर अपना मन स्थापित कर उमके पूर्व अय जात्राचने विवेचना अनुसंधाना का मत अपने खन मन की दृष्टि से उपलब्ध है। ना सावधानी से उस पर विचार करना चाहिए और अपना मन भ्रमर जान पता उम बदलन में किसी प्रकार की हिन निभक का अनुभव किय बिना सशोधनपूर्वक पुनर्मूल्यांकन करके वास्तविकता के आधार पर निभय देना चाहिए।

अर्जेंटिनी के मौलिकता विषयक उपयुक्त मत का समर्थन अयत्र भी किया गया है— जास्थाहीन बौद्धिकता तथा मध्यवर्गीय गुणों का म शुध इस युग के उपयासकारों ने पिछले समय मूल्यों का निषेध किया तथा उहान नवीन मूल्यों की स्थापना की। इन उपायकारों में अर्जेंटिनी इनाचंद्र जागी तथा यशपाल प्रमुख हैं। समाज के मपूर्ण विकास तथा सांस्कृतिक परम्परा का अन्वीकार कर दिया गया। मूल्यों का

१ आत्मन प, प० ६७

२ बदायनलाल प्रसा - साहित्य और समीक्षा, मियारापकरण गुप्त, पृ० २०६

निश्चित करने के लिए आत्म मानव की प्राथमिक प्रवृत्तियों का आधार बनाया गया बौद्धिक अनास्था न समाज तथा सस्कृति की सत्ता ही टुटती है। अतः उनकी दृष्टि में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानव भी उपधनीय है। समाज तथा सस्कृति का सम्पूर्ण विनाश ही उनकी दृष्टि में गलत ढंग से हुआ। अतः य उपयामकार पुन आत्म मानव की मूल प्रवृत्तियों की सत्ता धारित करके समाज, सस्कृति तथा सभ्यता का नव निर्माण करना चाहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि ये मध्यवर्गीय उपयामकार समाज में अपना अस्तित्व मिटता देग कर वर्तमान स्थिति से दुःख है अतः प्रतिजिया के फलस्वरूप वे आत्म युग की शरण लेना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति ठीक ऐसी है कि विदेशी शासन की पराधीनता में निरस्महाय स्थिति के कारण कतिपय चिन्तक प्राचीन इतिहास की शरण लेते हैं।<sup>१</sup>

**नवीनता और मौलिकता** इस प्रकार मूल्या का नवनिर्माण अर्थात् परिवर्तन की प्रक्रिया चक्रवर्त हान के कारण प्राचीन की नूतन शक्ती में अवतारणा है। स्वय अनुसंधाता नवीनता के मोह की आचोच में इस बात को देख नहीं पाता। आमूल परिवर्तन से ही मूल्या का नवनिर्माण संभव है और इनके लिए नवीनता के प्रति मोह न होना जरूरी है अ यथा सर्वप्रथम वह अपने को ही धोखा देता है। उस चाहिए कि वह अपने को ही धोखा देता है। उस चाहिए कि वह नवीनता का सही अर्थ प्रथम जान ल— नवीनता और नवीनता के प्रति आसक्ति दो अलग चीजें हैं। आसक्ति बहुत ही तेज भूठ हानी है। हम अपनी आसक्ति में औरों से अधिक अपने को छलते हैं। आत्म मताप जो आत्म वचना का ही दूसरा नाम है—के लिए हम असल के नमून पर एक नकली चीज तयार करते हैं और जिस तरह प्रेम और जिस तरह रोमांटिसिज्म के अंतर का समझ सकते हैं असमय हर रोमांटिक आदमी यह विश्वास करना चाहता है कि उसका रोमांटिसिज्म ही प्रेम है उसी तरह नवीनता के प्रति रोमांटिक रूप अपनाकर चला वा न बलाकार अपने आप का यह विश्वास दिनाना चाहते हैं कि नवीनता के प्रति उनकी आसक्ति ही नवीनता है। लेकिन हर रोमांटिक जानता है कि उमक प्रेम में कहा न नहीं बाँधे छन है। इस कारण वह अपने आपका लो बार छनता है। नवीनता के प्रति आसक्ति बलाकार भी स्वयं का दो बार छनता है।

आत्म में किसी चीज का छाड़ कर नही अपने संपूर्ण व्यक्तिव का तात्पर्य बाँध चीज नयी हानी है। जय मूल्या में परिवर्तन होता है तब सबसे पहले उनका लोचो में परिवर्तन हाता है।<sup>२</sup>

यदि साहित्यकार आत्म वचना से अपनी रक्षा चाहता है तब वह यथाथ और आदश का स्पष्ट अंतर जान कर आत्म का यथाथ से अभिन्न अनुभव करके यथाथ

२ नयी कहानी सद्भ और प्रवृत्ति डा० दशोशकर अवस्थी, प० १६८ १६६

१ हिन्दी उपयाम—समाजशास्त्रीय विवेकन, डा० चण्डीप्रसाद जाशी, प० ४२१

का ही आदर्श में परिणत करने की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया का अपनी रचना में संचार कर। यही उसकी मौलिकता होगी—“जोशीजी अपने पात्रों के प्रति सहानुभूति आकृष्ट करने के लिए अथवा उनके जीवन से कुछ उपदेश निकालने के लिए यथाथ से कभी विमुख नहीं हान। यथाथ की उनकी धारणा भी व्यापक है क्योंकि उन्होंने धार्मिक जीवन और बाह्य जीवन दोनों का समान महत्त्व दिया है। कुछ बाहरी आदर्श उपस्थित करने उनकी जागृता की गति माड़न की बात न करके जोशीजी स्वाभाविक आदर्श का उल्लेख करते हैं अर्थात् वह आदर्श जो यथाथ स्थिति में अपने आप विवर्धित होता है।”<sup>१</sup>

युग-बोध और मौलिकता मौलिकता का अर्थ स्वच्छन्द रूपना नहीं है उसमें अपने युग और समाज में मापसतता जतिनाय है। साहित्यकार स्वतन्त्रता हाकर भी अपनी रचनाओं में युग विशेष का प्रतिबिम्बित क्रिय त्रिना अपने मन में मफत नहीं मानता। युग निर्गमन साहित्य मनातन मूल्या से हीन हान पर ता जन्म ही मर जाता है। तखनी का प्रयाग लेखक का अकिगत रहा नहीं जाता और वह समष्टि का ग्रहण करने ही युग को अपने में आत्ममात करने जात्माभिचरना में प्रवृत्त हाना है—वाजपेयीजी का साहित्य वस्तुतः युग का अनुभूतिवा पर जायाति है। उहाउ केवन कल्याण के सहारा आकाश कुमुदा या चयन नहीं किया है। और अब ता वह युग भी धीन चना जब उपयाम का केवन भारजन का माधन माना जाता था। वनमान स्थिति ता यह है कि उपयाम साहित्य की वह त्रिया है जिमक आचार पर हम युग-चिन्तन और युग प्रगति विवित करते हैं। वाजपेयीजी के उपयामा में युग-बाध का पना तमान के लिए हम दो बातों पर विचार करना होगा—

(१) तखक ने युग के अनुकूल अथवा प्रतिकूल अपनी क्या मायनाएँ व्यक्त की हैं ?

(२) पात्रों के माध्यम में युग मरधी विचार किम प्रकार के हैं ?

एतिहासिक-पौराणिक प्रवधात्मक रचनाओं के लिए युग बोध जितना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है उतना ही निरपेक्ष और दुष्पर भी प्रवधात्मकता में क्या का ग्यात और उदात्त—दोनों रूपों में स्वतन्त्र और मिश्रित स्वीकार किया गया है। काई भी कथाकार एतिहास का माप म्यात रूप में नहीं अपना करता। उसे अपना कल्पना का सहारा लेकर अपने युग के नाँव में बातना पहता है उमी प्रचार गुण काय रूप हान हुए भी इतिहास है। उसमें आयुजितना के लिए परीप्त सामग्री रहन भी युग का व्यञ्जित करने के लिए आवश्यक परिचयन करना पडता है। गुप्तनी के मूत्रवर्ती निरुवाण की शाल्या में लिखा गया है—“एतिहासिक-पौराणिक कथाओं को गुप्तजी

१ इलाक़ में जागी के उपयाम, वनभद्र निवागी, प० १७२

२ उपयामकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी—शिल्प और चिन्तन डा० जितन गुप्तन प० १०२

अपना अवश्य ही तबु उगाएगा मत ।। उक्त माध्यम में सुगीत समस्याओं का पुरस्करण एवं समाधान करा है । साथ ही उक्त उक्त म अतिमातृवीय तत्त्व निराकरण कर मटा व्याभावित परिभाषा प्रकाश करा ता प्रवृत्त किया है । परम्परा के प्रति अटूट श्रद्धा की परिभाषा भी मधु-नीकरण मोचिता मगाता म समर्थ है । मोचिता उक्त है परम्परा तथा प्रवृत्त की उक्त की ।

याम्परा में नीतिम और गानि म अ टा ता का कारण है प्रथम म ता-पक्ष की प्रधानता और दूसरे म ता प ट का । यथा का रचितर ब्यापक विम मत्व घटनाओं म कल्पना की म तीव्रता विनाय है । आधुनिक तावनाओं की जोर विचार पद्धति की व्युत्पत्ता म अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है । मगी उपनिषद विम जीवत क यथाय त अनुभव और तदुक्ति की जगता है । त म मोचिता की मात्र क विम लगव का कही ताता न । पत्ता क्याति— 'मोचिता का गुण उा यागाता की प्रतिभा का परिचायक ताता है । विगी उा याम क कथात म जितनी मोचिता ताती है उता ही उता मत्व बह ताता है । यदि विम त अनुभार दगा जाय ता ममार क मभी उपयामा ता प्रवृत्ता रगीकरण का क उह विभिन विषया क म्र त गन रगा ता मगा है । परंतु ए म मय उपयामकार की दृष्टि की मूढमता का परिचय म यात स मितता है त व म जीवत की महनता म विम सीमा त परिरचित है तथा उाकी मूनभूत समस्याओं जोर उा म मवधित तथ्यो का उमन माशाकार किया है जयवा नती क्याकि द ही कुछ बाता स म यात का पता तनता है कि उपयामकार न कभी जीवत क यथाय का तीव्र अनुभव किया है या नही । यदि कोई उपयामकार विगी एव अनुभूति की गभि यति जधित विस्तार और मूढमता स कर मगा है तो यह उसकी मोचिता दृष्टि का परिचय दे सकन योग्य है क्याकि एव उपयामकार के दृष्टिकोण म मोचिता की कितनी सभावनाए हैं यह इही कुछ बाता पर निभर करता है ।

मनीत सामग्री म निहित सत्य की रक्षा साहित्यकार का प्रथम कतव्य है । वह आवश्यकतानुसार युग की माँग की पूर्ति के लिए कुछ हद तक कथा तथ्य म परिवर्तन कर सकता है, पर आदर्श को विवृत करने का अधिकार किसी को नहीं । मैथिलीशरण गुप्त मौलिक जोर आधुनिक होने हुए भी प्राचीन आदर्शों के प्रेमी थे— साकेत अभिनव राम काय है । उसकी कथा वस्तु चरित्र सृष्टि और विचार धारा आधुनिक युग का परिवेश और नवीनता लिए हुए है कि तु सुप्रसिद्ध राम कथा को गुप्तजी विवृत नहीं कर सकते थे । एक ओर रामोपासना उनकी कौटुम्बिक वस्तु थी, जो उह

१ मैथिलीशरण गुप्त कवि जोर भारतीय संस्कृति के आभ्याता, उमाकांत, प० १८४ १८५

२ हिंदी उपयाम कथा शिल्प का विकास, डा० प्रतापनारायण टंडन, प० ७६ ७७

अपने वातावरण और मस्कार के रूप में उपनद्य हुई, दूसरी ओर व अमृत अथवा ज्ञान का पक्ष भी नहीं ल सकने के योकि भारतीय मस्मृति पर उनकी जास्था प्रतिप्रियामूलक थी भी नहीं ।<sup>१</sup>

प्रवागनर में हम मौलिकता का रति का परिष्कार कह सकते हैं, जब लगव जाण से प्रेरणा प्राप्त करके उम दीनी वस्तु का युगानु रूप और मजीब बान का प्रयत्न करता है और उपक्षिप्त म महत्त्व की स्थापना कर उसमें नया जावण भर देता है तब महीत क्या जाधार मात्र हानी है । गुप्तजी की काय रत्ना में यह प्रयत्न स्पष्ट नजर आता है—'मामाजिक आदर्शों का र्थियाँ जब क्या का निष्प्राण जा रचित्रा का जन्म बनाज गयी है तब उम नये चेतना प्रदान करने की जावश्यकता हाती है । आधुनिक युग की मानवतापादी काव्य प्रवृत्तियाँ न राम क्या का मानवीय भूमिका पर प्रविन किया और उमके उपक्षिप्त चरित्रा का नवजीवन प्रदान किया । आशय यह है कि साकत चरित्र प्रधान क्या मरि है । क्या विकास ता उमका पृष्ठा धार मात्र है । उमके द्रुष्टिपूर्ण वस्तु विन्याम का एक कारण यह भी है । उममें तम्ब दश्यावना सजापा जात्मोत्सारा रूप चित्रणा और प्राकृतिज बणना की सगनि चारि त्रिभूमिका पर दग्नी जानी चाहिए । कवि न क्या-भूय का छाया नहीं, क्याकि उमकी काव्य-मदति वस्तु-मुक्ती है, जात्मा मुग्नी नहा ।'<sup>२</sup>

## १ चरित्रगत

अनुभव और मौलिकता गुप्तजी न प्राय क्यावस्तु का मून रूप में ग्रहण करत हुए भी जाधारित चरित्र विषयक उनकी कल्पना न ऊमिला, क्वेयी जैसे पात्रा को उनके अनुवभगत मनावनानिक मत्या पर नया व्यक्तित्व प्रदान किया है—

चरित्र प्रधान काय की सफरता के लिए यह जावश्यक माना गया है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात प्रतिघात के द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित हाकर उसका प्रकाश में लाएँ । साकेत के सभी पात्र ऊमिला के चरित्र विकास में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायक हैं ।<sup>३</sup>

एतिहासिक या पौराणिक पात्रा के चरित्र चित्रण में लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं मिला सकता इसलिए गुप्तजी के ऊमिला और क्वेयी सबधी क्यानक में नयी कल्पना नहीं है हाँ उनके मनोवचनानिक चित्रण में उहान अपनी मौलिकता का अपूर्व परिचय दिया है । पुरान चित्र की उभारकर राक्षक रूप में प्रस्तुत करना भी लेखक की मौलिकता है । बहनला भट्टजी का पहला मास्क है जिसमें चित्र उभर कर आ गये हैं । क्या अपनी रोचकता बनाए रख सकती है ।<sup>४</sup>

१ मधिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काय डा० कमलाकात पाठक, प० ४०४

२ वही, प० ४४३

३ वही प० ४४४

४ वही, प० ४४७



उत्पाय क्यानना कं चरिता का पूण कल्पनित हाणे क कारण मोनिक बनाया जाता है, परंतु ये रगिण तयक क जुभय जगत क हाता ? जोर एक् चरित्र सत्य का पूण प्रतिनिधित्व करनवाता नी हाता है । यह पात्र तयग क चाम्बवित जगत म या स्वप्न जगत म सर्वधिता हाता है । कभी कभी दाता के समानय म अभिनय व्यक्तिय का निर्माण हा जाता है । रगिण-दष्टि क दृग रहस्य का प्रनाग म तात दृए बनाया गया है— 'उप यासकार का अपनी गारी गामप्रिया का कल्पता क माध्यम म ही ताता जोर न ताता तथा प्रस्तुत ताता पडता है जोर उका उपयासकार को पुन स्वयं जुभय भी करवा पत्ता है । हम प्रनाग किमी-न किमी पात्र क साथ उपयासकार की पूण आत्मीयता नी न जतनी है तिमम यह अपने व्यक्तित्व का आत्ममान करर व्यक्त ताता है तयकि उम पात्र क जीवत तात म यह उम रूप म कभी भी न ती रता । तयना जभ यह तापि तात ति तयक ते आत्मीय पात्र का छाड कर अय पात्र मत्य म नितात दूर हाता ? जोर उतम तयग के तयकि क जयवा जुभय का छग ती हाता । उपयास म तम ही एम पात्र हात है जो सीधे किसी एक व्यक्ति के जीवन म उतार तिय जात न कयाकि एक ही पात्र म मभी समस्याआ एन आरशा का उत्पन टगता तयग क तिम कभी भी गभय नहा है ।'

## २ क्यानक मे मौलिकता

रचना की क्या कितनी भी मोनिक हो उसकी पृष्ठभूमि म लख क निजी अनुभवा का सग्रह हाता है । विषयगत तबीनता त रहन नी मूनभूत समस्याओ क समाधान म यह पूण मोनिक हा सकता है । हम कमोटी पर उप यासकार के क्यानक की मौलिकता को परगन वाता मान टण निश्चिा करन दृए तिया गया है— 'उपयासकार के क्यान म मौलिकता तभी आ सकती है जत उस जीवत का यथाथ रूप म पूण जुभय हो । कयोकि मौलिकता का गुण उपयासकार की प्रतिभा का परिचायन होना है । विषय वस्तु की दष्टि से यदि तसार क प्रमुव उपयासकारा का प्रवर्तितन वर्गीकरण कर ता सभयत कुछ भिन-भिन शीपना के न तयत उन सभो का रखा जा सकता है किन्तु एक समय उप यासकार विषयगत तबीनता पर बल न दत दृग नी अपन उप यास म मौलिकता का गुण ला सकता है । उमकी दष्टि सूक्ष्मता का परिचय प्राय इम बात स राग जाता है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रीय प ता स कितनी गहनता क साथ परिचिन है जोर उमकी मूनभूत समस्याआ तथा उनस मवधित तय्या का इसत किम सीमा तव साक्षात्कार किया है । वस्तुत अनुभूत्यात्मक मौलिकता ही उपयास की सबसे बडी मौलिकता है जोर उसका निर्माण उपयासकार की अपनी प्रतिभा स हाता है ।'

१ ऐतिहासिक उप यास की सीमा जोर वाणभट्ट की आत्मकथा , डा० त्रिभुवर्नासह

२ हिंदी साहित्य का नया क्षितिज ( प्रतापनारायण टंडन का साहित्य )  
राजे द्रमाहन जयवाल पृ० ७६

उपयुक्त मिट्टात की स्थापना करने उगा अरुण उदाहरण व द्वारा प्रत्येक की मोत्रिकता की जोर निर्देश किया गया है—' डा० प्रतापरायण व उपासक म मोत्रिकता एक गान गुण है। मोत्रिकता की दृष्टि म यदि उक्त कथानता की विन नता की जाय तो विषयगत जीवितता जोर अनुभूत्यात्मक सू मता दाना ही गुण सहज प्राप्त हा जान है। मृत्यु के प्रत्यागित और अप्रत्यागित म्पा वी गृहज अनुभूति उनका और यथाध व धरातन पर चित्रण विषय की मोत्रिकता निविवाद सिद्ध कर म्ता है।'<sup>१</sup>

मत्र लयता की मोत्रिकता का स्वरूप एव गान व हाता। प्रत्या प्रतिभा अरुणी विशेषता तिल दृष्ट हाती है। एक नगर अनुभव का प्रमुपता दता है तो दूसरा कल्पना या अनुमान का। पर तु दाना तत्त्व कम अधिा अा म कथा निमाण म और अय सत्त्वा व निर्मा म रहो जस्य है। जनेद्र एम तथागत व जा अनुभव स अधिा तत्त्वाथिन अनुमानवा म प्रमी है। स्वय नगर व शान म—' मेर साथ जापरीनी प्रमुग तहा ग्नी है कल्पना प्रमुग रहा है जा कथा का आग वग कर उसे स्वरूप दनी चकी मद्र है। यहाँ ता कि अन्तिम उपासक जयवधन इस बदर कोरा म्प्ल है कि हृद नहा वार् का दन की तनिक कथायता नहा है पात्र और चरित्र सय वलित और कृत्रिम है। माफ और उागर के जीवा-यथाय की भूमिका पर विचरले नहा मालूम हात हैं। यह स्वीकार करने म मुझे तनिक असुविधा और दुविधा नहीं जान पडती कि मरा या सगर का अनुभव पर लिखने म उनना गही है जितना कि एक तत्त्वाथिन अनुमानवाद है।'<sup>२</sup>

### ३ विषयगत

परिस्थितिया से प्रभावित और युग की माग की पूर्ति के लिए प्रेरित साहित्य कार विषय चयन म आत्मनिष्ठ से अधिक वस्तुनिष्ठ हाता है। वह नई परपरा या विषय का प्रयत्न होता है युग निर्माता का श्रेय भी उस मिन सक्ता है। १९वीं शतादी के पूव भारतीय साहित्य म जन्मभूमि अथवा राष्ट्र पर काव्य नहीं लिखा जाता था। इसका कारण था भारतीय प्रजा म राष्ट्रभानना का अभाव। जन्म भूमि के अथ म पूण भारत का ग्रहण परिचम व प्रभाव स हुआ। उसके पूव अपने छोटे छोटे गात्र या नगर ही जन्मभूमि या मातृभूमि मान जाने थे। भारतवासिया की समाज विषयक कल्पना भी अस्पष्ट थी और उसका विशेष महत्त्व न था। महत्त्व मानव का था या ध्यक्ति का। ऐसी स्थिति म हिन्दी म राष्ट्रीय काय के प्रथम प्रणेता का श्रेय युगनिर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। उहीसे प्रभावित हाकर या उनके अनुकरण म बाद म अन्क कनिया ने राष्ट्रीय-काव्य निर्माण म अपनी मोत्रिकता का परिचय

१ हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज ( प्रतापरायण टटन का साहित्य ), राजद्रमोहन जप्रवाल प० ८०

२ जनेद्र व्यक्ति कथाकार और चिन्क, म० बाकेरिहारी भटनागर, प० १०६-११०

दिया जिनम श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरण गुप्त, आदि गिनाये जा सकते हैं।<sup>१</sup>

विषय की मूल रूप में ग्रहण करनेवाला साहित्यकार शैली की मौलिकता से उस अभिनव रूप में प्रस्तुत करता है। गाने के प्रथम शिल्प में प्राचीन महाकाव्यों की इतिहासात्मक शैली का अनुकरण नहीं किया गया। राम कथा का पयाप्त शाधन करके मार्मिक स्थला क चयन द्वारा तथा कवेई मयग सवाद से तत्पर चित्रकूट की सभा तक जो घटनात्मक कथा चलती है उनका प्रत्यक्ष शैली में निरूपण कवि की मौलिकता का परिचायक है।<sup>२</sup>

मौलिकता का स्फुरण साहित्यकार की रचि और योग्यता से सर्वाधिक समर्थ रखता है। वह रचि के अनुसार प्रवृत्ति और प्रयाग में अधिक जान-द पाता है और अपनी योग्यता का बार-बार परख के उसमें परिष्कार और वृद्धि का प्रयत्न करता है। इस वस्तु का पाठक एकाग्रता से रचना पत्रक समझ सकता है। और उसकी भी वसी ही रचि और योग्यता हो ता वह उमना अभिप्रशसन और अनुशीलन करने में भी सफलता पाता है। बदायनरान वर्मा की रचनाओं की समीक्षा करते हुए लिखा गया है— वर्माजी स्वयं संगीत चित्रकला और मूर्ति रचना के गहरे प्रेमी हैं। हम उनके संगीत कला के ज्ञान का उपयोग कई पुस्तक में करते हैं। उष्ण मगनयनी का बजनाय गायक और संगीतज्ञ है। माधवजी सिधिया मगना बेगम सितार में दक्ष हैं और इनका माध्यम से जितने सूक्ष्मातिमूकम संगीत ज्ञान और कौशल का प्रदर्शन है यह एक कुशल संगीतज्ञ एवं संगीत प्रेमी ही समझ सकता है।<sup>३</sup>

#### ४ चिंतन

साहित्यकार के ज्ञान की धारा अतमुग्धी होने पर रचना में चिंतन शी बहलता आ जाती है। उसमें मिथ्याता का निरूपण या जाणश की स्थापना की प्रवृत्ति होती है, समस्या का समाधान या अस्पष्ट का स्पष्ट किया जाता है तथा पुराने विचार को नये रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ये सारी विशेषताएँ मौखिक चिंतन की परिचायिका हैं। जिन उदाहरणों और निष्कर्षों का प्रस्तुत किया जाता है वे भी चिंतन के अपने अनुभव और तर्क प्रणाली पर आधारित हैं। एक तथ्य का उदाहरण द्वारा इसकी जायग्य करने से मौखिक चिंतन का स्वरूप स्पष्ट होगा।

आचार्य रामानुज गुकन ने लिखा है— जायाधीश जाय करता हैकारी गर हट्टे जाइता है। समाज कल्याण क विचार से जायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर क प्रति यह प्रकट करता उचित नहीं कि तुम हमसे छोटे हो। जिस जाति में छाटाई-बडाई का अभिमान जगह जगह जम कर दंड हा जाता है उगक भिन्न भिन्न

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९००-१९५५) श्रीष्टणलान, पृ० ८२

२ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य डॉ० कमलजान पाठक, पृ० ४१६

३ बदायनरान वर्मा—साहित्य और समीक्षा मिथारामशरण गुप्त, पृ० ३४

वर्गों के बीच स्थायी ईर्ष्या स्थापित हो जाती है और सच ज्ञान का विकास बहुत कम अवसरों पर दया जाता है। ' इस प्रकार क' जनक तथ्यों की व्याख्या में मौलिक चिन्तन की धार निर्देश करत हुए निष्कल्प रूप में व्याख्याकार न लिखा है— मनो विकार जोड़न-व्यवहार मनावधानिक तथ्य समाज दर्शन धर्म के स्वरूप और वर्तमान स्थिति विश्रजनौन चिरंतन सत्य काय क' स्वरूप माहित्य क' सिद्धान्त आदि पर तो आघाय गुकन न सुवधा मौलिक और पृथक चिन्तन पद्धति का परिचय दिया है। उनमें उनकी बौद्धिक स्पष्टता प्रतिभा की परत धुली निरारी धारणा और विश्लेषणात्मक मानसिक प्रक्रिया का पता चलता है। उनके वाक्य तो आदर्श और कहानत के रूप में प्रयोग किये जान लायक हैं।<sup>१</sup>

## ५. मौलिकता के अध्ययन द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का साक्षात्कार

लेखक के व्यक्तित्व-अंश की यह प्रक्रिया मौलिकता के अनुसंधान काय में बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। लेखक के भाव और बुद्धि को हम अपनी सहृदयता और चिन्तन के पाठदर्शी माध्यम से ही साक्षात् कर सकते हैं। लेखक के जीवन और कृतियाँ का जितना गहरा आत्मोपसापूण अध्ययन किया जायगा उतना ही वह सत्य क' अधिक निकट और समग्र होगा। व्यक्तित्व दर्शन में विश्लेषण और सश्लेषण दोनों प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं। संभव है विश्लेषण की प्रत्येक कवाई से हम कुछ भी विश्लेषण की उपनिधि न ले परन्तु उसी की समग्रता में एक नये चित्र को उभरते हुए हम देख सकते हैं। महादवी गिती है— वहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पन्न वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति सचाग्णी दीपशिखा बन कर उस असाधारण कर देती है। एक एक करके देपन से कुछ भी विश्लेषण नहीं कहा जायगा परन्तु सबकी समग्रता में जो उभासित होता था उसे स्पष्ट से अधिक हृदय ग्रहण करता था।<sup>१</sup>

## ६. तुलनात्मक अध्ययन

मौलिकता क' अध्ययन में एक और दृष्टिकोण है—परम्परा के सदस्य में पूर्ववर्ती गमवातीनों और परवर्ती तथ्यका के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्वारा विविध तथ्यक की मौलिकता की खोज की जाय। पूर्ववर्ती शायद युग निर्माता या प्रारम्भकर्ता हो सकना है उसमें प्रवर्तन का काम था क' लेखक का किया हो ता वह उनकी मौलिक प्रतिभा का सूचक होगा। गमवातीनों क' साथ समान असमान तत्वा के

१ किताबणि प० ११२

२ आघाय रामचन्द्र गुकन, जयनाथ नरिन पृ० ४०

३ पथ क' रायी प० ६

पुनरुत्थान द्वारा और ये तब विषय के सम्बन्ध में प्रथम स्थापना का विषय करने मीति बनाता है। अथवा मगभा जा सकता है। "तापत्र" जागी की औपचारिक मीति का अनुभव में बताया गया है - जागी का मीति का मगभा के लिए एक ओर से आशय है कि उन्हें प्रमाद की पुनर्भूमि में दया जाय और दूरी और उन अथ उपवासना (अथ १३२) की तुलना में भी मीति बना पाना बना प्राप्त है।<sup>१</sup>

हिन्दी साहित्य के गीतिकाधी कवियों का सुरुत में आध्यात्मिक की समझ परम्परा प्राप्त थी और जो कवि-कवियों पर उनके सभ्य प्रथा के विषय में अनु-याय या अनुकरण का आशय किया गया है परन्तु कवि दाय और विनामिति जग कुछ आध्यात्मिक-कवियों ने उम्र क्षण में भी अपनी मीतिकता प्रकृति की है।

कवि दाय की मीतिकता पर विचार का सविचार रूप क्या प्रकार है—<sup>१</sup>

- (i) माय आध्यात्मिक के मगभा के प्रकृत स्वभाव मग की स्थापना।
- (ii) धर्मोत्थान द्वारा पानित विषय।
- (iii) माय तमा के स्थापना पर तम तमा का प्रथा।
- (iv) तवी उद्भावनाएँ। यथा

(क) ध्यनिक अन्तःकरण के अतगत पापण दूषण की उद्भावना वीणा तथा पुनरुत्थानप्रकाश तम की त्रीन उद्भावनाएँ आशय के तीना। भेदा-उत्थान अनुत्थान तथा व्यक्त की उद्भावनाएँ आदि।

(ख) ध्यन विवचन के अतगत उद्भि सवभा के १४ भेदा का वणन किया है। इनके भेदा अथ किसी भी कवि ने नहीं किया। दाय ने ध्यन के भेदा में ध्यन और मोटा नामक दो भेदा की उद्भावनाएँ का। "ताप" विषय में प्राचीन प्रथा में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मुक्तर ध्यन में वण भूतना ध्यन भी इसकी अपनी उद्भावना जान पड़ती है। "गका उद्भावना भी अथ ध्यन प्रथा में नहीं प्राप्त होता।

(ग) मीतिकता की दृष्टि से दायजी के चित्रालकार का व (न) उत्तमनीय है। इसमें से देह नहीं कि चित्रालकार का वणन हम मगभूत जायाओं के काया में मिलता है परन्तु तमा ने अपनी बुद्धि से इस वणन के अतगत और विषय तथा प्रभावना की उद्भावना में जा कारीगरी दिखाई है वह न केवल दायजी की मीतिकता की परिचायक है अपितु उम्र उतकी प्रथम आशय बुद्धि का भी पता चलता है।<sup>२</sup>

काय सप्रदाया के मिडाना में समय समय पर जायाओं ने मशोधन करके अपनी सुफ त उसमें कुछ जाकर बदलापर परिवार करके प्रवृत्तियों का अपने

१ इलाक़ जगशी के उप दाय, वरभद्र तिमारी, पृ० १७२

२ आचार्य भित्तारीदास, डा० ताराचण्डीय तमा, पृ० ३५३ ३५६

मौलिक ढंग से दिखाया है। रीतिवालीन कवि और आचार्य चिन्तामणि इसी कवि के हैं जिन्होंने मात्र परम्परा का अधानुकरण न करत हुए अपनी मौलिक सूझ और उदभासना का परिचय दिया है।<sup>१</sup> गुण प्रकरण में वामनसमंत गुणा का मम्मटसमंत तीन गुणा में समावेश इन्होंने सफ़रतापूर्वक दिखाया है। कुछ एक रचना पर इन्होंने मूल ग्रन्थकार से असहमति प्रकट की है। मम्मटसमंत का य लक्षण का अपनात हुए भी अलकार की अनिवार्यता का प्रश्न न उठाकर इन्होंने प्रकाशनात् से उसके महत्त्व का कम नहा किया। विश्वनाथ के समान हाव, भाव आदि सवत्न अलकारों का स्वतंत्र न मानकर इन्हें अनुभाव का ही अंग माना है। मद तथा मरण नामक सचारी भावा का इन्होंने अपशब्दित पुष्ट एवं स्वस्थ रूप दिया है। द्रुमी प्रकार उदात्ता, गुण में अध-चाहता और अधव्यक्ति गुण में अलत्रियता के समावेश द्वारा इन्होंने इन गुणा का रूप और भी अधिक निवार दिया है।<sup>२</sup>

### ७ गली

हिंदी सबप्रथम 'गोपद' और छन्द' निरनवाले 'हरिओध' हैं और संस्कृत के आर्या छन्द का प्रयोग करने वाले रामचरित उपाध्याय हैं। साहित्यिक गति-विधियों में ज्ञानि ज्ञान वाले साहित्यकार निरानदरों होते हैं। वे अपनी अज्ञान पिट से अधिक प्रेरित होते हैं परम्परा और ग्रहण, प्रभाव, प्रेरणा आदि स्वातंत्र्य निमित्त मात्र होते हैं। आत्मीय युग चरना के मर्म का हृत्प्रयोग करने वाली उनकी प्रतिभा साहित्य जगत का नूतनता से समृद्ध बनाती है। लाला भगवान्जीन के 'वीर प्रताप' का परिचय इसी रूप में प्राप्त होता है—“प्राचीन काव्य के जादुओं और भावों की शिथिलता का परिचय सबसे अधिक आभ्यासक गीतिया में मिलता है। उनमें काव्य की पूर्व प्रचलित गली का तनिक भी आशय नहीं मिलता वरन् उनमें भावी काव्यार्यों की पूर्व-छाया भी मिलती है। वे काव्य के नतन युग की अग्रदूत हैं। उदा० लाला भगवान्जीन का 'वीर प्रताप' रीतिवालीन काव्य-परम्परा और आशय, भाषा और छन्द रूप और शली से विनकूल विपरीत है फिर भी उनका साहित्यिक गौरव कम नहीं है।”

प्रेमचन्द का मौलिकता सर्वविधित है। गांधीजी और प्रेमचन्द समकालीन थे। प्रेमचन्द पर गांधी दशन का प्रभाव माना गया है परन्तु इसके साथ प्रेमचन्द स्वयं भी इस विचार द्वारा प्रेरित थे। इस प्रकार मौलिकता की खोज के लिए समकालीन के प्रभाव के समय के पूर्व की रचनाओं के मूलम अध्ययन की आवश्यकता

१ आचार्य भिमारीदास, डॉ० नागयणनाथ खन्ना पृ० ३१५

२ हिंदी साहित्य का इतिहास पाठ भाग, रीतिवादी, साहित्यिक काव्य, (म० १७००-१९००), सं० नवम पृ० ३१५

३ आधुनिक हिंदी साहित्य १९००-१९२५ श्रीकृष्णनाथ, पृ० ६७-६८

है, महान प्रतिभाशाली सबत्रिकालदर्शी और समष्टि से एक होने के कारण निर्व्यक्ति-वता की अंतिम सीमा पर पहुँचकर भाव-भंगिमा और विचार प्रदर्शन की शली और भावापयोग में भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही वस्तु का प्रकाशन करत हैं। वह प्रतिभाशाली लेखक हो या महात्मा राजनेता हो या धर्मात्मा, गरीब हो या अमीर, पंडित ब्राह्मण हो या कबीर दादू की तरह अशिक्षित और निम्न वर्ग का उनका व्यंग्य और प्रतिपाद्य विषय में अदभुत एकता दृष्टिगोचर होती है। प्रमचन्द क प्रथम उप-यास परदान का विवेचन करने पर निष्कर्ष मिला — यदि भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आविर्भाव नहीं होता तो भी प्रमचन्द के साहित्य के मूल स्वरूप में कोई मौलिक भ्रंतर नहीं आता क्योंकि हम देख चुके हैं कि परदान में मृत्यु सब तत्व विद्यमान है जिनका विकास उनके शेष कृतित्व में है।<sup>१</sup>

### उपसंहार

इस प्रकार की प्रतिभा प्रेरणा में भी जागे मौलिकता का स्थान होता है उनके ऊर्ध्वचेतन मन की प्रियाशीलता उनका ऊपरमन की उदात्त भूमिका की छायाक होनी है। प्रसाद साहित्य में इंगी भूमिका पर प्राचीन विधान का अभिनव स्थान प्रस्तुत कर मानव के हृदय और बुद्धि में सम बम स्थापित करने की चष्टा है। उनकी मौलिकता में कल्पना का मुद्गचिपूण योग देयन के लिए इतिहास के जगाध सागर में विचरती सामग्री का प्रामाणिक गान उपस्थित होगा। कल्पना के रूप में उनकी मौलिकता का हम दा रपा में देख सकते हैं—<sup>१</sup>

(१) इतिहास की जो बातें विकीर्ण होकर एक दूसरे से दूर पड़ गई हैं उन्हें एक गूथ में बाँधा के लिए।

(२) नाटकीय पृथता के निमित्त कारण अनतिशक्ति का पात्र की सृष्टि।

हिन्दी साहित्य के अनुसंधान काय में मौलिकता पर साहित्यकार के व्यक्तित्व और वृत्तित्व के प्रकाश में और पहचान पर विचार किया गया है और आगे भी होता रहेगा। प्रेरणा, प्रभाव और मौलिकता का अध्ययन अभी भी एक के अध्ययन के लिए अनिवार्य है। इस अध्ययन का एक रूप 'हिन्दी साहित्य में प्रेम का नया गतिज' में

आधुनिक उपयामा म लक्षित होने वाली त्वीनता के आविर्भाव के मूल म चार बानें दष्टिगोचर हुई हैं—

- १ रूपाकार की अपेक्षाकृत परम्परा मुक्तता,
- २ महान प्रतिभावान व नागरा की नयनवा मपिणी शक्ति
- ३ नग परिवर्तित विषय का प्रादीपन तथा उमके सुचारु निर्वाह की सहज प्रयत्नशीलता, और

४ मुगधर्मी उपयाम की यथार्थो-मुखता

अनुसंधान काय म साहित्यकार की मौलिकता स वृत्तिशी तही हाती अनुसंधाना स भी मौलिकता की अपेक्षा की जाती है । उमक मौलिक योगदान के अभाव म वह पी एच डी जादि सपोधन पर आधारित उपाधिया व माध्य नहा माना जाता । उम मौलिक हानर भी किमी तनित साहित्य की मर्दि तही करनी ह उस ता मवपणा पर आधारित आवाचना द्वारा साहित्यकार की रचनाआ ने उन उश्रित परतु महत्त्व पूरा तथ्या और तन्त्रा को प्रकाश म लाना है जिम पर जब तक किमी न अपनी लखनी तही उठायी है उसे प्रामक मना का गुद्ध और सत्य रूप म पुन म्थापित करना है, लुप्त मून वृत्तिया का मपादन कर उाकी प्राभाणिकता सिद्ध करती है और वृत्ति विषयक विचारा का अपनी तापा शली म प्रस्तुत कर दूसरा व लिए अध्ययन का नया क्षेत्र उदघाटित कर दना है ।

१ अनेय के उपयामा की शिल्पविधि डा० मत्यपाल चुध, प० २१



है, महान प्रतिभाशाली सवत्रिवालदर्शी और समष्टि से एक होने के कारण निर्वैयक्तिकता की अंतिम सीमा पर पहुँचकर भाव भंगिमा और त्रिचार प्रश्न की शली और भाषा प्रयोग में भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही वस्तु का प्रकाशन करते हैं। वह प्रतिभाशाली लेखक हो या महात्मा राजनेता हो या धर्मत्मा गरीब हा या अमीर, पंडित ब्राह्मण हो या कबीर दादू की तरह जगद्विद और निम्न वर्ग का उनके ध्येय और प्रतिपाद्य विषय में अदभुत एकता दृष्टिगोचर होती है। प्रमचंद्र के प्रथम उपन्यास वरदान का विवेचन करने पर निष्कर्ष मिला — 'यदि भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आदिभाव नहीं होता तो भी प्रमचंद्र के साहित्य के मूल स्वरूप में कोई मौलिक अंतर नहीं आता क्योंकि हम दया तुष्ट हैं कि वरदान' में मूलतः व सब तत्व विद्यमान हैं जिनका विकास उनके शेष कृतित्व में है।'

### उपसंहार

इस प्रकार की प्रतिभा प्रेरणा में भी आगे मौलिकता का स्थान होता है उनके ऊर्ध्वचेतन मन की प्रियाशीलता उनके ऊर्ध्वमन की उदात्त भूमिका की द्योतक होती है। प्रसाद साहित्य में इसी भूमिका पर प्राचीन विधान का अभिनव दर्शन प्रस्तुत कर मानव के हृदय और बुद्धि में सम वय स्थापित करने की चेष्टा करती है। उनकी मौलिकता में कल्पना का सुरुचिपूर्ण योग देखने के लिए इतिहास के अगाध सागर में बिखरी सामग्री का प्रामाणिक नान अपेक्षित होगा। कल्पना के रूप में उनकी मौलिकता का हम दो रूपा में देख सकते हैं—<sup>१</sup>

(१) इतिहास की जो बात विकीर्ण होकर एक दूसरे से दूर पड़ गई है, उन्हें एक मूल में बाँधने के लिए।

(२) नाटकीय पूर्णता के निमित्त कारे अनतिहासिक पात्रों की सृष्टि।

हिन्दी साहित्य के अनुसंधान काय में मौलिकता पर साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रकाश में अनेक पहलुओं पर विचार किया गया है और जाग भी होना रहेगा। प्रेरणा प्रभाव और मौलिकता का अध्ययन किसी भी एक के अध्ययन के लिए अनिवाय है। इस अध्ययन का एक रूप हिन्दी साहित्य का नया शिक्तिज<sup>२</sup> में देखा जा सकता है। मौलिकता की खोज में सीधा स्पष्ट मार्गदर्शन इन पंक्तियों में मिलेगा—'उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा सवेदनाभूति उसके तत्त्वा—कथानक, पात्र वानावरण आदि—में परिणत हो औपन्यासिक रूप का निर्माण करते हैं वही उसकी शिल्प विधि है। दृष्टिकान तथा मूल अनुभूति शिल्प का नियंत्रण करते हैं और शिल्प से ही वह स्वरूप प्राप्त होता है।'

१ प्रमचंद्र और गांधीवादी रामजीन गुप्त पृ० १४५

२ प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन जगन्नाथप्रसाद शर्मा पृ० २५०

३ प्रतापनारायण टंडन का साहित्य राजद्वाराटन उपवाक

४ अर्जुन के उपन्यास की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चूधरी पृ० १६

आधुनिक उपयोगमा स लक्षित होत वानी नवीनता क आविर्भाव क मून म चार वार्ते दृष्टिगोचर हुई है—

१ रचनाकार की अवेकाङ्क परम्परा मुक्तता

२ मूल्य प्रणालीया व नाकारा की नवतया यथिणी शक्ति

३ नए परिवर्तित विषय का प्रोद्दीपन तथा उमर्गे सुचारु निर्वाह की सहज प्रवर्तनीयता और

४ युगधर्मी उपयोग की यथार्थोमुखता -

अनुसंधान काय म साहित्यकार का मौलिकता स इतिथी रहा हाती अनुसंधान म नी मौलिकता की अपणा की जाती है । उमक मौलिक योगदान के प्रभाव म बह पी एव डी जादि संधोधन पर आधारित उपाधिया क याध्य नहीं माना जाता । उम मौलिक हाकर ना किमी ललित साहित्य की सृष्टि रही करना ह उस ता मवपणा पर आधारित आवाचना द्वारा साहित्यकार की रचनाया ने उन उपलक्षित परतु महत्त्व पूरा तथा और तत्त्वा का प्रकाश म लाता है जिम पर जब तक किमी न अपनी लपनी रही उठायी है उसे आमत्र मना का शुद्ध और मत्व रूप म पुन म्थापित करना है, तुल्य मून वृत्तिया का सपादन कर उनकी प्राभाणिकता सिद्ध करनी है और वृत्ति विषयक विचार का अपनी भाषा शती म प्रस्तुत कर हमरा क लिए अध्ययन का नया क्षेत्र उन्पाटित कर दना है ।



